Course Code :HIN-305 **Title : Upnyaskar Premchand (Vishisht Adhyan)**

Credits : 4 **Maximum Marks : 100**

Duration of Examination : 3 Hrs. **a) Internal = 20**

b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in Dec. 2019, 2020 & 2021

Note – only for DDE and Off site campuses

निर्धारित पुस्तकें

उपन्यास : 1 सेवासदन

2 निर्मला

3 गोदान

पाठ्यक्रम का विवरण :

इकाई –1

– प्रेमचन्दः व्यक्तित्व एवं जीवन दृष्टि

– हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द का स्थान।

– प्रेमचन्द का साहित्य।

– प्रेमचन्द युगीन परिस्थितियाँ।

इकाई – 2

– 'सेवासदन' का कथानक।

– 'सेवासदन' की प्रमुख समस्याएँ।

– 'सेवासदन' में चित्रित नारी।

– 'सेवासदन' के प्रमुख पात्र।

इकाई –3

– 'निर्मला' उपन्यास का कथानक।

– 'निर्मला' की प्रमुख समस्याएँ।

– 'निर्मला' में चित्रित नारी।

– 'निर्मला' उपन्यास के प्रमुख पात्र।

इकाई – 4

– 'गोदान' आदर्श एवं यथार्थ।

– 'गोदान': कृषक जीवन का महाकाव्य।

– 'गोदान' में ग्रामीण और नगरीय कथाओं का विवेचन।

– 'गोदान' के प्रमुख पात्र।

» **प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा :**

– प्रत्येक इकाई से शत प्रतिशत विकल्प सहित एक एक दीर्घ उत्तरापेक्षी

– 10 X 4 = 40

– प्रत्येक इकाई से शत प्रतिशत विकल्प सहित एक एक लघु उत्तरापेक्षी

– 6 X 4 = 24

– प्रत्येक इकाई से शत प्रतिशत विकल्प सहित चार अति लघु उत्तरापेक्षी

– 3 X 4 = 12

– विकल्प रहित पूरे पाठ्क्रम पर आधारित चार वस्तुनिष्ठ प्रश्न

– 1 X 4 = 4

——— 0 ———

विशय–सूची

आलेख संख्या	आलेख	पृष्ठ संख्या
	इकाई – 1	
1.	प्रेमचन्द : व्यक्तित्व एवं जीवन दृष्टि।	4
2.	हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द का स्थान।	25
3.	प्रेमचन्द का साहित्य।	41
4.	प्रेमचन्द युगीन परिस्थितियाँ।	57
	इकाई – 2	
5.	'सेवासदन' का कथानक।	66
6.	'सेवासदन' की प्रमुख समस्याएँ।	76
7.	'सेवासदन' में चित्रित नारी।	87
8.	'सेवासदन' के प्रमुख पात्र।	103
	इकाई – 3	
9.	'निर्मला' उपन्यास का कथानक।	132
10.	'निर्मला' की प्रमुख समस्याएँ।	138
11.	'निर्मला' में चित्रित नारी।	146
12.	'निर्मला' के प्रमुख पात्र।	154
	इकाई – 4	
13.	'गोदान' : आदर्श एवं यथार्थ।	163
14.	'गोदान' : कृषक जीवन का महाकव्य।	172
15.	'गोदान' में ग्रामीन एवं नगरीय कथाओं का विवेचन।	189
16.	'गोदान' के प्रमुख पात्र।	198

प्रेमचन्द : व्यक्तित्व एवं जीवन दृष्टि

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 प्रेमचन्द का व्यक्तित्व

1.4 प्रेमचन्द की जीवन दृष्टि

1.5 सारांश

1.6 कठिन शब्द

1.7 अभ्यास प्रश्न

1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप –

– प्रेमचन्द के जीवन के बारे में जान सकेंगे।

– उनके व्यक्तित्व से परिचित होंगे।

– उनकी जीवन दृष्टि क्या रही है, इस विषय में जानेंगे।

1..2 प्रस्तावना

किसी भी लेखक के सम्पूर्ण साहित्य को जानने के लिए उनके व्यक्तित्व और उनकी जीवन के प्रति दृष्टि को जानना आवश्यक हो जाता है।

प्रेमचन्द जनता के लिए लिखते थे। प्रेमचन्द के साहित्य को पढ़ने से पाठकों को देहातों में रहने वाले किसानों के भौतिक और अध्यात्मिक जीवन और देश की सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

1.3 प्रेमचन्द का व्यक्तित्व

प्रेमचन्द का जन्म बनारस से लगभग चार मील दूर लमही नाम के गांव में 31 जुलाई, 1880 को कायस्थो के कुल में हुआ। इनके पितामह मुंशी गुरुसहाय पटवारी थे। इनके पिता मुंशी अजायबलाल डाक मुंशी थे और उनका वेतन लगभग पच्चीस रुपये मासिक था। माँ आनन्दी देवी सुन्दर–सुशील और सुघड़ महिला थी। अभी प्रेमचन्द अठ वर्ष के ही थे कि इनकी माता का देहान्त हो गया। विधुर जीवन की कठिनाई को देखकर इनके पिता ने दूसरी शादी कर ली। विमाता से प्रेमचन्द जी को स्नेह न मिल सका।

प्रेमचन्द का बचपन गांव में बहुत ही गरीबी में व्यतीत हुआ। बचपन में इनकी शिक्षा–दीक्षा लमही में हुई और एक मौलवी साहब से उन्होंने उर्दू और फ़ारसी पढ़ना सीखा। 13 वर्ष की आयु में प्रेमचन्द का नाम गोरखपुर के मिशन स्कूल में छठी कक्षा में लिखवाया गया और उसके दो वर्ष बाद ये क्वींस कॉलिज में पढ़ने लगे। सन् 1898 मे प्रेमचन्द ने क्वींस कॉलिज से मैट्रिक की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। द्वितीय श्रेणी में पास होने के कारण इनको इस कालेज में प्रवेश नहीं मिला। तब उन्होंने नवस्थापित सैंट्रल हिन्दू कॉलिज में प्रवेश के लिए प्रयत्न किया। किन्तु गणित में कमजोर होने के कारण वे सफल न हो सके। सन् 1910 ई॰ में जब गणित ऐच्छिक विषय हो गया तब प्रेमचन्द ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से इण्टरमीडिएट की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके नौ वर्ष बाद 1919 ई॰ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रेमचन्द ने अंग्रेज़ी, फारसी और इतिहास विषय लेकर बी.ए. की परीक्षा भी द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की।

जब प्रेमचन्द पन्द्रह वर्ष के थे, उनका विवाह हो गया किन्तु इनका वैवाहिक जीवन सुखद नहीं रहा। पत्नी उम्र में बड़ी, बदसूरत और झगड़ालू थी इसी कारण पत्नी से प्रेमचन्द की अधिक देर तक नहीं बनी। प्रेमचन्द ने दूसरी शादी एक बाल विधवा से कर ली। इनकी दूसरी पत्नी का नाम शिवरानी था। प्रेमचन्द के जीवन को आगे बढ़ाने में इनकी पत्नी शिवरानी देवी का बहुत योगदान रहा । उनसे एक लड़की कमला और दो लड़के श्रीपतराय और अमृतराय हुए। शिवरानी देवी के साथ प्रेमचन्द का दाम्पत्य जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत हुआ।

प्रेमचन्द अभी 16 वर्ष के ही थे कि इनके पिता का देहान्त हो गया। घर–गृहस्थी का सारा बोझ प्रेमचन्द के कन्धों पर पड़ गया। आमदनी का कोई साधन न था। घर की जमा पूंजी पिता की बीमारी और क्रिया–कर्म में खर्च हो गई थी। घर की दशा शोचनीय थी। गृहस्थी को चलाने के लिए ही बनारस में इन्होंने एक लड़की को ट्यूशन पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया।

पिता की मृत्य हो जाने के कारण प्रेमचन्द को नौकरी की चिन्ता हुई। मैट्रिक में पढ़ते हुए ही वे किसी काम की खोज करने लगे। सन् 1899 में एक पुस्तक विक्रेता के यहाँ इन की भेंट एक प्राइमरी स्कूल प्रधानाध्यापक से हुई थी। उन्होंने प्रेमचन्द को अपने विद्यालय में अठारह रुपये मासिक वेतन पर सहायक अध्यापक रखा। वहां इनसे अतिरिक्त कार्य लिया जाता था जिससे अप्रसन्न होकर इन्होंने वहां से 2 जुलाई

1900 में त्याग पत्र दे दिया। इनको 1902 ई॰ में इलाहाबाद में अध्यापन प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। इस प्रशिक्षण में इन्होनें प्रथम श्रेणी प्राप्त की जिससे प्रभावित होकर शिक्षा विभाग के अधिकारियों ने इनको मॉडल स्कूल इलाहाबाद में प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्त किया। प्रेमचन्द जी ने सन् 1904 ई॰ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही स्पेशल वर्नाक्यूलक की परीक्षा हिन्दी–उर्दू में उत्तीर्ण की। जब प्रेमचन्द इलाहाबाद माडल स्कूल में प्रधानाध्यापक के पद पर थे तो इनका तबादला कानपुर हो गया। प्रेमचन्द मई 1905 से जून 1909 तक कानपुर रहे। जून 1909 में इनका तबादला महोबा (ज़िला हमीरपुर) में हो गया वहां यह डिस्ट्रिक बोर्ड के सब–इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त किये गये। सन् 1921 में प्रेमचन्द ने महात्मा गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण नौकरी से इस्तीफा दे दिया। बाद में प्रेमचन्द कानपुर के हाईस्कूल में हैडमास्टर का कार्य करने लगे। 1922 ई॰ में प्रेमचन्द ने हेडमास्टर का कार्य भी छोड़ दिया।

सन् 1923 में इन्होंने सरस्वती प्रेस की स्थापना की किन्तु प्रेस में घाटा होने के कारण इन्होंने प्रेस को बन्द कर दिया। सन् 1927 में वे 'माधुरी' पत्रिका के सह–सम्पादक के रूप में कार्य करने लगे और तीन वर्ष बाद सन् 1930 में प्रेमचन्द ने अपनी पत्रिका 'हंस' का प्रकाशन शुरू किया। सन् 1932 में इन्होंने 'जागरण' पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया। इन दोनों पत्रिकाओं (हंसं, जागरण) में इनको हानि उठानी पड़ी। सन् 1934 में प्रेमचन्द बम्बई की फिल्म कम्पनी 'अजन्ता सीने टोन' के लिए काम करने लगे। किन्तु फिल्म कम्पनी की नीतियाँ इन्हें अच्छी नहीं लगी और प्रेमचन्द फिल्म कम्पनी को छोड़कर बनारस में लौट आए।

प्रेमचन्द ने अपना सारा जीवन साहित्य साधना में व्यतीत किया। प्रेमचन्द जी ने उपन्यास, कहानी, नाटक, बाल साहित्य, जीवनी आदि लिखी। उन्होंने सदैव अपने को कलम का मज़दूर माना। सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने नवाबराय के नाम से उर्दू में लिखना प्रारम्भ किया। किन्तु बाद में इन्होंने उर्दू के साथ–साथ हिन्दी में भी लिखना आरम्भ कर दिया। उन्होंने उर्दू में नवाबराय के नाम से 'सोजे वतन' कहानी सग्रंह लिखा। यह कहानी सग्रंह देश प्रेम की भावना से परिपूर्ण होने के कारण अंग्रेज़ी सरकार ने उसे ज़ब्त कर लिया तो बाद में उन्होंने प्रेमचन्द के नाम से लिखना प्रारम्भ कर दिया। यह नाम इनके मित्र दयानारायण निगम ने दिया था। प्रेमचन्द ने साहित्य का सृजन धन कमाने के उद्देश्य से नहीं किया बल्कि इनका उद्देश्य तो जनता को जागरूक बनाना था। अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरूद्ध आवाज़ उठाना था। प्रेमचन्द सरस्वती के सच्चे पुजारी थे। उन्होंने धन की कभी चिन्ता नहीं की।

प्रेमचन्द ने अपने जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव देखे, किन्तु उन्होंने जीवन में कभी हार नहीं मानी प्रत्येक कठिनाई का सामना किया। प्रेमचन्द जी अत्यन्त सरल स्वभाव के सीधे सादे आदमी थे। ये खुले गले का खादी का कुरता और ढीली–ढाली धोती पहनते थे। उनके सम्पर्क में जो व्यक्ति आता वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था।

सन् 1936 में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक हुई, जिस में मुंशी प्रेमचन्द को इस संस्था का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

प्रेमचन्द ने अपने जीवन को "सपाट, समतल मैदान" कहा था। उनके जीवन में कुछ भी असाधारण

और सामान्य न था। अपनी आत्मकथा के टुकड़े में प्रेमचन्द लिखते हैं "मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं–कहीं गड्ढे तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खण्डहरों का स्थान नहीं हैं। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन हैं उन्हें तो यहां निराशा ही होगी।"

प्रेमचन्द जी ने अपने को सदा मजदूर समझा। बीमारी की हालत में भी मृत्यु के कुछ दिन पहले तक भी वे कमजोर शरीर को लिखने के लिए मजबूर करते रहे। मना करने पर कहते, 'मैं मजदूर हूँ , मजदूरी किए बिना मुझे भोजन करने का अधिकार नहीं'। उनके इस वाक्य में अभिमान का भाव भी था और अपने नाकद्रदान समाज के प्रति एक व्यंग्य भी। उनके हृदय में इतनी वेदनाएँ, इतने विद्रोह भाव और इतनी चिनगारियां भी थी कि उन्हें संभाल नहीं सकते थे। विनय की वे साक्षात् मूर्ति थे, परन्तु यह विनय उनके आत्माभिमान का कवच था। वे बड़े ही सरल थे, परन्तु दुनिया की धूर्त्तता और मक्कारी से अनभिज्ञ नहीं थे। उनका साहित्य इस बात का प्रमाण है। लाखों और करोड़ों की तादाद में फैले हुए भुक्खड़ों दाने–दाने को और चिथड़े–चिथड़े को मुहताज लोगों की वे आवाज़ थे। धार्मिक ढकोसलों को वे ढोंग समझते थे, पर मनुष्यता को वे सबसे बड़ी वस्तु मानते थे, यही प्रेमचन्द का अपना जीवन–दर्शन है। सन् 1936 में प्रेमचन्द बीमार हो गए इलाज के लिए ये लखनऊ गये, किन्तु वहां भी ठीक न हो सके 8 अक्टूबर 1936 को प्रेमचन्द का देहान्त हो गया।

किसी भी लेखक का सबसे बड़ा परिचय उसकी रचना से ही प्राप्त होता है। सच तो यह है कि पाठक रचना के जरिये ही लेखक को जानता है। साहित्यकार होने के कारण ही प्रेमचन्द विश्वभर में प्रसिद्ध हैं। वे अपने युग के ही नहीं बल्कि समस्त हिन्दी साहित्य के इतिहास में सर्वोत्कृष्ट साहित्यकार थे। अपने साहित्यक जीवन में प्रेमचन्द जी ने एक दर्ज़न उपन्यास और लगभग तीन सौ कहानियां लिखी। प्रेमचन्द सामाजिक जीवन की रुढ़ियों, अन्धविश्वासों और पाखंडों के कट्टर विरोधी थे। वे समाज में सुधार लाना चाहते थे और उनके साहित्य का उद्देश्य यही था जनता को जागरुक करना तथा देश की आज़ादी के लिए उन्हें उत्तेजित करना।

इनके साहित्य का रचना काल सन् 1896 से लेकर सन् 1936 तक प्रशस्त है। पहले उर्दू में धनपतराय तथा नवाबराय के नाम से कहानियाँ लिखते थे। उर्दू में इनकी सबसे पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' शीर्षक से सन् 1907 में 'जमाना' में प्रकाशित हुई, यह कहानी उनके सर्वप्रथम कहानी संगृह 'सोजेवतन' में संगृहीत की गयी थी जिसे तत्कालीन अंग्रेज़ी सरकार ने जब्त कर लिया था। बाद में उन्होंने प्रेमचन्द के नाम से लिखना शुरू किया था। उनकी सबसे पहली रचना मामू प्रणय–प्रसंग पर थी, जिसमें उनके रोमांटिक रूप का थोड़ा–सा परिचय मिलता है। इसके बाद उन्होंने 'रूठी रानी' नामक एक उपन्यास की रचना की थी। यह उनका एक ऐतिहासिक उपन्यास था।

प्रेमचन्द ने उर्दू में साहित्य लेखन का कार्य सन् 1901 में आरम्भ किया। लगभग 1901 में उन्होंने 'श्यामा' 1902 में 'प्रेमा' नामक उपन्यासों की रचना की। सन् 1914 ई॰ में प्रेमचन्द ने उर्दू छोड़कर हिन्दी में लिखना प्रारम्भ कर दिया। उनका सर्वप्रथम हिन्दी कहानी संगृह 'सप्त सरोज' था जिसका प्रकाशन सन् 1917 में हुआ था। उपन्यासों और कहानियों के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने जीवनी, निबन्ध, नाटक, बाल साहित्य अनुवादित रचनाएँ आदि साहित्य निधि में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

1.4 प्रेमचन्द की जीवनदृष्टि

प्रेमचन्द की रचनाएँ ही उनके कृति या रचना–व्यक्तित्व की प्रामाणिक साक्ष्य हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि रचनाओं से बाहर के जीवन का उनके व्यक्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं। दरअसल प्रेमचन्द जो जीवन में थे, उससे ज्यादा साफ और गहरे वे रचनाओं में मिलते हैं। उनकी कृतियाँ दो महायद्धों के बीच के विराट मानव–सन्दर्भोंकी रचनाएँ हैं। ये रचनाएँ रचनाकाल के दृश्य संसार की संघर्षमय जीवन की सच्ची–झूठी गाथाएँ ही नहीं हैं, बल्कि प्रेमचद के व्यक्तित्व की परिचय–कथाएँ हैं। प्रेमचन्द का अपना निजी जीवन कहीं–न–कहीं उस बड़े सन्दर्भ से जुड़ा हुआ है।उनके निजी जीवन के बारे में 'कलम का सिपाही' और 'कलम का जादूगर : प्रेमचन्द' जैसी कृतियों से सूचनाएँ मिलती हैं। उनके लिखे पत्र और उनके बारे में समकालीन लेखक – आलोचकों की सूचनाएँ हमें मिलती हैं वे यह स्पष्ट करती हैंकि भारतीय स्वाधीनता–संग्राम के संघर्ष में लेखक से बाहर की भी हिस्सेदारी प्रेमचन्द ने निभायी थी। वह एकआदमी की हैसियत से 'भागीदार' बनने से सम्बद्ध है। एक आदमी की हैसियत से अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रेमचन्द ने 'कलम के हथियार' से लड़ाई में भाग लिया था। दूसरे क्षेत्रों में उन छोटे पात्रों की हैसियत से भाग लिया था जे भारतीय जन–मानस को उस 'शक्ति' से परिचित कराते हैं जो शक्ति सामाजिक सन्दर्भों को बदलने में समर्थ है।

कृतियों में जो 'अनुभव' प्रेमचन्द ने दिया था, वह अनुभव केवल कलात्मक विलास का अनुभव नहीं था, वह जीवन का 'मानवीय' अनुभव भी था। परन्तु निजी जीवन के अनुभव और एक सार्वजनिक जीवन के अनुभव में फर्क होता है। किसी रचनाकार का निजी जीवन ही रचनाओं में झलकता हो, ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता। बहुत सारे रचनाकारों के जीवन और उनके सर्जनात्मक कर्म की आधार भूमि में जमीन–आसमान का अन्तर होता है। अनेक उदाहरणों में तो यह एकदम उलटा भी होता है। निजी जीवन का अनुभव 'व्यक्तिगत' रुचि–अरुचि तक में सीमाबद्ध होता है जबकि अनुभवों की विषयगत प्रवृत्ति में ऐसी सीमा नहीं होती। यह विचित्र संयोग है कि प्रेमचंद के निजी जीवन के अनुभवों और रचनाओं के बीच प्रवाहित होने वाले अनुभवों में ज्यादा फर्क नहीं है। बल्कि यह अद्‌भुत समानता है कि प्रेमचन्द के जीवन ही की प्रमुख घटनाएँ या उनके जीवन–काल में हुई प्रमुख घटनाएँ उनकी कथाओं में मिल जाती हैं। अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' में ऐसी समानताओं का अनेक बार उल्लेख भी किया है।

यह विचारणीय है कि प्रेमचन्द की कथा–कृतियों में जो अंश 'जीवनीपरक शैली' के संस्मरणों की तरह दिखई देते हैं, वे यह सिद्ध करते हैं कि प्रेमचन्द की कथा–कृतियाँ उनके जीवन की 'जीवनीपरक' सच्ची–झूठी गाथाएँ है। यह तो बहुत पहले स्पष्ट हो चुका है कि प्रेमचन्द की कथा–कृतियाँ 'जीवनियाँ' नहीं हैं। यह रचनाकार या रचनाकार के किसी निकट सम्बन्धों की जीवनियाँ भी नहीं हैं। उनमें 'अनुभव जगत्' की समानताएँ अवश्य हैं परन्तु फिर भी उसमेजो–जो विश्वसनीय अंश हैं क्या वे 'जीवनियाँ' या उनकी ही तरह संस्मरणात्मक विधा का कोई अंश तो नहीं है? पर रचना और जीवन को इतने सीधे–सीधे मिलाकर देखने से लेखक के प्रति न्याय नहीं किया जा सकता। खासतौर पर जब हम निजी व्यक्तित्व और रचना–व्यक्तित्व की चर्चा करने का अलग आधार ज्यादा स्पष्ट पाते हों। अतः वे अंश भी उनकी कथाओं में सिर्फ कथाएँ हैं जिन्हें लेकर जीवनी या संस्मरण का आभास होता है। कोई भी लेखक अपने परिचित सामजिक जीवन से ही सामग्री या आधार–सामग्री लेता है। उस सामग्री को वह ठीक उसी ढंग से कभी नहीं स्वीकारता जिस ढंग की

वे है – अर्थात् वह उन्हें अपनी चयन–दृष्टि द्वारा ही नहीं बदलता अपितु अपने उद्धेश्यों या कला–उद्धेश्यों के अनुसार उनका उपयोग करता है। इससे यह सिद्ध करना काफी कठिन होता है कि वह किस 'पर' लिख रहा है। प्रेमचन्द की कृतियों में यह जानना तो काफी मुश्किल है कि किसे लेकर लिखा गया है क्योंकि उसकी 'अपील' क्षेत्रीय, व्यक्तिगत या वर्गगत नहीं है, अपितु इन सब सीमाओं से व्यापक 'अपील' है। इसलिए वे व्यक्ति कथाएँ नहीं हैं, वे हर उस समाज की कथाएँ हैं जिनके भीतर मध्यवर्ग, किसान तथा अन्य व्यवसायों के लोग अपने क्रिया–व्यवहारों में असन्तुष्ट नहीं है। कहा जाय तो जीवनानुभव , उनके अपने अनुभव बन गए हैं तथा वे 'लेखक' के एक अलग व्यक्तित्व की स्थापना के समर्थ साधन भी बन गए हैं।

निजी व्यक्तित्व और रचना–व्यक्तित्व को लेकर एक प्रश्न सामने आता है। क्या निजी व्यक्तित्व 'रचना–व्यक्तित्व' में समाहित नहीं हो जाता या निजी व्यक्तित्व रचना–व्यक्तित्व से ज्यादा महत्त्वपूर्ण तो नहीं है? निजी व्यक्तित्व रचना–व्यक्तित्व में बदलता जरूर है परन्तु रचना–व्यक्तित्व हर तरह से अलग और महत्त्व का होता है। अतः जब हम प्रेमचन्द के व्यक्तित्व का अध्ययन करते हैं तब हमारा मंतव्य उनके 'रचना–व्यक्तित्व' के अध्ययन से ही होता है। प्रेमचन्द से और उनके 'व्यक्तित्व' से सामान्य पाठक का परिचय उनकी रचनाओं से होता है। अतः रचनाओं के माध्यम से जिस 'रचना–व्यक्ति' का रूप बनता है, वह उनके 'निजी व्यक्तित्व' से अनेक आधारों पर अलग अवश्य है परन्तु व्यक्तित्व की तमाम संगतियों का समन्वित रूप –'रचना–व्यक्तित्व' अपने में समाहित कर लेता है।

प्रेमचन्द का रचनाकाल 1905 से 1936 के वर्षों में फैला हुआ है। आजादी की लड़ाई का यह पूरा धरातल तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु महत्त्वपूर्ण धरातल अवश्य है। वर्षों के इस समय–मंच पर प्रेमचन्द ने एक साहित्यकार की हैसियत से अपने आपको न केवल अभिव्यक्ति दी है बल्कि इसी मंच से प्रेमचन्द ने क्रियाशील राजनीतिज्ञ की भाँति नई राजनैतिक दृष्टि और अपने सन्दर्भों के त्रास से त्रस्त सामाजिक की भाँति नई सामाजिक दृष्टि दी है। प्रेमचन्द कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे। शायद इसीलिए उनके व्यक्तित्व में कहीं भी राजनेता के व्यक्तित्व की झलक नहीं है। जिन पात्रों के दुःख, दर्द के माध्यम से प्रेमचन्द ने अपने निजी जीवन का दुःख–दर्द, 'निजता' का उत्सर्ग करके, व्यक्त किया है वे पात्र भी राजनेता नहीं हैं, वे सहज ग्रामीण हैं, जिनके बहुत छोटे–छोटे हानिहीन स्वार्थ हैं तथा जो अपने भोलेपन से साम्राज्यवादी चालों के शिकार बनते हैं। सदियों से गुलाम भारत देश के भोले इन्सानों के साथ जो खेल खेला गया था, उसके प्रति विरोध की तीव्र आवाज़ उन अबोध इन्सानों की नई सामाजिक जागृति की आवाज थी, जिसे प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया। बाद में उस विरोध की भूमिका ने वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया जिसका सपना देखते–देखते आशावादी प्रेमचन्द चिर–निद्रा में सो गए।

राजनेता की तरह व्यक्तित्व न होने पर भी प्रेमचन्द की राजनैतिक विचारधारा राजनेताओं की विचारधारा की ही तरह सशक्त और कर्मठ जान पड़ती है। प्रेमचन्द 'निजी–जीवन' में राजनेता नहीं थे।, अपनी रचनाओं में भी नहीं थे किन्तु जहाँ–जहाँ अपने जीवन–प्रसंगों से या रचनाओं के प्रसंगों से वे आगे ले जाने वाले सारथी बने हैं वहाँ–वहाँ वे 'राजनेता' से कम नहीं थे परन्तु सच्चे मायने में प्रेमचन्द एक विचारक थे। उनका यह विचारक रूप उनकी रचनाओं के हर कोने से झलकता दिखाई देता है। उनके पात्र जिस तरह से जीवन की प्रतिबद्धता से जुड़े हैं, जिस तरह राजनैतिक

स्तर की एक दृढ़ता उनमें है – वे सबकी सब क्षमताएँ प्रेमचन्द के संघर्षमय जीवन के प्रसंगों से ली जा सकती है। 'वैचारिक प्रतिबद्धता' अनेक रचनाओं का मूल स्वर भी है और इसका कारण सिर्फ साम्राज्यवादी विरोधी ध्वनि को सशक्तता देना है। रचनाओं में परिव्याप्त विचार 'कैनवेस' कथाफलकों की तरह ही बड़ा है। इस बड़े विचारफलक के अन्तर्गत हम प्रेमचन्द के रचना–व्यक्तित्व के 'वैविध्य' से परिचित होते हैं। अपने समसामयिक या तत्कालीन जीवन के प्रसंग, जिस मात्रा में और जिन रूपों में सामने आए हैं, वो रूप भी प्रेमचन्द के रचना व्यक्तित्व के एक अलग रूप का परिचय देते हैं – उन तमाम प्रसंगों में प्रेमचन्द एक आलोचक की तरह निर्मम और क्रूर रहे हैं। कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के व्यक्तित्व में 'अपने वैचारिक' परिवेश की संगत आलोचना, उनके व्यक्तित्व को खरे समालोचक के रूप में प्रस्तुत करती है। सामाजिक जीवन की विसंगति के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि ने जहाँ रचनाओं में विविधता दी है वहाँ प्रेमचन्द के व्यक्तित्व को भी अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है परन्तु यह आलोचनात्मक दृष्टि केवल आलोचना–विलास या केवल 'विरोध के लिए विरोध' की दृष्टि नहीं थी बल्कि इस दृष्टि का लक्ष्य रचनात्मक था। यहीं से हम पाँएगे कि प्रेमचन्द के निजी व्यक्तित्व' के प्रसंगों में वे अपनी व्यक्तिगत लड़ाई भी लड़ते रहे हैं, वह व्यक्तिगत लड़ाई किसी भी स्तर पर सार्वजनिक आधार प्राप्त नहीं करती किन्तु रचना–व्यक्तित्व में वे उस व्यक्तिगत घेरे से ऊपर उठे हैं। उन्होंने 'व्यक्तिगत लड़ाई' के प्रसंगों को या तो सामाजिक हितों की लड़ाई में रूपायित किया था या उसे अपनी रचनात्मक आलोचना–दृष्टि से अलग फेंक दिया था। यह रचनात्मक आलोचना–दृष्टि सामाजिक नव–निर्माण की दृष्टि बनकर प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' को नये ढंग से सामने लाती है। अपने समसामयिक संघर्ष के व्यापक रूप को प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। एक तरह से यह अभिव्यक्ति उस संघर्ष रूप को स्वीकारना भी था। सामाजिक नव–निर्माण का जो मिशनरी 'संकल्प' प्रेमचन्द के जमाने में था, वह सम–सामयिक संघर्ष के स्वरों से ही अपना आधार प्राप्त करता है।

प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की आज़ादी के दिनों के बड़े साहित्यकार थे। बड़े इसलिए कि उनके समकालीन किसी अन्य लेखक की रचनाओं में वह गुणात्मकता और मात्रात्मकता नहीं थी और इसलिए भी कि प्रेमचन्द की रचनाओ में नये यथार्थ की वह छाप थी जो अन्यत्र नहीं थी। वे महान् लेखक थे या नहीं – ऐसा कोई सवाल प्रेमचन्द की रचनत्मकता के आधार पर नहीं उठता क्योंकि महानता के तमाम आदर्शों को और मध्यकालीन महानता के दम को प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं द्वारा प्रहार का केन्द्र बनाया था। 'महानता' के छदम का विरोधी लेखक महान् कैसे कहा जाएगा, यह विचारणीय है। दूसरे अर्थों में यदि हम गांधी के बराबर प्रेमचन्द को रखें तब भी तुलना में प्रेमचन्द महान् नहींठहरते। वे बड़े लेखक हैं, छोटे लेखकों की जमात की तुलना में और शायद यही उनकी रचनाएँ भी सिद्ध करती हैं। आदमी के रूप मे महानता के परम्परावादी शब्दार्थ से परे प्रेमचन्द अवश्य महान हैं। उनमें मनुष्य को जानने की जो सजगता है तथा अपने को अभिव्यक्त करने की जो सहजता है, वह निःसंदेह उनके 'महान' होने के आधार हैं परन्तु जहाँ–जहाँ प्रेमचन्द कपोल–कल्पित आदर्शों और मूल्यों के निहितार्थ के उपदेशक या प्रवक्ता बने हैं, वहाँ उनके व्यक्तित्व की कमज़ोरियाँ भी सामने आ जाती हैं। एक आदमी की शक्ति और उसकी कमज़ोरी की सच्ची तस्वीर के रूप में प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व यथार्थवादी ज्यादा है।

अपने समय के समाज के बारे में प्रेमचन्द बहुत जानते थे। छोटे–से–छोटे प्रसंग उनकी निगाह से छूटे नहीं हैं। अपने समाज की यह पहचान विरले लोगों में होती है। वे यह जानते थे कि एक निष्क्रिय समाज 'पतन' के किस बिन्दु पर खड़ा है तथा वही समाज सामाजिक–जागृति पाकर जब जब जागता है तो वह किस तरह अपने अतीत और वर्तमान के संकटों के बीच भविष्य के प्रति आशावादी होता है। सामाजिक चेतना के महीन बिन्दुओं को, उन सामाजिकों के बीच प्रेमचन्द ने पहचाना था, जिन्होंने उस चेतना को स्वाभाविक रूप में प्राप्त किया था। उन्होंने किसी तरह के सायास कम से उसे नहीं लिया था। ऐसे लोगों की कथाओं के वाचक के रूप में प्रेमचन्द उपदेशक, प्रचारक या सुधारक नहीं लगते बल्कि वे संघर्षशाली नागरिक की तरह बीच में उपस्थित होते हैं।

'गोदान' में मेहता के आदर्शवाद और आशावाद तथा होरी के संघर्ष के बीच प्रेमचन्द विद्यमान रहते हैं।वे दृष्टि या तटस्थ व्यक्ति की तरह अलग नहीं रहते। उनके व्यक्तिगत अनुभव जिस तरह निर्वैयक्तिकता प्राप्त कर इस तरह की रचनाओं में 'सार्वजनिक अपील' से सम्पृक्त हुए हैं, वह एक सच्चे रचनाकार की निर्वैयक्तिकता के अनुभव हैं।कथाओं में विवरण प्रस्तुत करने वाले निर्वैयक्तिक प्रवक्ता के रूप में भी कभी हम 'लेखक' को कथा के मूल घटनाक्रम से अलग नहीं पाते हैं। अर्थात् प्रेमचन्द 'लेखक' के रूप में और आदमी के रूप में – दोनों रूपों में 'व्यक्तित्व की गतिमयता' के साथ उपस्थित रहते हैं।

मानवीय गुणों से सम्पन्न प्रेमचन्द के कृति–व्यक्तित्व के कुछ ऐसे पक्ष हैं जिनकी सहज में ही उपेक्षा नहीं की जा सकती। अपनी रचनाओं में जिस 'मूल्य–संसार' की अवतारणा प्रेमचन्द ने की है वह उन अन्य पक्षों को उद्घाटित करता है। क्षमा या मुक्तिमार्ग या सुजान भगत जैसी कहानियों का कथा–परिवेश देखा जाए तो उनमें प्रेमचन्द मध्यकालीन आदर्शवाद के आधुनिक संस्करण प्रस्तुत करते प्रतीत होते हैं किन्तु उन कहानियों या उन जैसी अन्य कथा–कृतियों के 'मूल्य–संसार' को इतनी आसानी से आधुनिक संस्करण कहकर नहीं टाला जा सकता उनमें रचनाकार की उपस्थिति को वैचारिक आग्रह के कोणों में देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द आरम्भिक कहानियों में 'मनुष्य' को उसके ऐसे रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे जो एक साथ गरिमा पंडित भी हो और साधारण भी। वस्तुतः यही द्वन्द्व प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' में बाद की रचनाओं के कथ–परिवेश को लेकर भी देखा जा सकता है। हमारा मंतव्य यहाँ यह सिद्ध करना नहीं है कि प्रेमचन्द का पूरा रचना–व्यक्तित्व किसी विरोधाभास का आभास देता है परन्तु उनके इस रूप को भी 'मूल संसार' की रचना का व्यक्तित्व मान लेना चाहिए जिसमें वे परिकल्पित स्थितियों को भी विश्वास का भ्रम दे डालते हैं।

कृतियों के परिमाण से यदि हम प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' का अनुमान लें तो हमें उपरोक्त किस्म की स्थितियाँ भी मिलेंगी, किन्तु कुछ कृतियों के चुनाव के उपरान्त जिस चित्र का अनुमान होगा वह समग्र रचना व्यक्तित्व का अनुमान नहीं दे पाएगा। इन विविध कथाओं और विवादास्पद विरोधाभास को व्यंजित करने वाली स्थितियों के मूल अनुभवों के आधार पर यदि हम देखें तो 'रचना–व्यक्तित्व' का सही रूप सामने आता है। अनुभवों की विविधता का आलोक प्रेमचन्द की रचनाएँ प्रसारित करती हैं, किन्तु उन अनुभवों में विचित्र किस्म की एक समानता भी है। उस समानता का उल्लेख संकेत रूप में पहले किया जा चुका है। अनुभवों की इस नई परम्परा से एक ओर प्रेमचन्द के समय

के दृश्यों का यथार्थ सामने आता है, दूसरी ओर वे अनुभव अपने क्रम में प्रेमचन्द के व्यक्तित्व के विकास का सत्य भी सामने रखते हैं। 'मानवीय अनुभवों' को, चाहे वे निजी हों या समय के अनुभव, प्रेमचन्द ने अपनी वैचारिक दृष्टि के अनुरूप कला–कृतियों में रूप दिया है या यों कहें कि जिस रूप में वे अनुभव कला–कृतियों में मिलते हैं उससे प्रेमचन्द की वैचारिक दृष्टि का परिचय मिलता है। अर्थात् यह स्पष्ट हुआ कि प्रेमचन्द ने 'अनुभवों' को वैचारिक आग्रहों की सिद्धि के लिए उपयोगी देखा था। यह सच है कि परम्परावादी छाप के बावजूद उन्हीं अनुभवों की रचनाओं के द्वारा प्रेमचन्द ने नयी परम्परा की भी सर्जना की थी। साहित्य की परम्परा को प्रेमचन्द की रचना–व्यक्तित्व की परम्परा ने सम्पन्न किया था। यह अलग सवाल है कि साहित्य में कलाबोध (सौन्दर्यबोध) की परम्परा का विकास उस रूप में नहीं होपाया। कारण जो भी हो, प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व भी यह तथ्य सामने रखता है कि कला या सौंदर्य ही मात्र आदमी की सिद्धि के लक्ष्य नहीं हैं।

प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व जिस परम्परा की शुरूआत करता है उसमें 'कला–परम्परा' का पूर्ण निषेध नहीं है। जीवन–दृष्टि और विचार–दृष्टि का जो लक्ष्य–मान यथार्थांकन है, वह उनकी कलादृष्टि भी है। अतः कला मूल्यों की परम्परा में यथार्थ का रूपांकन, जीवन–मूल्यों की परम्परा में उदारतावादी मानववाद का स्वरूप भी प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' के अंग बन जाते हैं। प्रेमचन्द के अनुभवों की वैयक्तिक स्थिति को सार्वजनिक होने की नयी परम्परा में रूपान्तरित किया था, साथ ही मध्यकालीन दरबारी विलास के प्रति विरोध, साम्राज्यवादी आतंक के प्रति विरोध तथा महत्त्वहीन, उपयोगिताहीन मानव–मूल्यों के प्रति अस्वीकृति की छुटपुट परम्पराओं की भी सक्रिय शुरूआत की थी। उनके व्यापक विरोधी स्वर की मूल भूमिकाएँ सेवासदन, कर्मभूमि और गोदान की उपन्यास कथाओं में प्रतिफलित हुई हैं। बड़े–बड़े कथाफलकों वाले उपन्यासों, लम्बे कथानकों वाली कहानियों की परम्परा के साथ–साथ छोटे–छोटे कथाफलकों की परम्परा भी प्रेमचन्द में मिलती है। इन परम्पराओं में हम लेखक प्रेमचन्द से तो साक्षात् करते हैं, उपन्यसों के 'रचना विधान' में खास तरह की अनुकूलता उस समय के सामाजिक का भी साक्षात् कराती है। यह इस बात का प्रमाण है कि प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में चरित्रों के माध्यम से सामाजिकों के व्यक्तित्व की नयी पहचान दी है। यह समय के दबावों के बीच का वह मानव–साक्षात् है जो केवल कलाकृतियों में ही सुरक्षित रह सकता है। घटनात्मक इतिहास या पत्रकारिता के 'खानों' में उसकी सामयिक शक्ल तो मिल जाती है, उसके 'व्यक्तित्व का कालातीत रूप केवल कलाकृतियों में ही रहता है। इस दृष्टि से कभी फीका न पड़ने वाला प्रेमचन्दकालीन सामाजिक तो मिलता ही है खुद प्रेमचन्द का वह रूप भी मिलता है जो उनके 'निजी–जीवन' के प्रसंगों में भी नहीं है।

'रचना–व्यक्तित्व' अपने पारिभाषिक अनुक्रम में रचनाओं से अलग किसी उपस्थिति को स्वीकार नहीं करता, किन्तु प्रेमचन्द के संदर्भ में 'रचनाव्यक्तित्व' के कई ऐसे स्तर हैं जो पारिभाषिकवृत के नहीं हैं, किन्तुउनका अपना महत्त्व है। उदाहरण के लिए हम उन परम्पराओं की बात कर सकते हैं जिनकी शुरूआत प्रेमचन्द ने की तथा जिनकी धाराएँ प्रेमचन्द को नए रूपों में परिचित कराती हैं। यहाँ उन परम्पराओं का एक दूसरा पक्ष भी देखा जाना चाहिए।वे परम्पराएँ दूसरे लेखकों द्वारा गति पाकर 'प्रेमचन्द के रचना व्यक्तित्व की सक्षमता को पुष्ट करती हैं। कथानायकों की पस्म्परा 'होरी' से चलकर 'अंधेरे बंद कमरे' के मधुसूदन तक में, बदले हुए रूपों में उस शक्ति का परिचायक है, जो प्रेमचन्द की

रचना–शक्ति या रचनात्मकता के रूप में जानी जाती है। इसी तरह बड़े कथाफलकों की परम्परा नये सामाजिक यथार्थ के रूप में आज भी प्रवाहित है। जो परम्पराएँ किसी लेखक के रचनाक्रम के बाद भी चलती हैं, वे लेखक के उसगतिमान प्रभावशाली रचना व्यक्तित्व की सक्षमता की भी प्रतीक हैं, जो परम्पराओं के रूप में अपनी सार्थकता के बिन्दु स्थापित करती चलती हैं।

प्रेमचन्द की रचना–परम्परा को पूरी तरह जानने के लिए, प्रेमचन्द के रचना–विधान का परिचय अनिवार्य है। रचना–विधान के अन्तर्गत केवल रचना शैली ही विवेच्य नहीं है, वस्तु–चेतना, चयन–दृष्टि, विचार दृष्टि, संवेदना तथा मानवीय अनुभवों के उस प्रारूप की भी विवेचना होती है जो 'कृति' को उसकी सही पहचान देती है। प्रतिज्ञा, वरदान आदि उपन्यास कथाओं में प्रेमचन्द के रचना–विधान की जो एकरूपता है वह अन्य उपन्यासों में नहीं है। 'निर्मला' और 'गोदान' में 'त्रासद–भाव' की समानता तो है, किन्तु अन्य आधारों पर उनके रचना–विधान में मूलभूत अन्तरहै। इसी तरह कथाक्रमों की 'एकरसता' उनके समग्र रचना विधान को अलग रूप दे डालती है। वस्तुततः रचना –विधान का यह प्रकरण 'रचना–व्यक्तित्व' को भी अलग–अलग स्तर दे डालता है। अतः यदि प्रेमचन्द की रचना–परम्परा में विविधता है तो वह परोक्ष आधारों पर 'रचना व्यक्तित्व' की विविधता से सम्बद्ध है, किन्तु सीधे–सीधे आधारों पर रचना परम्पराओं के विविध रूप 'रचना–विधान की विविधता के रूप भी हैं। 'रचना परम्परा' के इस प्रकरण में प्रेमचन्द की विचार–दृष्टि सर्वाधिक प्रभाव देने वाली है। 'समष्टि मंगल' का विचार–सूत्र प्रगतिवादी लेखकों से लेकर आज के सामाजिकता से प्रतिबद्ध रचनाकारों में विकसित होता है। कथाओं के नये प्रसंगों के प्रसंग छोड़ दें तो हिन्दी कहानी और उपन्यास का अधिकांश भाग प्रेमचन्द की 'कथा परम्परा' का विकास है। प्रेमचन्द का वैचारिक जगत तो रचनाओं में प्रतिलक्षित होता है, कहीं–कहीं छिपे रूप में, व्यंग्य भाव से प्रेमचन्द की सुधारवादी परम्परा भी दिखाई देती है। चाहे हम सीधे–सीधे रचनाओं में, आज की रचनाओं में प्रेमचन्द का प्रभाव या अनुकरण या प्रेमचन्द की रचना–दृष्टि की स्वीकृत न देखें, किन्तु उसकी विकसित रेखाओं को नयी कहानी और पिछले दशक की उपन्यास–रचनाओं में देखा जा सकता है। ये नयी कृतियाँ परम्परा का अनुकरण या स्वीकार न होने पर भी विकास की रेखाएँ इसलिए हैं कि इनके मूल में नए सामाजिक संस्कार की परिवर्तित चेतना की रेखाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि प्रेमचन्द को ये परोक्ष–अपरोक्ष रचना परम्पराएँ प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' के प्रभाव का परिचायक हैं। परवर्ती रचनाओं पर पड़े इस 'रचना–व्यक्तित्व' की छाप का परीक्षण अनेक स्तरों पर किया जा सकता है। वैचारिक आवृतियाँ, जीवन दृष्टि तथा जीवनानुभवों का मानवीय रूपान्तरण वे कुछ आधार या स्तर हैं।

अपने वर्तमान के यथार्थ, वैचारिक पीठिका, सामाजिक संस्कार और अतीत के सांस्कृतिक दबाव के बीच से जिस अनुभव को प्रेमचन्द ने लेखन के लिए चुना था, वह अनुभव अपने–आप में नये सामाजिक संस्कार का एक आयम बन जाता है। उसके चुनाव की दृष्टि ही एक तरह की कलादृष्टि है जो प्रेमचन्द के यथार्थवादी दृष्टिकोण से विशेष संज्ञा ग्रहण करती है। यह यथार्थ सत्य ही कलासत्य के रूप में कथाओं में उभरा है। इन्हीं के अनुरूप एक विचारशील, संवेदनशील आदमी के रूप में प्रेमचन्द का व्यक्तित्व झलकता है। प्रेमचन्द का यह 'व्यक्तित्व' जिस तरह से नई परम्परा स्थापित करता है, उसी तरह से वह भारतेन्दु कालीन पुनरुत्थानवादी अनेक परम्पराओं पर प्रहार भी करता है तथा किन्हीं

आधारों पर उनकी सार्थकता भी स्वीकार करता है। भारतेन्दु ने स्वयं 'जनभाषा' को अपने साहित्य के लिए माध्यम चुना था, वह 'जनभाषा' नयी सामाजिक क्रान्ति के लिए इसके बाद के सभी समर्थ लेखकों द्वारा स्वीकार की गई। वस्तुतः भाषा का यह 'व्यक्तित्व' कोई अपना व्यक्तित्व नहीं है, लेखक के 'रचना–व्यक्तित्व' की समानता से वह अपना अलग व्यक्तित्व आवश्यक प्रदर्शित करती है। प्रेमचन्द का व्यक्तित्व इस दृष्टि से उदाहरण माना जा सकता है। भारतेन्दुकालीन अनेक परम्पराओं का निषेध प्रेमचन्द के 'रचना व्यक्तित्व' की हल्के रंगों वाला परम्परा–विरोधी भी बना डालता है। यह 'परम्परा विरोध' बाद में उनकी रचनाओं में 'स्वस्थ विरोध' की आवाज़ के रूप में बदल जाता है।

प्रेमचन्द ने जिस समय लिखना प्रारम्भ किया था, उस समय तक काव्य–कथाओं की रचना का मुख्य बिन्दु परम्परा का अनुकरण और अनुमोदन ही था। अपने लिखने के आरम्भिक दिनों में वे खुद भी इन परम्पराओंसे छुटकारा नहीं पा सके थे। 'शाप' जैसी कहानियाँ और बाद में कायाकल्प के देवप्रभा जैसे प्रसंग–प्रेमचन्द को पिछली परम्परा से जोड़ने वाले रचना–प्रसंग हैं परन्तु कुछ ही समय बाद प्रेमचन्द ने रचनाओ में जिस 'पात्र' की स्थापना की थी, वह 'भारतीय जीवन' का जीता–जागता इन्सान था। उसके लिए परम्परा का महत्व था भी और अनेक प्रसंगों में नहींभी था। प्रेमचन्द ने इसी के आधार पर अपनी कलात्मकता द्वारा एक उपयोगितावादी दृष्टि रचनाओं में प्रक्षेपित की है।प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों ने (कहा जाता है) अनेक श्रोता और पाठक पैदा किए थे। वस्तुतः यह बात उस खास दृष्टि की ओर संकेत करती है जिसके गुणवर्ती ध्रुवान्त पाठक – श्रोता–रसज्ञों की बदली हुई मानसिक स्थिति को व्यक्त करती है। अर्थात् प्रेमचन्द ने आकर मध्यकालीन–रीतिकालीन 'रसज्ञ' बदलकर आधुनिक जीवन के यथार्थ का 'रसज्ञ' बना दिया था। उस 'रसज्ञ' के लिए केवल प्रेमचन्द की बदली हुई भाषा ही 'नवीनता' की मार्गदर्शक नहीं थी, बल्कि प्रेमचन्द की साधारण मनुष्य की कथाएँ भी आँखे खोलने वाली थीं, जिस 'साधारणत्व' की प्रेमचन्द ने स्थापना की थी, वह अनेक वर्गों का आत्मीय था। 'रागात्मक आत्मीयता' का यह बिन्दु ही प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' को उपलब्धि का एक शिखर दे डालती है। वह उस 'रचना–व्यक्तित्व' की क्षमता है जो अपने सशक्त आधारों पर कथा और विचार को सीधे पाठक के मन में पहुँचाती है। वह पाठक के मन में रागात्मक अन्तरंगता का विश्वास भी दे डालती है। रसज्ञता, प्रेषणधर्मिता और परम्परा के बदलाव के तथ्य भी प्रेमचन्द के रचना–व्यक्तित्व का नया परिचय देते हैं। साथ ही उनसे हमें प्रेमचन्द की परिवर्तित कला–धारणाओं का परिचय भी मिलता है। उत्तर मध्यकाल की कला–धारणाओं का यह बदलाव महत्वपूर्ण है तथा यह एक सांस्कृतिक बदलाव का भी अनुमान दे देता है। उत्तर मध्यकाल के व्यवस्थित धार्मिक जीवन की जगह शुद्ध आर्थिक आधारों पर समाज–निर्माण का संघर्ष निश्चय ही उस बदलाव की प्रतीकीकृत क्रिया है। प्रेमचन्द ने साहित्य 'दरबारी वर्ग' की सम्पति समझकर नहीं रचा है। वे साहित्य में एकान्त विलासिता, छद्म चमत्कार, व्यवस्थित जीवनरूप के उपयोग के विरुद्ध थे। वे कला को पच्चीकारी नक्काशी और सज्जात्मक परिवेश को गढ़ने के लिए नहीं मानतेथे, बल्कि बाहरी तड़क–भड़क से दूर एक सहज अभिव्यक्ति को कलात्मक मानते थे।

लेखक प्रेमचन्द 'गरीबी' के बीच के आदमी थे। वे गरीब परिवार से आये थे। गरीबी से उनका नज़दीकी परिचय था। वे इसीलिए जब ग्रामीण किसानों का या मज़दूरों का चित्रांकन करते हैं तो वो उन परिस्थितियों के संकेत छोड़ते जाते हैं, जो इसके लिए उत्तरदायी हैं। जब पढ़–लिखकर प्रेमचंद सरकारी नौकरी में आए तब उन्होंने अपनी रचनाओं

में 'नौकरशाही' के बारे में सच्ची बातें व्यक्त की। अर्थात् उन दोनों समाजों का घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने के बाद उन्होंने उन पर कलम चलाई थी। 'उत्तरदायित्व' से भरा हुआ उनका निजी जीवन, उनके 'रचना–व्यक्तित्व' के सामने बड़ा नही हैं। उन्होंने जिस भी वर्ग के बारे में लिखा अपने 'व्यक्तित्व' की 'गरिमा' के अनुकूल लिखा। आरम्भिक कहानियो में यह सच्चाई उभरती है। उन्होंने 'स्कूल जीवन' की कथाओं में अपने अनुभव दिए हैं – उसकी पुष्टि मन्थननाथ गुप्त और अमृतराय आदि के ग्रन्थ करते हैं, जिनमें प्रेमचन्द के निजी जीवन के 'शेड्स' मिलते हैं। अपनी गरीबी को निर्वैयक्तिक स्तरों पर लाकर प्रेमचन्द ने 'भारत की गरीबी' का वर्णन किया है। जैसा हम पहले मान चुके हैं प्रेमचन्द के जीवन (निजी जीवन) प्रसंगों का महत्व उनके रचना–व्यक्तित्व के सामने अर्थहीन पड़ जाता है। यह 'निर्वैयक्तिक उनके रचना–व्यक्तित्व का एक दूसरा पक्ष है। वे गरीब थे, उसका उन्हें परिचय था। अपने उस निजी अनुभव का उन्होंने बड़ा धरातलप्रस्तुत किया था। यह लेखक की अनेक 'अच्छाइयों' का प्रतिफलन कहा जा सकता है किन्तु शुद्ध सामाजिक अर्थों में यह उनके निर्वैयक्तिक व्यक्तित्व की दायित्ववादी स्थिति को स्पष्ट करता है। प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' में प्रेमचन्द की निजी गरीबी और उत्तरदायित्वपूर्णता उतनी ज्यादा नहीं उभरती जितनी कि 'हिन्दुस्तान के गरीबों' की गरीबी का चित्र उभरता है। इस दृष्टि से अपने समय के यथार्थ को चित्रित करने की 'विलक्षणता' प्रेमचन्द में विद्यमान थी। भारतीय गरीबों के प्रति सहानुभूति प्रेमचन्द के करुणामय हृदय की सहानुभूति नहीं है, अपितु वह संघर्ष की समरूपता या समानता के वर्गों की पारस्परिक सद्भावना है जो प्रेमचन्द में मिलती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह भी है कि प्रेमचन्द का रचना व्यक्ति मानवीय गुणों से पूर्ण था।

प्रेमचन्द की कृतियाँ उनके व्यक्तित्व का स्वयं साक्ष्य जरूर हैं किन्तु वह प्रेमचन्द का हूबहू चित्र या दर्पणावत बिम्ब नहीं है। प्रेमचन्द के रचना–व्यक्तित्व के मोटे–मोटे 'कण्टूर' उसमें मिलते हैं। वह प्रेमचन्द का ही व्यक्तित्व नहीं, किसी भी ईमानदार समझौतावादी–प्रवृति–विरोधी लेखक का हो सकता है। इसलिए यह कहना कि प्रेमचन्द की रचनाओं में प्रेमचन्द या उसके परिचित केन्द्रीय कथा–व्यक्तित्वों की ही जीवनी झलकती है, सत्य नहीं है। प्रेमचन्द की रचनाएँ किसी भी आदमी की जीवनी हो सकती है, बल्कि सामाजिक, आर्थिक सन्दर्भों की समानता में वह हर किसी आदमी की जीवनी हो सकती हैं। एक तो उन रचनाओं में आत्म–मन्थन है, उनमें मनुष्य और मनुष्यता के अन्वेषण का यहपक्ष मानवीय आधारों पर स्पष्टता पाता है। इतना तो साफ है कि प्रेमचन्द का 'रचना व्यक्ति' एक उद्धार लेखक का व्यक्तित्व है, उसकी कला अपनी सहजता में आकर्षक है तथा वह 'व्यक्तित्व' रचनाओं के नये अर्थों को समझने का एक सोपान बन जाता है।

संघर्षमय जीवन का जो रूप प्रेमचन्द में मिलता है, वह रूप उनके समकालीन लेखकों में नहीं मिलता। यह भी एक कारण है कि वे अपने समकालीनों से बिल्कुल अलग, 'स्वतन्त्र रचना–व्यक्तित्व' के रूप में उभरे व्यक्तित्व हैं। व्यक्तित्व का बनावटी रूप उनमें नहीं है। देखा जाए तो प्रेमचन्द के 'कृति–व्यक्तित्व' की भी अपनी ही दिशा है। वह एक परम्परा के रूप में विकसित होकर 'यशपाल' और रेणु की कथाकृतियों में परिलक्षित होता है। यशपाल के 'झूठा सच' के नायक की तरह के संघर्ष , पराजय, आदि के तत्त्व प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिल जाते हैं। 'कथानायकों' और 'खलनायकों' की परम्परा को पुष्ट करने में प्रेमचन्द के कृति–व्यक्तित्व की कई ऐसी समानताएँ हैं, जो विकसित रूपों

में विद्यमान हैं। प्रेमचन्द की विकसित परम्परा, कथारूपों की परम्पराओं के रूप में, केवल 'रूढ़ि' के रूप में आगे नहीं आई है, वह 'सृजन परम्परा' के रूप में विकसित हुई हैं। प्रेमचन्द के बाद के युवा लेखकों ने, जिन्होंने प्रगतिवादी लेखकों के समान अपनी दृष्टि का विकास किया है, कथा–परम्परा को विकास देने के साथ–साथ मानवीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उस अन्तहीन संघर्ष को कलात्मक आधार दिया है।

प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों में बहुधा ऐसे स्थल भी मिलते हैं, जहाँ प्रेमचन्द 'मूल्य–संसार' का विरोध करते हैं। 'गबन' में रामनाथ का प्रसंग 'खोखले विरोध' का स्वर बनता है। उसकी अवसरवादी प्रवृति के खोखलेपन के लिए जिस स्पष्टता की अनिवार्यता होनी चाहिए, वह वहाँ मिलती है। ऐसे ही अन्य अवसरों पर अपने उद्धेश्यवादी दृष्टिकोण की सिद्धि के अतिरिक्त जो दृष्टि उभरती है वह यथार्थवादी तो है ही, अपने अव्यक्त रूप में वह समय की चुनौतियों का स्वीकार भी है। समय की चुनौती यही है कि ऐसा वर्ग भी जिसे संघर्ष के लिए तत्पर रहना चाहिए अक्सर अवसरवादी साबित हो जाता है। तब चुनौतियों के सामने खड़े होकर विवेकशील मनुष्य को अपने ही 'वर्गो'से भी लड़ना पड़ता है। हम देखेंगें कि प्रेमचन्द व्यक्ति रूप में अपने ही 'वर्ग' के प्रबुद्ध समाज से भी लड़े हैं तथा कृतियों में उनके 'व्यक्तित्व' की यह विवेकशील लड़ाई, अलग ढंग से प्रेमचन्द की तस्वीर को सामने रखती है।

अपने समय के 'जन–समाज' को प्रत्येक लेखक तरह–तरह से रचनाओं का आधार बनाता है। 'जन–समाज' का चित्र स्थिरीकृत 'बिन्दु' की तरह समान होता है परन्तु रचनाओं में वह भिन्न रूपों में आता है। दरअस्ल समर्थ लेखक की पहचान इसी से होती है कि उसकी रचनाओं में जन–समाज' कैसे चित्रित हुआ है। प्रेमचन्द समर्थ लेखक थे कि नहीं – यह तो सिद्ध हो ही सकता है किन्तु प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व वह समर्थता प्रक्षेपित करता भी है कि नहीं इसका भी अनुमान इस आधार पर किया जा सकता है। जैसा हम मानते हैं, प्रेमचन्द महान् लेखक नहीं थे। चाहे उनके रचना–संसार का 'प्रभा–मण्डल' कहीं–न–कहीं 'क्लासिकल बोध' (शास्त्रीय बोध) से जुड़ा हुआ था। इसके बावजूद भी वे महान् लेखक नहीं थे। रचनाओं के फैले हुए 'स्पेन' पर देखा जाए तो महानता व्यंजित करने वाला व्यक्तित्व उनका नहीं। उनकी 'समर्थता' के बारे में भी सन्देह होता है क्योंकि 'रचना–व्यक्तित्व' की समर्थता केवल 'यथार्थांकन' की समर्थता नहीं है, बल्कि अपने समय के दृश्य संसार, दृश्य जन–समाज को समय के प्रतीक में ढालकर सौन्दर्य का मानक स्थापित करता – समर्थता का लक्षण है। प्रेमचन्द की कहानियाँ लें या उपन्यास या उनके गद्य–निबन्ध, बहुत कम स्थलों पर प्रेमचन्द में, 'रचनात्मक के स्तर पर' सौन्दर्य के मानक स्थापित करने जैसी कोई कोशिश उभरी है परन्तु वे अन्य स्तरों पर, अन्य कोणों से समर्थ लेखक हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उनके रचना–व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए हम उन आधारों की ओर संकेत भी कर चुके हैं। पहले 'यथार्थांकन' को उनकी कलादृष्टि मानते हुए उनके रचना–व्यक्तित्व की समर्थता की भी चर्चा की जा चुकी है, किन्तु वह 'कला–दृष्टि' सौन्दर्य दृष्टि का कोई मानक है, इस पर निर्णय नहीं किया जा सकता।

अपनी वैचारिक प्रतिबद्ध, जीवन–दृष्टि द्वारा प्रेमचन्द ने एक निर्मम आलोचना–दृष्टि अवश्य रचनाओं में प्रक्षेपित की थी, किन्तु वह 'इतिहास –बोध' के कौन से अनुक्रम में ली जाए, वह भी अणगिणत हैं। उनके रचना–व्यक्तित्व का यह हिसा – कि उनकी जीवन–दृष्टि, जो उन्हें यथार्थवादी रचनाकार के रूप में प्रस्तुत करती है, किस वैचारिक क्षितिज

की दृष्टि है – अनेक तरह के विरोधाभासों से भरा हुआ है। अगर वह शुद्धतः मार्क्सवादी चेतना है तो उसमेंकहीं भी किसी स्तर पर प्रतिगामी–परम्पराबद्ध मूल्य–संसार से समझौता नहीं होना चाहिए, अगर वह गांधीवादी चेतना है तो उसके मूल में यथार्थ की जगह 'आत्म–शुद्धि' का प्रचारक भाव वर्तमान रहना चाहिए। यह विरोधाभास भी उनके रचना–व्यक्तित्व की एकरूपता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। सुविधा के लिए यह माना जा सकता है कि उदारतावादी, मानववाद ही उसकी मूल चेतना रही परन्तु यह मान लेने पर भी 'विरोधाभास' का आरोप मन्द नहीं पड़ जाता। इसी कारण प्रेमचन्द की रचनाओं में 'जीवन की असंगतियाँ' यथार्थ का पक्ष बनकर भी कला की असंगतियाँ बन गई हैं। प्रेमचन्द के कृति–व्यक्तित्व को दोषयुक्त मानने जैसा सामान्यीकृत निर्णय भी नहीं लिया जा सकता, क्योंकि अभी इस सारे प्रकरण में परीक्षण की अनेक संभावनाएँ हैं। सातवें दशक में भी प्रेमचन्द केवल अतीत बनकर 'अर्थहीन' नहीं हो जाते, शायद यही कारण है कि प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व की संभावनाएँ अभी भी विचार की चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

अतः समर्थ रचना–व्यक्तित्व का सन्देह लिये हुए भी प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व अपनी संभावनाओं की वजह से चुनौती बना हुआ है। यह उस रचना–व्यक्तित्व के जड़ न होने का उदाहरण है। परवर्ती लेखकों में परम्पराके रूप में प्रवाहित होने का 'तथ्य' भी प्रेमचन्द के रचना–व्यक्तित्व की संभावनाओं को पुष्ट करता है। मनुष्य के जिस रूप को प्रेमचन्द ने अपनी खुली कलम से चित्रित किया था, उसे कच्चा माल आज हम बेशक मान लें लेकिन धीरे–धीरे जिस रूप में परवर्ती रचनाओं में अपनी समग्र कलात्मक गहराइयों के साथ रचनाओं में मनुष्य का चित्र स्थापित हुआ है उसका मूल प्रेमचन्द की रचनाएँ ही हैं।

अपने समय के राजनैतिक क्षितिज में से मध्यवर्ग का चुनाव प्रेमचन्द ने किसी औपन्यासिक कर्म की पूर्ति जैसे भाव के लिए नहीं किया था, अपितु वह उनके लिए एक ऐसी अनिवार्यता का बिन्दु था, जहाँ से वे अतीत से छुटकारा पाने के भाव के साथ–साथ वर्तमान के साथ जुड़े रहने का भाव भी पाते थे। मध्यवर्ग वह मंच था, जिसमें खुद प्रेमचन्द जैसे निम्न मध्यवर्गीय लेखक भी थे, साथ ही वह वर्ग प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' के रागबोध के स्तर का भी वर्ग था। उन्होंने अपने रागबोध की आत्मीयता का प्रचार उसी मंच से किया जिससे वे खुद सम्बन्धित थे। उन्होंने मध्यवर्ग की अनेक स्थितियों का पर्दाफाश किया, साम्प्रदायिक तनाव को जिन्दा रखने वाली शक्तियों का पर्दाफाश किया और अपने उस गुस्से को भी व्यक्त किया जो देशीय क्षितिज पर हो रही घटनाओं के कारण उभरता था। प्रेमचन्द के वे 'व्यक्तिगत–दस्तावेज' जो चिट्ठियों के रूप में सुरक्षित हैं, इसके प्रमाण हैं। यहाँ हम उनके विस्तार में नहीजाएँगे, सिर्फ यह देखेंगे कि 'मध्यवर्ग की ईमानदारी, समझौतेवादी प्रवृत्ति, पैसे की अन्यतम लालसा और लोलुप दृष्टि – क्य स्वयं प्रेमचन्द के विरोध का केन्द्र नहीं बनती? सच्चाई यह है कि इनमें से कई स्थितियों में पहले प्रेमचन्द खुदभी थे। उनसे मुक्ति पाने के बाद प्रेमचन्द ने उनकी 'उपयोगिता' को उस बड़े षड़यन्त्र के साथ जोड़ दिया था जो आज़ादी प्राप्त करने के प्रयासों में बाधक था। मध्यवर्ग की वर्गीय चेतना का कोई अच्छा पात्र 'प्रेमचन्द' के मुकाबले का नहीं है।उनकी रचनाएँ असंख्य पात्रों की उपस्थिति देती हैं, किन्तु स्वयं प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व एक 'प्रमाणिक पात्र' के रूप में उभरता है।

प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' का एक हिस्सा 'प्रचारक–व्यक्तित्व' का भी है। अनेक लोगों द्वारा वह हिस्सा प्रमुख मान लिया गया है, जबकि सच्चाई यह नहीं है। 'प्रचारक' रूप उनके व्यक्तित्व में गांधी के प्रभाव के फलस्वरूप

आया। परन्तु वे उन स्थलों पर प्रचारक नहीं हैं जहाँ वे मध्यवर्ग की स्थितियों का यथार्थांकन करते हैं, वैचारिक प्रतिबद्धता की निष्ठा दिखाते हैं। यही नहीं 'वातावरण' में विश्वसनीयता लाने के लिए वे मानव स्वभाव में कभी 'आदर्शवादी' आस्था के पक्ष भी दिखा देते हैं तो वहाँ वे प्रचारक नहीं रह जाते। उपन्यासों में प्रेमचन्द ने समस्याओं के समाधान के लिए 'आश्रम–व्यवस्था' की जो परिकल्पना दी है, वह उनके सुधारवादी प्रचारक रूप का प्रमाण है किन्तु पूरी तरह से प्रेमचन्द के प्रचारक–व्यक्तित्व के वे अंश भी प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि कहा जा सकता है कि 'आश्रम–व्यवस्था' की अविश्वसनीय स्थिति का चित्रण कर प्रेमचन्द उसी स्थिति में उसकी अनुपयोगिता का आधार भी दे देते हैं। प्रेमचन्द इन अंशों के अलावा भी 'प्रगतिवादी विचार' के प्रचारक हैं, इसके लिए उनकी कथाओं से वे पात्र लिये जा सकते हैं जो समाजवाद के प्रवक्ता हैं, कहना चाहिए कि प्रेमचन्द के व्यक्तित्व में 'प्रचारक' का हिस्सा है, किन्तु वह उनके 'रचना–व्यक्तित्व' के 'मान्नीय' पक्ष की तुलना में बहुत कमजोर, अविश्वसनीय और ऊपरी अथवा बनावटी लगता है। इस बनावटीपन से बाहर जहाँ–जहाँ समसामयिक जीवन 'कच्चे माल' की अपेक्षा औपन्यासिक शिल्प के रूप में सांकेतिक बन आया है वहाँ वह 'काव्यमय' लगता है।

रचनाओं में कला, विचार, जीवन आदि सम्बन्धी जो धारणाएँ स्पष्ट होती हैं, वे धारणाएँ प्रेमचन्द के निजी व्यक्तित्व की उपलब्धियाँ हैं जो उन्होंनें अपने 'समय' से संघर्ष करते हुए प्राप्त की है। आरम्भिक रचनाओ में प्रेमचन्द भी निष्क्रियतावादी या पलायनवादी लगते हैं, जहाँ वे अपनी कथाओं को मानवेतर कल्पना–जगत् के अति सत्यों से सम्पन्न करते हैं, किन्तु आरम्भिक रचनाओं के इस पक्ष की कथा के आरम्भिक प्रयोग कहकर प्रेमचन्द को उस आरोप से मुक्त भी माना जा सकता है। 'पलायनवादी' धारणा प्रेमचन्द की कथाओं में नहीं उभरती, वह कला, विचार किसी भी स्तर पर पुष्टि नहीं पाती बल्कि इसकी जगह आरम्भ में ही वे 'सुजान भगत' को स्वीकारते प्रतीत होते हैं। संघर्ष और मुक्ति (आज़ादी) के लिए संघर्ष प्रेमचन्द की वह पहली धारणा है जो उनके पूरे रचना–संसार पर छाई रहती है। 'समष्टि मंगल' और 'समष्टि चिन्तन' प्रेमचन्द की वैचारिक धारणा की संज्ञाएँ हैं जो नये सामाजिक संस्कार को गति देती हैंतथा पुराने सामाजिक संस्कार की तुलना में उसे नये जीवन्त अर्थ से परिपूर्ण करती है। प्रेमचन्द की कथाओं में अनेक स्तरों पर 'काव्यमयता' है। उसमें हल्के–हल्के प्रेम–प्रणय का शृंगारवादी रूप भी है तो मनुष्यों के छोटे–छोटे दुःखों का गहरा विषादपूर्ण चित्र भी है। देशज शब्दों, जाने–पहचाने चरित्रों और एक परिचित वातावरण की सर्जना के प्रसंग भी साधारण आदमी के रुमानी चरित्र को मनोरंजन के अलावा रुचिमय 'राग–भाव' भी देते हैं। काव्यमयता के शेष उदाहरण मानव–पीड़न के उन प्रसंगों में उभरते हैं जहाँ कोई अबोध मज़दूर या किसान सारे आर्थिक–सामाजिक चक्र से खुद ही लड़ता है। सहज मानवीय होने या अपनी सहानुभूति समग्र जन–समाज को देने की जो गांधीवादी प्रवृति है प्रेमचन्द में वह तार्किक और भौतिक कोनों के रूपान्तरण मनुष्य के हाव–भाव, साधारण मनुष्यों के दुःख और साधारण मनुष्यों केहितैषी के रूप में 'प्रेमचन्द का जो चित्र बनता है, वह साधारणता का काव्य है, वह 'व्यक्तित्व' के मानवीय पक्ष से परिपूर्ण काव्य है।

समसामायिक जीवन की जागृति के प्रसंगों का काव्य पुराने रोमांसों का नवीनीकरण लगता है। प्रेमचंद की कथाओं में समसामयिक जीवन के संघर्ष का उत्सववाची रूप मिलता है, उसमें उत्सर्ग का गरिमामय भाव भी है, तो सहज भावोन्मेष या उमंग भी हैं। यह उमंग, अवसाद, दुःख और भीषण कष्टों के प्रसंगों को अपने उत्सववाची भाव से आवृत

कर समष्टिमंगल का नया 'राग–बोध' प्रसारित करती है। प्रेमचन्द के रचनाकाल के समाज की जागृति के पक्षों की परिगणना की जाए तो उनकी एक लम्बी सूची बन सकती है, यह सूची सामाजिक संस्कार के बदलते हुए रूप से लेकर अपनी भाषा के प्रेम के प्रकरणों तक को समाहित कर लेती है। समसामयिक जीवन के विविध परिदृश्यों के बीच से प्रेमचन्द ने जिस जीवन–पक्ष का चुनाव किया था, वह 'देश–प्रेम' के गौरव–भाव का प्रचारक भी है। प्रेमचन्द इस अर्थ में प्रचारक नहीं हैं, अपितु 'देश–भक्त' हैं। उनके 'रचना–व्यक्तित्व' का वह पक्ष भी उन्हें अपने समय के 'सांस्कृतिक व्याख्याता' के रूप में स्थापित करता है।

प्रगतिशील दृष्टि के सर्जक प्रेमचन्द अपने जीवन में गरीबी से लड़े थे। धीरे–धीरे वह लड़ाई बड़े पैमाने पर आकर उनकी रचनाओं में देश की आज़ादी की लड़ाई में रूपान्तरित हुई थी। अर्थात् यह व्यक्तित्व का एक क्रमसे निर्वैयक्तिकता में रूपान्तरित की प्रक्रिया है। यह रूपान्तरण प्रेमचन्द के 'व्यक्तित्व'को 'सांस्कृतिक गरिमा' प्रदान करता है। प्रेमचन्द गरीब–जनसमाज से उठे थे, उन्हें अपने सामाजिक परिवेश का पूरा 'अनुभव' मिला था। वैयक्तिक जीवन में पारिवारिक विसंगति शिक्षा की कठिनाईयाँ, आर्थिक दरिद्रता, असंगठित पारिवारिक जीवन आदि के जो प्रसंग हैं वे 'सोजे वतन' का जब्त, उद्योग काल में, नौकरी छोड़ के राज्याश्रय और राजसम्मान को अस्वीकारने तथा जेल–यात्रा, फिल्मी जीवन के कटु प्रसंगों में बड़े पैमाने पर रूपान्तरित होते हैं। साधारण गरीब परिवार के, आदमी के मनोविज्ञान में थोड़ा सा फर्क है। प्रेमचन्द साधारण स्थितियों के 'व्यक्तिगत' प्रसंगों से उठकर बड़े संदर्भ से जुड़ने की प्रक्रिया से गुजरते हैं जबकि कोई दूसरा आदमी अपनी ही स्थितियों की परिधि में चक्कर लगाने के लिए विवश हो जाता है। स्वाधीनता के युग में एकाधिक उदाहरण इस तरह के रूपान्तरण के भी मिलते हैं। अपने रचना–व्यक्तित्व द्वारा प्रेमचन्द ने इस प्रक्रिया को भी एक सार्वजनिक आधार दिया। प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व'की उपरोक्त चर्चा में हमने प्रेमचन्द के 'मनुष्य–रूप' की संगति की उपेक्षा नहीं की, क्योंकि हम यह पहले ही मान चुके हैं कि रचनाकार के बाहरी और भीतरी दोनों व्यक्तित्व मिलकर रचना–व्यक्तित्व के रूप को सम्पन्न करते हैं। बाहरी व्यक्तित्व फिर उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता जितना कि 'रचना –व्यक्तित्व' बन जाता है। अभी तक हमने उस पक्ष की चर्चा कम की है जिसके कारण रचना–व्यक्तित्व को पूर्ण बनाती है। प्रेमचन्द की असफलता केवल 'कलात्मक' ही नहीं है। पात्रों के 'व्यक्तित्व' में एक खास किस्म की अपूर्णता भी असफलता है। रंगभूमि में सूरदास के चरित्र की विरोधी प्रकृति की चर्चा अन्यत्र की जाएगी, उसे उदाहरण रूप में लिया जा सकता है। सूरदास की पराजय के द्वारा प्रेमचन्द अपनी वैचारिक दृढ़ता की पराजय का चित्र नहीं खींचते, लेकिन वहाँ सूरदास का आत्म–गौरव, वैचारिक दृढ़ता से परे केवल भावात्मक लोक की कल्पित वस्तु बन जाती है। असफलता के कुछ आयाम बार–बार कथानकों की आवृति के हैं। नाटकीयता, अतिनाटकीयता और भाग्यवादी संयोग के चित्र भी इस संदर्भ में देखे जा सकते हैं। समाज–सुधारक के रूप में प्रेमचन्द ने अपनेसमय के विद्रोही स्वर को जिस तरह आध्यात्मिक रंग में रंग दिया था, वह निश्चित रूप 'सही पहचान' को भुलावे में डालने की कोशिश थी – हालांकि इसके लिए प्रेमचन्द इतने दोषी नहीं हैं, जितने उस समय के राजनैतिक विचारक हैं, जिन्होंने पूरे जन–समाज को दूसरे यानी राजनैतिक समझौतों के रास्ते स्वीकारने के लिए विवश कर दिया था। मायाशंकर, रमानाथ, गजाधर, सूदन आदि चरित्रों के हृदय–परिवर्तन के प्रसंग उस समय की 'नीति' के चित्र तो हैं, किन्तु उनकी अस्वाभाविकता, प्रेमचन्द के 'व्यक्तित्व' को प्रगतिशील दृष्टि के करीब नहीं रखती। इसमें सन्देह नहीं है कि समाज–सुधार के

अनुरूप आर्थिक, सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए जो व्यवस्था प्रेमचन्द ने दी थी, वह उनकी रचनाओं के ही शिथिल प्रसंग नहीं हैं, बल्कि उनके रचना–व्यक्तित्व का रंग भी फीका कर देते हैं।

इसी तरह की अन्य शिथिलताओं और असंगतियों के आधार पर प्रेमचन्द के प्रभावशाली रचना व्यक्तित्व के प्रभावित करने वाले अंश देखे जा सकते हैं। यह अलग बात है कि 'रचना व्यक्तित्व' का यह अप्रभावशाली अंशभी एक अंग है और वह व्यक्तित्व को मानवीय पूर्णता देता है किन्तु वह सामाजिक संस्कार की चेतना को मूल रास्ते से भटका देता है। अपनी रचनाओं में जिस भी किसी तरह से प्रेमचन्द ने अपनी उपस्थिति सजीव रखी है। उसमें से सबसे मुख्य आधार प्रेमचन्द के वक्तव्य हैं जो वाचक (नैरेटर) के वक्तव्यों के रूप में बीच–बीच में आते हैं। वाचक की ये टिप्पणियाँ जिन जगहों पर आलोचनात्मक हैं। उन जगहों पर वे मूल कथा के स्वर को दृढ़ता देती हैं किन्तु अन्य अवसरोंपर ये टिप्पणियाँ 'वक्तव्यों' के रूप में 'गद्य–काव्य' को नीरस बनाती हैं। ये वक्तव्य कभी संकट की घड़ी में परंपरागत तरीके की सूक्तियाँ हैं या कभी लम्बे–लम्बे आदर्श कथनों के रूप में हस्तक्षेप। इन टिप्पणियों की एक दूसरी प्रक्रिया लम्बे–लम्बे विवरणों में प्रकृति के दृश्यों अथवा ऐसे ही किन्हीं प्रकरणों के विस्तार की भी है। ये असंगतियाँ कला की असंगतियाँ हैं किन्तु रचनाकार के रचना–व्यक्तित्व के बिंब को खंडित करने वाली असंगतियाँ ये ही हैं। इन टिप्पणियों के विविध रूप हैं जो रचनात्मक संगति को कभी–कभी असंगति दे डालते हैं। कहीं–कहीं ये टिप्पणियाँ लोक जीवन को बेहद रोमांटिक तरीके से प्रस्तुत करती हैं। वस्तुतः ये टिप्पणियाँ विचारग्रहों के हस्तक्षेप हैं और ऐसे हस्तक्षेप पाठक के मन में रचनाकार के 'रचना–व्यक्तित्व' के प्रति 'विराग' प्रस्तुत करने में सहयोगी होते हैं परन्तु हर जगह ऐसी स्थिति नहीं होती। लोक जीवन के प्रसंगों में रचनाकार भारतीय संस्कृति के मूल स्वर में नए संदर्भों में रखकर विचारक और तार्किक के रूप में सामने आता है। लोक–संस्कृति के नये संदर्भों में खोजने की प्रक्रिया, नया परिचय तो है ही, प्रेमचन्द कीकथाओं को वह विविधता की सम्पन्नता भी देता है। इस तरह प्रेमचन्द के सांस्कृति–शास्त्री व्यक्तित्व का भी अनुमान मिलता है। ग्रामीण क्षेत्र की अर्थ–व्यवस्था के प्रकरणों में अर्थशास्त्री रूप, बेमेल विवाह, दहेज, विधवाओं की समस्या और अन्य सामाजिक समस्याओं के अनेक रूप प्रस्तुत करते हुए समाज शास्त्री रूप तथा भारतीय जन–समाज में वैचारिक चेतना के प्रकरणों में दार्शनिक के रूप में प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व मुखरित होता है। इन 'व्यक्तित्व खंडों की चर्चा तब बिल्कुल अनावश्यक सिद्ध हो जाती है जब हम पहले ही यह मान लेते हैं कि प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व मुखरित होता है। इन 'व्यक्तित्व–खंडों' की चर्चा तब बिल्कुल अनावश्यक सिद्ध हो जाती है जब हम पहले ही यह मान लेते हैं कि प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व अनेक स्तरों पर विविध है। प्रेमचन्द एक साधारण आदमी और साधारण लेखक के रूप में अपनी रचनाओं में आते हैं।

प्रेमचन्द ने अपनी कथाओं के द्वारा नितान्त नये समाज से परिचित नहीं कराया था, बल्कि यह कहा जाना चाहिए कि उन्होंने उन अछूते प्रसंगों से परिचित कराया था, जिनकी सामाजिक स्थिति के बारे में बहुत सारे पढ़े–लिखे लोगों को ठीक–ठीक ज्ञान नहीं था। कथा–तत्त्व या विचार–तत्त्व का नया परिचय तो उन रचनाओं की 'सम्पूर्णता' में मिलता है, किन्तु उनसे भी परे सामाजिक समस्याओं का जीवन्त तनाव उनमें मिलता है। वह तनाव जिसमें एक जनसमाज रहता है, और अपने अतीत के सांस्कृतिक दबाव तथा वर्तमान जीवन के विषमतापूर्ण संगठन के बीच रहकर उनसे आगे

की सोचता है – वह उन कथाओं के माध्यम से एक नये 'संस्कार' के अनुभव को भी प्रसारित करता है। जिस तरह उस 'तनाव' के संघर्ष में हर भारतीय सामाजिक लड़ने का हिस्सेदार है, कुछ–कुछ वैसा ही आभास प्रेमचन्द कीरचनाएँ प्रेमचन्द के रचना–व्यक्तित्व की परिपुष्टि कर देती हैं। 'कर्मभूमि' या 'गोदान' में यह 'तनाव' वातावरण की सजीवता का ही लक्ष्य था उद्धेश्य नहीं है, बल्कि उसके बीच से गुजरते हुए गुलाम नागरिक की भयावह मन्त्रणा का चित्र है। वह चित्र जो प्रेमचन्द का निजी व्यक्तित्व भी पुष्ट करता है और प्रेमचन्द का 'रचना–व्यक्तित्व' भी। प्रेमचन्द का 'सामाजिक परिवेश, बौद्धिक जागरण के तत्त्व उसी 'रचना–व्यक्तित्व' के रूप में स्पष्ट करता है। वह बौद्धिक संस्कार की जड़ें गाँधी और मार्क्स के अलावा 'भारतीय जन–जीवन' से फूटती हैं, इसमें किसी मतवाद की गुंजायश नहीं है। प्रेमचन्द के समय की महत्वपूर्ण घटनाएँ, चाहे प्रथम विश्व–युद्ध हो, गाँधी का आगमन, नमक सत्याग्रह, जलियाँवाला काण्ड, असहयोग आन्दोलन हो या इसी तरह की कोई अन्य घटनाएँ हों वे राजनैतिक दृष्टि से भिन्न अर्थ भले ही रखती हों– मानवीय दृष्टि से उनका जो अर्थ है वह भी प्रेमचन्द की रचनाओं में मिलता है। दूसरी तरफ देखें तो रचनाओं मेंउन घटनाओं को देखने वाली दृष्टि प्रेमचन्द के कृति–व्यक्तित्व की दृष्टि है। उन घटनाओं को जो भी अर्थ रचनाओं मेमिलता है, वह कृति–व्यक्तित्व एक दार्शनिक की भाँति उनकी संगत व्याख्याएँ भी प्रस्तुत करता है।

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में अपनी शताब्दी के तनावपूर्ण वर्षों के प्रभावों को खास सन्दर्भों मेंरखा था। उनकी महत्त्वाकाक्षाएँ थीं, "कुछ किताबें लिखूँगा, कुछ अपनी किताबें छपवाऊँगा। पाँच–छः सौ मेरी कमाई है, इसे इन्हीं कामों में सरफ करूँगा और बिल आखिर जब लिटरेरी शोहरत हासिल कर लूँगा तो कोई माहवार रसाला निकालकर गुजर करूँगा"(कलम का मजदूर) उन्होनें अपनी रचनाओं पर पड़े प्रभाव को भी बहुत सीधे ढंग से स्वीकार किया था "मुझे अभी तक इत्मीनान नहीं हुआ कि कौन–सा तर्ज–तहरीर अख्तियार करूँ। कभी तो बंकिम की नकल करता हूँ, कभी अज़ाद के पीछे चलता हूँ। आजकल काउँट ताल्सताय के किस्से पढ़ चुका है, तब से कुछ इसी रंग की तरफ तबीयत माइल है।" प्रेमचन्द के उपन्यासों पर केवल शिलागत प्रभाव ही नहीं है बल्कि उनमें कथा–नियोजन के प्रभाव भी खोजे जा सकते हैं किन्तु इस आधार पर प्रेमचन्द को केवल दूसरों का अनुकर्ता ही नहीं माना जा सकता है। प्रेमचन्द की एक कहनी 'मनोवृति' पश्चिमी फैण्टेसी के अनुकरण पर लिखी गई है, किन्तु उसके वातावरण की सजीवता उस पर पड़े प्रभावों को गौण कर देती है। प्रेमचन्द की रचनाओं पर प्रभाव के अंश, उनकी विचारधारा पर पड़े विदेशी प्रभावों से कम है, लेकिन ये प्रभाव प्रेमचन्द में इस तरह आत्मसात् हैं कि इनके संदर्भों में विचारों की मौलिकता ही स्थापित होती है। प्रेमचन्द का 'रचना–व्यक्तित्व' इन आधारों पर अनेक प्रभावों का पुंज भी माना जा सकता है, किन्तु जिस रूप में ये प्रभाव प्रेमचन्द के रचना–व्यक्तित्व में एकमेक हुए हैं, वह रूप ही प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' को प्रभावहीन ढंग का प्रस्तुत करता है।

अपने समय के ज्ञान–विज्ञान, विचार–दिशाओं से प्रेमचन्द पूरी तरह परिचित थे, संभव है यही परिचय उनकी जीवन–दृष्टि को समय और काल से आगे की दृष्टि बनाता है। कहानियाँ केवल घटनात्मक नहीं हैं, बल्कि वे मनोविज्ञान से आधार ग्रहण करती हैं – गल्प का आधार अब घटना नहीं मनोविज्ञान की अनुभूति है – यह मानते हुए प्रेमचन्द खुद अपनी रचनात्मकता को नया मोड़ दे रहे थे। प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्द के वैचारिक मोड़ का वह सुदृढ़ रास्ता भी देखा जाना चाहिए, जिसमें प्रेमचन्द और उनके अनुवर्ती कई लेखकों को वैचारिक दृढ़ता दी थी। कुल

मिलाकर निरन्तर परिवर्तित होते जाने की प्रक्रिया ही प्रेमचन्द की कुछ कृतियों को ताजा बनाए रखती है, यह अलग बात है कि उनकी शेष कृतियाँ, जैसा कि उन्होंने खुद माना है प्रेस का पेट भरने' की रचनाएँ लगती हैं।प्रेमचन्द जिस रचना पीढ़ी के लेखक थे, उनमें से बहुत कम लेखकों में इतनी स्पष्टता, विचारों की प्रखरता मिलती है।अपने 'ग्राम्य' स्वभाव में प्रेमचन्द ने किसी तरह की लेखकीय कुलीनता आरोपित नहीं की थी। उनका स्वभाव अपनी ही विशिष्टता के कारण अलग किस्म का लगता है, जो कुलीनता के छद्म से ज्यादा गहरा है। वैचारिक निष्ठा का जो स्वरूप प्रेमचन्द की रचनाएँ देती हैं। अपने सही संदर्भों में वे प्रेमचन्द के व्यक्तित्व का अंग है कहीं–कहीं वे 'आरोपण' का आवरण दिखती हैं। हर एक स्तर पर प्रेमचन्द का 'रचना–व्यक्तित्व' परिवर्तनशील दिखता है – परन्तु यह भी सच है कि यह परिवर्तन अपनी ही परिधि के भीतर बदलते जाने का है। अपने विचारों को प्रस्तुत करने में प्रेमचन्द बहुत दृढ़ थे, बल्कि कहा जाए कि वे निर्मम भी थे। वैचारिक दृढ़ता की यह निर्ममता उनके 'ग्राम्य' स्वभाव की सहजता की वजह से नहीं थी, बल्कि उनके स्वभाव का वह एक ऐसा अंग था जिसकी अलग से व्याख्या नहीं की जा सकती। डॉ. मदान ने लिखा है कि "प्रेमचन्द केवल दो तरह के विलासी में रहे थे, एक तो उनकी मुक्त हँसी थी, दूसरे उनकी गरीबी – वस्तुतः इन दो धाराओं के बीच उनकी वैचारिक दृढ़ता (खासतौर से बाद की रचनाओं में) उनके 'व्यक्तित्व' को अपने समय का अलग 'व्यक्तित्व' भी बनाती हैं परन्तु वह मनुष्य की सहजता से अलग कहीं नहीं है।"

प्रेमचन्द का 'व्यक्तित्व' बहुत सारे अर्न्तद्वन्द्वों के बीच प्रवाहमय है। जीवन की अनेक संकटपूर्ण स्थितियों से समझौता करने की बजाय उनसे संघर्ष करने का रास्ता उनके पात्र ही नहीं चुनते, खुद प्रेमचन्द ने वे रास्ते चुने थे। उन्होंने आरम्भ में दो भाषाओं में लिखने का संकट महसूस किया था, किन्तु बाद में 'हिन्दी' की ओर लौट आए थे। दरअसल यह उनकी अपनी 'अभिव्यक्ति' को बड़ा क्षेत्र देने के लिए आवश्यक था। इस कोण से हम देख सकते हैं कि उन्होंने न केवल 'रचना–कार्य का दायित्व समझा था, बल्कि उन्होंने रचनाओं को जिस जन–मानस तक पहुँचाने का विचार किया था कि 'भाषा की गुलामी ही सच्ची गुलामी है।' 'साहित्य का उद्देश्य' में उन्होंने स्पष्टता से लिखा है, "हमारी पराधीनता का सबसे अपमानजनक, सबसे व्यापक, सबसे कठोर अंग अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व है" इससे भी आगे वे मानते थे कि भाषा शोषण का अंग बनकर सामने आई है। शोषण के चक्र को तोड़ने के लिए विदेशी भाषा के चक्र को तोड़ना ज़रूरी है। प्रेमचन्द के 'व्यक्तित्व' में इस तरह की स्पष्टता का आयाम लेखक प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' को आधी शताब्दी का 'मिथक' बना डालता है। काल–विशेष की समग्र विशेषताओं से बँधा प्रेमचन्द का 'रचना–व्यक्तित्व' किसी संकीर्ण सीमा में बँधा हुआ नहीं है। वे अपने रचना–व्यक्तित्व' में चिर–युवा' प्रतीत होते हैं। उनके लिए जीने का संघर्ष, कुछ धारणाओं की परिपूर्ति ही नहीं था या वह केवल 'जीवनयापन' की संतुष्टि से भरा नहीं था, बल्कि 'जन–तन्त्र' का स्वप्न और देश–प्रेम' जैसे कुछ ऐसे आधार थे जिनके लिए उन्होंने अन्तहीन संघर्ष का 'काव्य' रचा है। प्रेमचन्द का रचना–व्यक्तित्व' स्वीकृत आधारों पर 'मिथ' नहीं है। वह केवल प्रेमचन्द का नहीं आजादी के दिनों के भारतीय का 'मिथ' है जो प्रेमचन्द के 'रचना–व्यक्तित्व' में प्रतिनिधित्व पाता है। प्रेमचन्द का लेखन उनकी जीवनी नहीं है। ऐसा कोई भ्रम खड़ा नहीं किया जा सकता, किन्तु प्रेमचन्द का लेखन एक जन–समाज की 'कच्ची' जीवनी है। उनका कृति–व्यक्तित्व इसी आधार पर

प्रतिनिधि है। उस व्यक्तित्व में 'स्वाधीनता के संघर्ष ' की छाप है, उसमें सामाजिक संस्कार की प्रक्रिया की छप्र भी है साथ ही उसमें बौद्धिक आधारों पर संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का अंकन भी है।

1.5 सारांश

यह निश्चित ही है कि प्रेमचन्द 'मनुष्यता' के अमर कथाकार थे। जब तक समाज में अनीति, अन्याय, अत्याचार और अविचार है तब तक इनकी कृत्तियाँ मशाल का काम देंगी और जब मुक्ति के प्रकाश से मनुष्यता का मुख उज्ज्वल होगा, तब वे शोषित–पीड़ित जनता की जीवन गाथा से उसके जीवन व्यापी संघर्ष से हमारा परिचय कराती रहेंगी। प्रेमचन्द का जीवन तपस्वियों के सदृश था साहित्य–सेवा के लिए ही उनका जीवन था। साहित्य के लिए उन्होंने जीवन पर्यन्त लेखनी को अलग न किया। वे एक सफल तथा सच्चे उपन्यासकार माने जाते हैं। इस बात का निर्णय उनके साहित्य अथवा उनके उपन्यासों से हो जाता है।

1.6 कठिन शब्द

1. धूर्त्तता
2. प्रशस्त
3. उत्सर्ग
4. वैविध्य
5. सायास
6. निवैयक्तिकता
7. पुनरूत्थानवादी
8. ध्रुवान्त
9. रसज्ञ
10. अवसादपूर्ण

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. प्रेमचन्द के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालों।

प्रश्न. प्रेमचन्द की साहित्य साधना पर टिप्पणी करें।

प्रश्न. प्रेमचन्द की जीवनदृष्टि को स्पष्ट कीजिए।

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृत्तित्व – हँसराज 'रहबर'
2. प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय
3. प्रेमचन्द – सं० सत्येन्द्र
4. कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रजा

---- 0 ----

हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द का स्थान

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द का स्थान

2.3.1 प्रेमचन्द – पूर्ववर्ती काल

2.3.2 प्रेमचन्द काल

2.3.3 प्रेमचन्दोत्तर काल

2.3.4 हिन्दी उपन्यास में नवीन प्रयोग

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्द

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप समझ सकेंगे –

– प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों की परम्परा।

– प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों का महत्व।

– प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की उपन्यास साहित्य में भूमिका।

– उपन्यासों की विकास परम्परा में प्रेमचन्द का स्थान समझ पाएँगे और उनके उपन्यासों का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

उपन्यास साहित्य आधुनिक काल की देन है। कुछ लोग इसकी शुरूआत संस्कृत भाषा से मानते हैं परन्तु उपन्यासों के तत्वों के अनुसार 'परीक्षा गुरू' को हिन्दी का पहला उपन्यास माना है। आरम्भ में उपन्यास को 'एक लम्बी कहानी' तथा 'मनोरंजन करनेवाला' इतना ही माना जाता था। इसके बाद उपन्यास की परिभाषा परिष्कृत बन गई। उपन्यास विधा का खुद अपना इतिहास है। उसको जान लेना तथा इतिहास में प्रेमचन्द के स्थान का अभ्यास करना कुतुहलजनक ही नहीं अपितु आवश्यक भी है।

2.3 हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द का स्थान :

उपन्यास के पूर्व हिन्दी में गद्य कथाओं का उद्‌भव हुआ। हिन्दी में मौलिक गद्य कथा का उद्‌भव इंशा अल्ला खाँ कृत 'रानी केतकी की कहानी' और सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान से ही हो जाता है। यद्यपि इन पुस्तकों को उपन्यास की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता फिर भी इनमें भावी उपन्यास साहित्य के बीज निश्चित रूप से विद्यमान थे।

ईसा की बीसवीं सदी के आरम्भ होते ही हिन्दी–उपन्यास अपने विकास की नई मंजिल की ओर अग्रसर हुआ। इस युग में मौलिक उपन्यास भी खूब लिखे गए और अनुवाद भी खूब हुए। हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास पर दृष्टिपात करने के लिए उपन्यास को निम्नलिखित तीन कालों में विभक्त किया जा सकता हैः–

1) प्रेमचन्द–पूर्ववर्ती काल।

2) प्रेमचन्द काल

3) प्रेमचन्दोत्तर अथवा प्रेमचन्द परवर्तीकाल।

2.3.1 प्रेमचन्द पूर्ववर्ती काल :– हिन्दी उपन्यास के साहित्यिक रूप का विकास इसी काल से ही प्रारंभ हो जाता है। हिन्दी में सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास लाला श्री निवासदास का 'परीक्षागुरु' माना जाता है। जिसका प्रकाशन 1882 ई॰ में हुआ। यह उपदेशप्रधान उपन्यास है जिसमें 'पंचतंत्र' और हितोपदेश' की शैली के आधार पर व्यावहारिक उपदेश दिये गये हैं। इस उपन्यास के उपरान्त प॰ बालकृष्ण भट्ट के 'सौ अजान एक सुजान' और 'नूतन ब्रह्मचारी' उपन्यस प्रकाशित हुए। इसके बाद राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू' 1890 ई॰ में प्रकाशित हुआ। इन उपन्यासों मे भारतेन्दु–युग की 'सजीवता और ज़िंदादिली' सर्वत्र मिलती है। हास्य, व्यंग्य और विनोद की प्रवृत्ति भी प्राय सभी उपन्यासों में लक्षित होती है। इस समय तक बँग–भाषा का उपन्यास पर्याप्त समृद्ध हो चुका था। अतएव हिंदी मेइस अभाव की पूर्ति के लिए, उनके अनुवाद प्रारम्भ हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सर्वप्रथम बँग–भाषा के उपन्यास का अनुवाद

प्रारंभ किया परन्तु वे उसे पूर्ण न कर सके। उनके समकालीन सहयोगियों में प॰ प्रताप नारायण मिश्र एवं राधाचरण गोस्वामी ने पूर्ण मनोयोग के साथ बँग–भाषा के उपन्यासों के अनुवाद किए और उपन्यास–साहित्य को विकास के पथ पर अग्रसर किया। राधा कृष्णदास, कार्तिक प्रसाद खत्री, रामकृष्ण वर्मा आदि ने बँगला के अनेक उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। इन उपन्यासों में देश और समाज के सर्वसामान्य मार्मिक–चित्र अंकित किए गए हैं किन्तु इनकी शैली उतनी सुव्यवस्थित एवं प्रौढ़ नहीं थी जितनी आगे चलकर द्विवेदी युग में हुई।

इस युग में लेखक देवकी नंदन खत्री ने केवल जन–रूचि को संतुष्ट करने के लिए तिलस्मी और ऐयारी के उपन्यास लिखे। उन्होंने 'चंद्रकांता' 4 भाग 'चंद्रकांता–संतति' 24 भाग 'नरेन्द्र मोहिनी' 4 भाग और 'भूतनाथ' 14 भाग तिलस्मी और ऐयारी उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों में कल्पना की दौड़ और अतिप्राकृतिक प्रसंगों की ऐसी अवधारणा है कि पाठक के मनोरंजन के लिए यथेष्ट सामग्री प्राप्त होती है। इस युग में प्रतिनिधि उपन्यासकारों के रूपमें तीन व्यक्तियों के नाम लिए जा सकते हैं। देवकीनन्दन खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी। देवकीनन्दन खत्री ने हिन्दी में घटना–प्रधान तिलस्मी उपन्यासों को जन्म दिया। किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास को समृद्ध बनाया। गहमरी जी ने जासूसी उपन्यासों को जन्म दिया।

खत्री के घटना–प्रधान तिलस्मी उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' (4 भाग) 'चन्द्रकातां–सन्तति' (24 भाग) और 'भूतनाथ' (14 भाग) ने हिन्दी उपन्यास की लोकप्रियता को चार चांद लगा दिए। शुक्ल जी के अनुसार खत्री जी ही हिन्दी के ऐसे पहले मौलिक उपन्यासकार थे जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम मच गई थी। यह धूम उपर्युक्त तिलस्मी उपन्यासों के कारण ही मची थी। इन उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इतने खँडों में विभाजित होते हुए भी इनमें कहीं भी शिथिलता नहीं आ पाती। इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए हिन्दी न जानने वाले असंख्य पाठकों ने हिन्दी सीखी थी।

खत्री जी ने इन उपन्यासों को लिखने का प्रधान उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना निश्चित करते हुए लिखा था – "चन्द्रकान्ता में जो बातें लिखी गई हैं वे इस लिए नहीं कि लोग उनकी सच्चाई–झुठाई की परीक्षा करें, प्रत्युत इसलिए कि पाठक का कौतूहलवर्द्धन हो।"

खत्री जी के उपरान्त अन्य अनेक उपन्यासकारों ने तिलस्मी – उपन्यास लिखे थे परन्तु उन्हें प्रसिद्धि न मिल सकी। बाबू हरिकृष्ण जौहर ने 'कुसुमलता' गंगा प्रसाद गुप्त ने 'कृष्णकाँता' हरिवंशलाल गुप्त ने 'महर्षि' गुलाबदास ने 'तिलिस्मी बुर्ज' आदि इसी परम्परा के उपन्यास लिखे। इनके अतिरिक्त देवी प्रसाद शर्मा, मदनमोहन पाठक, विश्वेश्वर प्रसाद वर्मा, जयरामदास गुप्त, चन्द्रशेखर पाठक, रामलाल वर्मा आदि ने भी ऐसे उपन्यास लिखे थे।

तिलस्मी–उपन्यासों के समानान्तर जासूसी–उपन्यासों की परम्परा आरम्भ करने वाले गोपालराम गहमरी ने अनेक जासूसी–उपन्यास लिखकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी। इन्होंने उपन्यासों में जासूसी का नया ढंग प्रस्तुतकिया था जो विदेशी जासूसी–साहित्य पर आधारित था। इन उपन्यासों में कल्पना और बुद्धि दोनों के ही चमत्कार देखने को मिलते हैं। शैली भी अपेक्षाकृत अधिक मनोरंजक है। 'अद्‌भुत लाश' 'गुप्तचर' बेकसूर की फाँसी' 'खूनी कैसा है, बेगुनाह का खून, 'मायाविनी', भयंकर चोरी' आदि इनके प्रसिद्ध जासूसी–उपन्यास हैं।

इस युग में अनेक ऐसे उपन्यास लिखे गए थे जिनमें अद्‌भुत अलौकिक घटनाओं, रोमांचक दृश्यों और विचित्र

प्रेम–व्यापारों के चित्रण द्वारा पाठकों को स्तम्भित कर उनका मनोरंजन करने का प्रयत्न किया जाता था। ऐतिहसिक उपन्यास–लेखन की नई परम्परा का आरम्भ भी इस युग में हुआ। हिन्दी में इस परम्परा को जन्म देने का श्रेय किशोरीलाल गोस्वामी को है। उन्होंने 'लवगँलता' 'हदयहारिणी' या आर्दश रमणी' 'ताराबाई' 'कनक कुसुम या मस्तानी' 'सुल्ताना रज़िया बेगम' मल्लिकादेवी' 'पन्नाबाई' 'गुलबहार' 'लखनऊ की कब्र' आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का अधिक सहयोग लिया गया है। ऐतिहासिक घटनाओं को तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया। अनेक लेखकों ने इस युग में ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। जैसे 'मथुरा प्रसाद शर्मा का 'नूरजहाँ बेगम', गंगा प्रसाद गुप्त का नूरजहाँ, वीर पत्नी, कुमार सिंह सेनापति, हम्मीर आदि। लाला जी सिंह का वीर बाला, जैनेन्द्र किशोर का 'गुलेनार', जयरामदास गुप्त का 'काश्मीर का पतन', 'रंग में भंग', 'मायारानी', नवाबी परिस्तान आदि। ब्रजनन्दन सहाय का 'लाल चीन' मिश्र बन्धुओं का वीरमणि, 'विक्रमादित्य' 'पुष्यमित्र' आदि। इन उपन्यासों में प्राचीन, विशेष रूप से, मध्यकालीन भारतीय इतिहास के प्रमुख पात्रों को चित्रित कर उनकी गौरव गाथाओं का अंकन किया गया है।

भारतेन्दु–युगीन सामाजिक उपन्यासों की परम्परा का भी इस युग में पर्याप्त विकास हुआ था। अनेक ऐसे उपन्यास लिखे गए जिनमें धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक, शिक्षा सम्बन्धी नारी उद्धार आदि का आदर्शवादी और सुधारवादी दृष्टिकोण से अंकन किया गया था।

शुक्ल जी इस युग के उपन्यासकारों में किशोरी लाल गोस्वामी को ही सर्व प्रधान उपन्यासकार मानते हैं। उन्होंने 'लीलावती वा आर्दश सती, राजकुमारी, पुर्नजन्म या सौतिया दाह, 'मालती माधव' आदि अनेक उपन्यास लिखे।

अमृतलाल चक्रवर्ती का 'सती सुखदेवी' लोचन प्रसाद पांडेय का 'दो मित्र' बलदेव प्रसाद मिश्र का 'संसार' नवलराम का 'प्रेम' सकल नारायण पांडेय का 'अपराजिता', लज्जाराम मेहता का 'बिगड़े का सुधार', 'आदर्श हिन्दू' रूद्रदन्त शर्मा का 'स्वर्ग में महासभा' श्याम किशोर वर्मा का 'काशी यात्रा' रामजीदास वैद्य के 'धोखे की टट्टी' 'फूल में काँटा' राम प्रसाद सत्याल का 'किरण शशि' कृष्णलालवर्मा का 'चम्पा', मन्नन द्विवेदी का 'रामलाल' कल्याणी रामनरेश त्रिपाठी का 'मारवाड़ी और 'पिशाचिनी', जगतचन्द्र रमोला का 'सत्य प्रेम' योगेन्द्रनाथ का 'मानवती', हरस्वरूप पाठक का 'भारत माता' गंगा प्रसाद गुप्त का 'लक्ष्मी देवी' आदि।

उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त इस युग में दो साहित्यकारों ने कुछ ऐसे उपन्यास लिखे थे जो विषय–वस्तु की दृष्टि से तो सामाजिक रहे परन्तु उनमें विभिन्न प्रकार की भाषा–शैलियों का प्रयोग करने की प्रवृत्तिप्रधान रही। बाबू ब्रजनन्दन' सहाय ने बँगला–शैली में 'सौन्दर्योपासक 'राधाकान्त' और 'राजेन्द्र मालती' नामक उपन्यास लिखे जिनका रूप भाव–प्रधान ही अधिक रहा। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक दो उपन्यास लिखकर भाषा के सरलतम रूप के प्रयोग किए ।

इस प्रकार इस काल में हिन्दी उपन्यास विकास के पथ पर आगे बढ़ा। उसकी विषय वस्तु, रूप और शैली में नया निखार और वैविध्य प्रकट हुआ परन्तु उसमें अपेक्षित गम्भीरता नहीं आ पाई। इस युग में रचित उपन्यासों में सामाजिक जीवन की समस्यायें नहीं थी। उनके समाधान नहीं थे, उपदेश और नीति के प्रचार में कला नहीं थी और न जीवन के गम्भीर पक्षों का ही चित्रण हुआ था, इसलिए उपन्यासों के विकास की परम्परा को जानने की दृष्टि से ही इनका

मूल्य महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। इस युग के अधिकांश उपन्यासों का आधार तिलिस्म और ऐयारी था और उनमें जीवनगत एवं समाजगत विविध पक्षों एवं समस्याओं का चित्रण नहीं किया गया था। प्रेमचंद पूर्ववर्ती उपन्यास सहित्य की आधार–भूमि कौतूहल, कल्पना और रोमांस की भूमि थी। कहीं पर इन तत्त्वों का निरूपण सामाजिक जीवन के आधार पर, कहीं ऐतिहासिक जीवन के आधार पर और कहीं ऐतिहासिक कथा अथवा चरित्रों के माध्यम द्वारा किया गया था। इस युग के उपन्यास साहित्य का महत्त्व इस बात में है कि तद्युगीन लेखकों ने इस साहित्यांग के प्रति विविध प्रकार से तीव्र आकर्षण उत्पन्न करने का प्रयास किया और लोगों की रूचि उपन्यास की ओर बढ़ाई। इस प्रयास से उपन्यासकारों को प्रोत्साहन मिला और इसी के फलस्वरूप कालांतर में श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना संभव हो सकी।

2.3.2 प्रेमचन्द काल : प्रेमचन्द का समय हिन्दी उपन्यास–साहित्य के लिए पूर्ण समृद्धि का काल था। उनके पदार्पण से हिन्दी उपन्यास में युगांतकारी परिवर्तन हुए और उपन्यास–साहित्य अपने पूर्ण परिष्कृत रूप में विकास के पथ पर अग्रसर हुआ उन्होंने उपन्यास–साहित्य को कल्पना जगत से उठाकर यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित किया। वस्तुतः प्रेमचन्द ही प्रथम उपन्यासकार थे जिन्होंने इस साहित्यांग को जीवन के समीप लाकर उसमें संजीवनी शक्ति का संचार किया।

प्रेमचन्द ने सस्ते मनोरंजन के स्थान पर सामयिक युग और समाज की ज्वलन्त समस्याओं को अपने उपन्यासों का लक्ष्य बनाया। इनके समय में ही हिन्दी–उपन्यास प्रेम–कथा, तिलस्मी, ऐयारी और जासूसी चमत्कारों एवं धार्मिक और सामाजिक उपदेशात्मक क्षेत्रों को त्याग सच्चे अर्थों में सामाजिक क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ। उनके उपन्यासों में इस युग का राजनीतिक और सामाजिक भारत साकार हो उठा। उन्होंने अपने उपन्यासों में यथार्थ चित्रण के माध्यम से अपने मतानुसार विभिन्न समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके उपन्यासों की विशेषताओं को लक्ष्य कर लिखा है – "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुख–सुख और सूझ–बूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोंपड़ियों से लेकर महलों तक, गाँव से लेकर धारासभाओं तक, खोंमचे वालों से लेकर बैंकोंतक, आपको इतने कौशल–पूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। आप बेखटके प्रेमचन्द का हाथ पकड़कर मेडोंपर गाते हुए किसान को, अन्तःपुर में मान किए हुए प्रियतमा को, कोठे पर बैठी हुई वारवनिता को, रोटियों के लिए ललकते हुए भिखमंगों को, कूट परामर्श में लीन गोयन्दों को, ईर्ष्या–परायण प्रोफेसरों को, दुर्बल हृदय बैंकरोको, साहस परायण चमारिन को, ढोंगी पंडितो को, फरेबी पटवारियों को, नीचाशय अमीरों को देख सकते हैं और निश्चिन्त होकर विश्वास कर सकते हैं कि जो कुछ आपने देखा है, वह गलत नहीं हैं।"

प्रेमचन्द जी ने निम्नलिखित उपन्यास लिखे थे – प्रेमा, वरदान, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गबन, कायाकल्प, प्रतिज्ञा, निर्मला, कर्म–भूमि तथा गोदान। 'गोदान' उनका अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। 'गोदान' के उपरान्त उन्होंने 'मंगल सूत्र नामक एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था मगर इसी बीच उनकी असामयिक मृत्यु हो गई और यह उपन्यास अधूरा ही रह गया। प्रेमचन्द का पहला प्रौढ़ उपन्यास 'सेवासदन' था। इस उपन्यास के उपरान्त प्रेमचन्द की औपन्यासिक कला क्रमशः विकसित होती हुई गोदान में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंची थी। 'सेवासदन' से गोदान तक की अपनी लम्बी मंजिल में प्रेमचन्द विभिन्न प्रकार के वैचारिक और सैद्वान्तिक प्रयोग करते रहे।

प्रेमचन्द जी में सच्ची सामाजिक चेतना थी वास्तविक आधुनिकता–बोध था, संतुलित यथार्थपरक आदर्शवादिता थी, वाद विशेष की दासता से मुक्त स्वाभाविक प्रगतिशीलता थी, उन्होंने समाजगत एवं जीवनगत विविध गंभीर समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया और उन समस्याओं के लिए उचित समाधान भी प्रस्तुत किये। 'सेवासदन' में मध्यवर्गीय जीवन और समस्याओं पर दृष्टिपात किया गया है। 'वरदान' में अनमेल–विवाह की समस्या की ओर तो 'प्रेमाश्रम' में स्वाधीनता–आंदोलन, कृषक जीवन की विपन्नता और जमींदार–वर्ग की शोषण–नीति, भूमि पति और कृषक के परम्परागत सम्बन्धों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न परिस्थिति, जमींदारी–शोषण के विरुद्ध आवाज, कृषक और जमींदार संघर्ष, ग्रामीण–समाज के आर्थिक–पक्ष आदि पर दृष्टिपात किया गया है। 'रंगभूमि' में औद्योगिक शोषण राजनीतिक परतंत्रता और संघर्ष से ओत–प्रोत इस उपन्यास में भारतीय जीवन के अनेक पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है। बढ़ती हुई पूंजीवादी–सभ्यता के सम्पर्क में आने पर ग्राम्य जीवन की सरल संतोषमयता के अस्त–व्यस्त होने का चित्रण प्रेमचन्द ने बड़ी कुशलता से किया है। 'कायाकल्प' के समाज–चित्रण में पतनोन्मुख सामंती–व्यवस्था, नारी समस्या और बहु–विवाह प्रथा एवं साम्प्रदायिक प्रश्नों पर विशेष ध्यान दिया गया है। –'निर्मला' में अनमेल विवाह और दहेज की समस्या पर दृष्टिपात किया गया है। 'प्रतिज्ञा' में विधवाओं की सामाजिक–दशा का उल्लेख किया गया है। 'गबन' में नारी की आभूषण–प्रियता, अनमेल–विवाह, दहेज की समस्या, मध्यवर्ग की आर्थिक–समस्या, रिश्वत, पुलिस के अत्याचार, न्याय की विडंबना, स्वाधीनता की समस्या आदि का उल्लेख है। 'कर्मभूमि' में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है। बढ़ते हुए आर्थिक संकट और किसानों की लगान बदीं की लडाई भूमि सम्बन्धी आंदोलन, पुलिस के अत्याचार, पारिवारिक जीवन की समस्या, पतिताओं की समस्या, स्वाधीनता आंदोलन, छुआ–छूत की समस्या, शैक्षणिक समस्या आदि पर दृष्टिपात किया गया है। 'गोदान' में ग्रामीण और नागरिक समज की अनेक समस्याओं पर दृष्टिपात किया गया है। इन समस्याओं में सामाजिक और आर्थिक पहलुओं पर प्रेमचन्द ने विशेष ध्यान दिया है। ग्रामीण समाज के चित्रण में उन्होंने सम्मिलित परिवार प्रथा की समस्या, अंधविश्वास और धर्म–भीरुता, जमींदार, कारिन्दे पटवारी आदि द्वारा शोषण, लगान चुकाने की कठिनाई के कारण बेदखली, पूंजीपति, साहूकार, सरकारी अफसरों, पुलिस, ग्रामीण पंचों द्वारा शोषण, अशिक्षा के कारण ग्रामीणों की दशा इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

प्रेमचन्द ने अपने–क्षेत्र में अवतरित हो हिन्दी–उपन्यास को एक नई यथार्थवादी दृष्टि प्रदान की थी। उनके उपन्यासों में वस्तु चित्रण कथोपकथन, भाषा–शैली, चरित्र–चित्रण आदि का अत्यन्त प्रौढ़ रूप उभरा था। इसी कारण वे हिन्दी में सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार बने और उपन्यास–सम्राट कहलाए।

प्रेमचन्द के समकालीन जयशंकर 'प्रसाद' ने 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' नामक तीन उपन्यास लिखे। इन के उपन्यासों में प्रेमचन्द की अपेक्षा भावना का उत्कर्ष अधिक है। भाषा में भी अंतर है। प्रेमचन्द कीभाषा सरल एवं पात्रानुकूल परिवर्तित होती रहती थी। प्रसाद की भाषा संस्कृत–गर्भित, सरस एंव भाव–प्रवण है।

सामाजिक उपन्यासकारों में इस युग में विश्भंरनाथ शर्मा 'कौशिक' के उपन्यास प्रेमचन्द की भावभूमि के समकक्ष ठहरते हैं। 'माँ' और 'भिखारिणी' उनके दो प्रमुख उपन्यास हैं, जिनमें प्रेम–त्याग और मातृत्व की भावनाओं का चित्रण हुआ है। प्रताप नारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों में समाज के उच्चवर्ग का चित्रण है। विदेशी आचार विचारों का जो प्रभाव भारतीयों पर पड़ा है उसका सजीव वर्णन उनके उपन्यासों में है। 'विदा' 'विजय' 'विकास' 'आशीर्वाद' 'पाप

की ओर' और 'विसर्जन' उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

भगवती चरण वर्मा के प्रमुख उपन्यास 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', 'टेढ़े–मेढ़े रास्ते', 'भूलेबिसरे चित्र' हैं।'चित्रलेखा' में पाप–पुण्य की अभिनव व्याख्या की गयी है। 'तीन वर्ष' में सामाजिक स्थिति का चित्रण, 'टेढ़े–मेढे रास्ते'में राजनीतिक जीवन तथा 'भूलेबिसरे चित्र' में तीन पीढ़ियों की संघर्ष गाथा है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'प्रेमपथ' 'पिपासा' 'लालिमा' 'पतिता की साधना', 'दो बहनें', 'निमंत्रण' आदि उपन्यासों की रचना की 'प्रेम–पथ' और 'पिपासा' में वासना और कर्त्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व है। अंत में कर्त्तव्य और सामाजिक प्रतिष्ठा की विजय होती है।

इस काल में कुछ साहित्यकारों ने प्रकृतवादी उपन्यासों की रचना की। जिनमें बेचनशर्मा 'उग्र' ऋषभचरण जैन आदि प्रमुख हैं। 'चंद हसीनों के खतूत' 'दिल्ली का दलाल' 'बुधुआ की बेटी' 'शराबी' 'सरकार तुम्हारि आखों में' और 'दोजख की आग' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। ऋषभचरण जैन ने 'दिल्ली का कलंक' 'दिल्ली का व्याभिचार' वेश्या–पुत्र' 'मयखाना' 'दुराचार के अड्डे' 'चांदनी रात' आदि उपन्यासों की रचना की। सुधार की भावना से इन उपन्यासकारों ने समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया परन्तु व्यक्ति और समाज दोनों के लिए परिणाम अहितकर हुआ।

चतुरसेन शास्त्री ने 'परख' 'हृदय की प्यास' 'वैशाली की नगर वधू' 'सोमनाथ' आदि सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने 'चढ़ती धूप' 'उल्का' 'नई ईमारत' आदि उपन्यासों की रचना की 'चढ़ती धूप में गाँधीवादी आदर्शों का खंडन किया गया है।

उदयशकंर भट्ट का 'वह जो मैंने देखा' उपन्यास में जीवन की अनुभूतियाँ साकार हो उठी हैं। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने उपन्यास को लेकर भी अद्‌भुत ख्याति प्राप्त की है। हास्य रस की अपूर्व रचना–शैली का समावेश उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। 'चतुरी चमार' 'बिल्लेसुर बकरिहा' 'कुल्ली भाँट' आदि उनके उपन्यास हास्य–रस के अच्छे उदाहरण हैं। 'निरूपमा' 'प्रभावती' 'चमेली' 'अलका' तथा 'अप्सरा' आदि अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

जैनेन्द्र कुमार व्यक्तिवादी उपन्यासों के अग्रदूत माने जा सकते हैं। उनका सर्वप्रथम उपन्यास 'परख' है जिसका प्रकाशन 1930 ई॰ में हुआ था। तदुपरांत 'सुनीता' 'तपोभूमि' 'त्यागपत्र' कल्याणी' 'सुखदा' 'विवर्त, आदि उपन्यास प्रकाशित हुए। उनमें नैतिक मापदंडों के परिवर्तन की तीव्र एवं व्यंग्यात्मक पुकार है। 'तपोभूमि' और 'सुनीता' में अंतर्वृत्ति और उसके विकासक्रम को अंकित किया गया है।

वृदावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के उपन्यास लिखे परंतु ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई। ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण पांच हैं – 'गढ़कुंडार'विराटा की पद्‌मिनी', 'झाँसी' की रानी' 'मृगनयनी' और 'कचनार'। सामाजिक उपन्यासों मे तीन प्रसिद्ध हैं 'लगन 'अचल मेरा कोई' 'शबनम और सोना'।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द युगीन हिन्दी–उपन्यास एक नई युग–चेतना को लेकर आगे बढ़ा था। सामाजिक दृष्टि से इन पर आर्य–समाजी सुधारवादी विचार–धारा का प्रभाव रहा था। राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से ये गाँधीवाद और द्विवेदी–युगीन सांस्कृतिक पुनरूत्थान की भावना से प्रभावित रहे थे। समष्टितः इनका प्रधान स्वर राष्ट्रीयता का था। यद्यपि आदर्शवादी और यथार्थवादी–दोनों ही धारणाएँ इस युग के उपन्यासों में समानन्तर प्रवाहित हो रही थी परन्तु दोनों का मूल लक्ष्य एक ही था –सामाजिक और सांस्कृतिक सुधार के माध्यम से देश को सशक्त बना कर स्वतन्त्रता–प्राप्ति के लिए अग्रसर करना। कला की दृष्टि से भी हिन्दी–उपन्यास अधिक सुगठित और सशक्त बनते जा रहे थे। इस युग में हिन्दी उपन्यासों ने इतनी अभूतपूर्व प्रगति की थी कि वह अपने युग की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विद्या बन गया था। वस्तुतः प्रेमचन्द की समाप्ति तक हिन्दी–उपन्यास का अपना एक निश्चित स्वरूप बन गया था जो बहुमुखी रूप धारण कर परवर्ती युग में विकसित हुआ।

2.3.3 प्रेमचन्दोत्तर अथवा प्रेमचन्द परवर्ती काल :–

प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी–उपन्यास बहुमुखी रूप धारण कर आगे बढ़ा। इस नवीन युग में प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, फ्रायडवादी, ऐतिहासिक, सामाजिक, आंचलिक और पाश्चात्य–जगत में उत्पन्न नई–नई विचारधाराओं और पद्धतियों का अनुसरण करने वाले सैंकड़ों उपन्यास नई साहित्यिक चेतना के प्रतिनिधि के रूप में रखे जाते हैं। इनमें से कुछ प्रवृत्तियों का जन्म प्रेमचन्द युग में हो चुका था और कुछ नई प्रवृत्तियाँ इस नवीन विकास के युगमें उद्‌गमित हुई। सबने यथार्थचित्रण को अपनाकर जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण करना आरम्भ कर दिया। इस यथार्थवादी चित्रण के दो प्रधान रूप रहे। पहला समाजवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यासकारों ने समाज का यथार्थ चित्रण कर समाज की दशा को बदलने के नए आयाम प्रस्तुत किए। ऐसे उपन्यास प्रगतिवादी कहलाए। इन नए यथार्थवादी उपन्यासकारों ने उस चित्रण में साम्यवादी विचारों का समावेश कर उसे एक निश्चित राजनीतिक विचारधारा का रूप दे दिया। यशपाल, राहुल, रागेय राघव, नागार्जुन, अमृतराय आदि इस धारा के प्रमुख और प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं। दूसरा व्यक्तिवादी जीवन – दर्शनों से प्रभावित उपन्यासकारों ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति को ही अधिक महत्त्व प्रदान करते हुए व्यक्ति की विभिन्न मनः स्थितियों, कुंठाओं आदि के चित्रण को ही अपना मूल लक्ष्य बनाया। जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, धर्मवीर भारती आदि इसी वर्ग के उपन्यासकार हैं।

स्वतन्त्रता के बाद हिंदी–उपन्यास ने आशातीत प्रगति की है। अनेक प्रसिद्ध उपन्यासकार जो प्रेमचन्द–युग से उपन्यासों का सृजन करते आ रहे थे, इस युग में समान रूप से क्रियाशील रहे हैं। इनमें वृंदावन लाल वर्मा, इलाचंद्र जोशी, चतुरसेन शास्त्री, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, जैनेद्र, अज्ञेय, अश्क, यशपाल आदि ने इस काल में भी अनेक सुंदर नवीन उपन्यास लिखे हैं। वर्माजी ने इस काल में अनेक उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास के पक्ष को काफी समृद्ध बनाया है। 'कचनार' 'मृगनयनी' , 'झाँसी की रानी', 'भुवनविक्रम', चतुरसेन शास्त्री के 'वैशाली' 'मधवजी सिंधिया' आदि ऐतिहासिक उपन्यास इसी युग में प्रकाश में आए हैं। 'नगरवधू' 'सोमनाथ' 'गोली 'वयं रक्षामः' जैसे ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास लिखकर पर्याप्त प्रगति का परिचय दिया है। जैनेंद्र 'सुखदा' 'विवर्त' तथा 'व्यतीत' नामक उपन्यास लिखकर 'कल्याणी' की पुरानी परम्परा से ही चिपके रहे हैं। उनके इन नवीन उपन्यासों में कोई नवीनता नहीं आ पाई है। इस काल में उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने मध्यवर्गीय जीवन में व्याप्त अवसाद और कुंठा का चित्रण करते हुए

कई सुंदर सामाजिक उपन्यास लिखे हैं जिसमें सामाजिक यथार्थवाद की पृष्ठभूमि पर निराशा का सृजन ही अधिक हुआ है: 'गिरती दीवारें', 'गर्मराख', 'बड़ी बड़ी आँखें' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

यशपाल ने इस काल में 'मनुष्य के रूप' 'अमिता' आदि उपन्यासों की रचना की जो उनके 'दादा कामरेड' 'देशद्रोही' आदि की परंपरा से थोड़े से हट गए हैं। यशपाल मार्क्सवादी के रूप में प्रसिद्ध हैं साथ ही, उन पर फ्रायड का भी गहरा प्रभाव है।

इलाचंद्र जोशी के उपन्यास 'मुक्तिपथ', 'जिप्सी', 'सुबह के भूले' तथा 'जहाज का पंछी हैं। इन उपन्यासों में जोशी जी के दृष्टिकोण में पर्याप्त अंतर एवं प्रगति दिखाई पड़ती है। 'सुबह के भूले' और 'जहाज का पंछी' में वे सामाजिक यथार्थवाद के अत्यंत निकट आ गए हैं। वैसे जोशी मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी के रूप में प्रसिद्ध हैंपरन्तु दोनों उपन्यासों में मानसिक कुंठावाद का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है।

अज्ञेय का इस काल में केवल एक उपन्यास निकला है। – 'नदी के द्वीप'। 'शेखर : एक जीवनी' के लेखक अज्ञेय और 'नदी' के द्वीप' के लेखक अज्ञेय में तनिक भी अंतर नहीं आ पाया है। इस उपन्यास में भी अज्ञेय का दृष्टिकोण वैसा ही वैयक्तिक, घोर असामाजिक एवं कुंठाग्रस्त है जैसा कि 'शेखरः एक जीवनी' में था।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा तथा अंचल ने भी इस काल में कई उपन्यासों की रचना की है। वाजपेयी जी ने वैज्ञानिक यर्थाथवाद को अपने उपन्यासों में अधिक प्रश्रय दिया है जबकि अंचल सामाजिक यथार्थवाद के अधिक निकट है। अंचल के नए उपन्यास 'नई ईमारत' 'मरु प्रदीप', आदि हैं। भगवतीचरण वर्मा स्वच्छंद प्रवृत्ति के उपन्यासकार हैं। उन पर किसी भी वरिष्ठ कला सिद्धान्त या वाद का प्रभाव नहीं है।

इस काल में अनेक ऐसी प्रतिभाओं का भी उदय हुआ है जिनमें से कुछ तो 1940 ई॰ के लगभग से लिखते चले आ रहे हैं तथा कुछ स्वतंत्रता के बाद प्रकाश में आए हैं। इनमें से कुछ ने प्रेमचन्द की सामाजिक यथार्थवाद की परम्परा को आगे बढ़ाया है तथा कुछ ने उस परम्परा के क्षेत्र को विस्तार और नवीनता दी है। इसके साथ ही इस युग के कुछ उपन्यासकार ऐसे भी सामने आए हैं जिनकी सृजनात्मक प्रतिभा निस्संदेह उच्चकोटि की है।

नई पीढ़ी के इन उल्लेखनीय उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर, नागार्जुन, रांगेय राघव, अमृतराय, राजेंद्र यादव, देवेंद्र सत्यार्थी, डा॰ लक्ष्मीनारायण लाल, नरोत्तम नागर, उदयशंकर भट्ट, रजनी पनिकर, फणीश्वरनाथ रेणु तथा धर्मवीर भारती का नाम लिया जा सकता है।

नवीन सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर, अमृत राय, रांगेय राघव, उदयशंकर भट्ट तथा राजेन्द्र यादव का अपना विशिष्ट महत्त्व है। नागर जी 'महाकाल', 'सेठ बाँकेमल' जैसे उपन्यास लिखकर पहले काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। सेठ बाँकेमल अपनी आंचलिक भाषा, कथाशिल्प एवं संक्षिप्तता की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट उपन्यास माना जा सकता है। नागर जी का 'बूँद' और समुद्र' इस काल के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में रखा जाता है।इसमें लखनऊ के सामाजिक जीवन का विशद एवं यथार्थ चित्रण है।

डॉ० रांगेय राघव ने कई उपन्यास लिखकर हिंदी साहित्य के गौरव को बढ़ाया है। उनका 'मुर्दे का टीला' हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यासों में माना जाता है। उन्होंने कुछ लघु औपन्यासिक जीवनियाँ लिखकर एक नई दिशा का निर्देश

किया है। उनके उपन्यासों में, सर्वाधिक उल्लेखनीय उपन्यास 'कब तक पुकारुँ' है। यह आंचलिक उपन्यास है। इसमें भरतपुर के आसपास बसे नटों के जीवन, उनकी सामाजिक मान्यताओं आदि का सशक्त भाषा एवं ओजपूर्ण शैली में चित्रण किया गया है।

नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची', 'बाबा बटेसरनाथ', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'वरुण के बेटे' आदि उपन्यासें की रचना की है। वे मार्क्सवादी चिंतन धारा से अत्यंत प्रभावित हैं। भूमि–संघर्ष, किसानों की समस्या, जमींदारी प्रथा के विरुद्ध आक्रोश, सामाजिक, कुप्रथाओं के प्रति असंतोष, जनवादी आंदोलन की सफलता आदि का चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है।

राजेन्द्र यादव ने 'प्रेत बोलते हैं', 'उखड़े हुए लोग' आदि उपन्यासों की रचना की। 'उखड़े हुए लोग' समाज के उस अंग का चित्र है जो आगे तो बढ़ना चाहता है, उसमें आगे बढ़ने की शक्ति है परंतु सामाजिक गठन उसे जाने नहीं देता। काँग्रेसी नेताओं की धूर्तता, वर्तमान नवयुवक का लक्ष्यहीन उद्देश्य तथा सामाजिक विषमता और शोषण का उसमें सुंदर चित्रण है।

इधर हिंदी में आंचलिक उपन्यासों का काफी ज़ोर रहा है। निराला, उदयशंकर भट्ट, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, देवेंद्र सत्यार्थी, अमृतलाल नागर, अमृतराय आदि के कुछ उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दीगयी है। कुछ लोग रेणु के 'मैला आँचल' को हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास मानते हैं तथा उन्हीं के दूसरे उपन्यास 'परती परिकथा' को विश्व के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों की पंक्ति में बिठा देते हैं। उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य' भी इस वर्ग के उपन्यासों में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' को भी इसी कोटि में रखा जाता है।

रजनी पनिकर ने 'मोम के मोती', 'प्यासे बादल' 'पानी की दीवार', 'काली लड़की' आदि उपन्यासों की रचना की है। इनमें यथार्थ की पृष्ठभूमि पर मध्यवर्गीय, विशेष रूप से नारी समाज की समस्याओं का सुंदर चित्रण करते हुए भी दृष्टिकोण आर्दशवादी ही रहा। इनके अतिरिक्त आनंद प्रकाश जैन, गुरुदत्त, यज्ञदत्त, कमलेश्वर, माचवे, अमृतराय आदि ने भी उपन्यास के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को ऐतिहासिक सांस्कृतिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है इसमें उन्होंने मध्यकालीन कथा वस्तु के आधार पर आधुनिक समस्याओं को स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया।

2.3.4 हिन्दी उपन्यास साहित्य में नवीन प्रयोग

सामयिक उपन्यास साहित्य में उपन्यासकारों ने व्यक्ति को प्रमुखता देकर उपन्यासों की रचना की। उदाहरणार्थ, राजेन्द्र यादव कृत 'अनदेखे अनजान पुल' (1963) में उपन्यास की नायिका, किन्नी, के रूप में एक व्यक्ति का सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। इसी प्रकार नरेश मेहता कृत 'डूबते मस्तूल' (1954), 'दो एकान्त' (1961) 'प्रथम फाल्गुन (1968) में व्यक्ति पर ध्यान केन्द्रित करते हुए भी उसे समाज से जोड़ने की चेष्टा की गई है। इन उपन्यासों में मध्य वर्ग का संकट और आधुनिक बोध व्यक्त हुआ है। आज के स्त्री–पुरुष के संबंधों, विशेषतः दाम्पत्य जीवन में पड़ी

दरारों, विसंगतियों और विडम्बनाओं के बीच व्यक्ति–व्यक्ति के संबधों में तनाव, बिखराव का चित्रण करने में मोहन राकेश (1925–1972) को 'अंधेरे बन्द कमरे' में सफलता प्राप्त हुई है। 'न आने वाला कल' (1968) और 'अन्तराल' (1972) में उन्होंने स्त्री–पुरुष संबधों के नवीन परिवेश में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। व्यक्ति–केन्द्रित दृष्टिकोण का सबसे अधिक निर्मल वर्मा कृत 'वे दिन' (1964) में उभरा है। लेखक ने अस्तित्ववादी दृष्टिकोण ग्रहण किया है। पात्रों में अजनबीपन, संत्रास और कुण्ठा है। उनमें शून्य और मृत्यु का भय है। वातावरण द्वितीय महायुद्वोत्तर युवा पीढ़ी से जुड़ा हुआ है। व्यक्तिवादी चिन्तन पर ही आधारित दृष्टिकोण लिए हुए, उषा प्रियंवदा के पहले उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (1961) के बाद 'रुकोगी नही राधिका (1967) उपन्यास उल्लेखनीय है। राधिका शरीर की भूख मिटाने के लिए परम्परागत मूल्यों को नकारती हुई स्वयं अपने जीवन के अन्तर्विरोधों, विसंगतियों, संत्रास, घुटन आदि का शिकार बन जाती है। स्त्री–पुरुष संबधों को लेकर बलवन्तसिंह कृत 'बासी फूल' (1967), महेन्द्र भल्ला कृत 'एक पति के नोट्स' (1967), कृष्ण सोबती कृत 'मित्रों मरजानी' (1967), परदेशी कृत 'औरत एक : चेहरे हज़ार' (1967) व्यक्ति–केन्द्रित विषमताओं का चित्रण करते हैं। शशिप्रभा शास्त्री के 'अमलतास' (1968), श्याम व्यास के 'एक प्यासा तालाब' (1968) और जानकी वल्लभ शास्त्री के 'एक किरण : सौ झाइयां' (1968) उपन्यासों में नारी की कामवासना को लेकर स्त्री–पुरुष संबंधों को नये दृष्टिकोण से देखा गया है। व्यक्ति को लेकर ही चलने वाले उपन्यास में शिवानी कृत 'कृष्ण कली' (1969) और 'भैरवी' (1969) उपन्यासों का उल्लेख किया जा सकता है। इसी प्रकार उनके 'चौदह फेरे' (1965) और 'अपराधिनी' (1971) में संस्कारों से ग्रस्त नारी–जीवन की मुक्ति प्राप्त करने की छटपटाहट है। भीष्म साहनी के 'कड़ियाँ' (1970) नामक उपन्यास में वैवाहिक, फलतः पारिवारिक, जीवन के विघटन की कहानी है। प्रमोद सिन्हा का 'उसका शहर' (1970) सेक्स और विवाह पर केन्द्रित उपन्यास है। 'लोग' और 'चिड़ियाघर' उपन्यासों के लेखक गिरिराज किशोर कृत 'यात्राएं' उपन्यास नवविवाहित दम्पत्ति के मानसिक जगत को पहचानने की कोशिश करता है। ममता कालिया ने 'बेघर' (1971) और 'नरक दर नरक' (1975) उपन्यासों में 1947 के बाद के बदलते परिवेश में व्यक्ति को चुनौती के स्तर पर जीते हुए चित्रित किया है।

उपर्युक्त कुछ रचनाओं के अतिरिक्त युवा पीढ़ी के अन्य लेखकों की रचनाओं में भी सेक्स की तरह–तरह की भूखों, विवाहित जीवन की विडम्बना आदि का चित्रण मिलता है। साथ ही जीवन को किसी निश्चित दिशा की ओर गति प्रदान करने में भी असमर्थ रहता है। इसकी चरम सीमा राजकमल चौधरी कृत 'मछली मरी हुई' (1966), (इनका एक और उपन्यास 'अग्निस्तान' है, 1978) में मिलती है, जिसमें भूखी या विद्रोही पीढ़ी के इस ज़ोरदार लेखक ने 'लेस्बियन लव' अर्थात् समलैंगिक यौनाचारों में डूबी हुइ स्त्रियों का वर्णन किया है। सामयिक जीवन मे इतने अधिक उपन्यास लिखे जा रहे हैं कि उन सबके उदाहरण देना यहां असम्भव, है। किन्तु इतना निश्चित है कि बहुसंख्यक उपन्यासों में सेक्स और पति–पत्नी, नारी–पुरुष संबधों को लेकर व्यक्ति का मनोविश्लेषण किया गया है।

सेक्स, परिवार–विघटन, पति–पत्नी–संघर्ष, अर्थात् संक्षेप में व्यक्ति और स्त्री पुरूष सम्बन्धों के सीमित दायरे में लिखे गए उपन्यासों के अतिरिक्त उपन्यासों का एक अल्पसंख्यक वर्ग ऐसा भी रहा है जिसमें उपन्यासकारों ने जीवन की व्यापकता, उसके फैलाव, समाज और राष्ट्र के प्रति बहुजनहिताय वाला दृष्टिकोण ग्रहण कर सामयिक हिन्दी उपन्यास के एकांगी होने के दोष का परिहार किया है और सिद्ध कर दिया है कि सेक्स और व्यक्ति की तंग दुनिया से भी बाहर निकला जा सकता है। ऐसे उपन्यासकारों में रामानन्द सागर : 'इन्सान मर गया' (1949), यज्ञदत्त शर्मा,

'इन्सान (1951), धर्मवीर, भारती : 'सूरज का सातवां घोड़ा' (1952), राजेन्द्र यादव : प्रेत बोलते हैं' (1952) और इसी का संशोधित रूप 'सारा 'आकाश' (1960), 'उखेड़ हुए लोग (1957) राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारीः 'एक इंच मुस्कान,' 'अनदेखे अनजान पुल,' 'शह और मात,' 'मंत्रविद्ध,'(1967) फणीश्वरनाथ रेणु : 'मैला आंचल' (1954) और 'परतीःपरिकथा' (1957) 'पलटू बाबू रोड' (1979) नरेश मेहता : 'धूमकेतु 'एक श्रुतिः (1962) और 'यह पथ बन्धू था' (1967), 'उत्तरकथा' (1979) 'एक और अजनबी' (1961), 'सुबह अंधेरे पथ पर' (1967) और 'पत्थरों का शहर (1971), शिवप्रसाद सिंह : 'अलग–अलग वैतरणी' (1967), मोहन राकेश 'न आने वाला कल', विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : 'रीछ' (1967), कमलेश्वरः 'काली आंधी, 'डाक बंगला,' अमरकान्त : 'आकाश पक्षी' (1967), श्रीलाल शुक्ल : 'राग दरबारी' (1968), 'अज्ञातवास', रमेश बक्षीः 'अठारह सूरज के पौधे (1965) और 'चलता हुआ लावा' (1968), गिरिराज किशोर : 'लोग (1966) और 'चिड़ियाघर' (1968), 'दावेदार' (1978), राही मासूम रज़ा : आधा गांव' (1966), 'टोपी शुक्ला, (1969), 'हिम्मत जौनपुरी' (1969) और 'ओस की बूंदे, (1970), गंगा प्रसाद विमल : 'अपने से अलग' (1964), 'तस्वीरें और साये' (1969), 'मरीचिका', डा॰ देवराज : 'बाहर और भीतर (1954), 'अजय की डायरी' (1960) और 'मैं, वे और आप' (1966), 'दोहरी आग की लपट', 'भीतर का घाव', अमरकान्त : काले उजले दिन' (1969), मणि मधुकर : 'सफेद मेमने' (1971), बदीउज्ज़मां,: 'एक चूहे की मौत (1971), मन्नू भण्डारीः 'आपका बंटी, (1971), 'महाभोज' (1979), 'कलवा', 'स्वामी', लक्ष्मीनारायण लालः 'धरती की आंखें' (1951), 'बया का घोंसला और सांप,' 'बड़ी चम्पाः छोटी चम्पा', 'मन वृन्दावन' (1966), प्रेम अपवित्र नदी', (1972), 'हरा समन्दर गोपीचन्दर', 'शृंगार' 'बसन्त की प्रतीक्षा' देवेश ठाकुर : भ्रमभंग' (1975), रंगेय राघव : 'बोलते खण्डहर' (1976), जितेन्द्र भाटिया :समय सीमान्त' (1977), जगदीशचन्द्र पाण्डेयः 'धरती और नींव' (1978), मृदुला गर्ग : 'चित्तकोबरा' (1978) 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'अनित्य', दुष्यन्तकुमारः 'आंगन में एक वृक्ष' (1978 द्वि॰ सं॰), मन्नू भण्डारी : 'महाभोज', 'यही सच है', श्रीकान्त वर्मा', : दूसरी बार', शिवानी : 'रति विलाप', 'विषकन्या' आदि, राजेन्द्र अवस्थी : 'बीमार शहर', महेश गुप्तः 'सिकुड़ा हुआ आदमी' (1978), शशिप्रभा शास्त्रीः 'परछाइयों के पीछें' (1979), 'क्योंकि (1980) कामतानाथ : 'एक और हिन्दुस्तान' (1979), शानी 'चौथी सत्ता' (1979), शैलेश मटियानीः 'छोटे–छोटे पक्षी' (1979), बलदेवः 'आंधी में तिनके' (1979), दत्त भारती : ''मंगल सूत्र' (1979), रणवीर पुष्पः 'तपती रेत का सफ़र' (1979), दीपचन्द बिहारीः 'मसीहे नरक जीते हैं (1980)। निदेशनन्दिनी डालमियाः 'कंदील का धूआं' (1980), कवितासिंह : 'बदचलन' (1980), सुरेन्द्र वर्माः 'अंधेरे से परे' (1980), गोविन्द मिश्र : 'हुजूर दरबार' (1980), योगेश गुप्तः 'उनका फैसला, 'उपसंहार' (1980), बल्लभ डोभाल : 'तिब्बत की बेटी' (1980), राम कुमार भ्रमर : 'एक अकेला' (1980), मंजुला भगतः 'अनारो', निरूपमा सेवती : 'बंटता हुआ आदमी', मेहरुन्निसा परवेज़, : कोरजा', नागार्जुन, 'अभिनन्दन', रामगोपाल गोयल : 'अंधेरे के विरुद्व' (1980), आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लेखको ने ब्यापक परिधि में विचरण किया है।

केवल उदाहरण के लिए उल्लिखित इन कुछ लेखकों और उनकी रचनाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक लेखक (जिनकी संख्या बहुत अधिक है) सामने आ रहे हैं जिन्होंने उपन्यास–लेखक के रूप में अभी ख्याति तो प्राप्त नहीं की, किन्तु भविष्य में जिनसे बहुत आशा है। सस्ती प्रचारात्मकता, पिटी–पिटाई आधुनिक प्रवृत्तियों, शब्दावली और कोरी भावुकता को बचाकर यदि वे आधुनिक समस्याओं को उचित परिप्रेक्ष्य में और सन्तुलित–दुष्टिकोण के साथ देखें तो ये लेखक हिन्दी उपन्यास–साहित्य को समृद्ध कर सकते हैं। सभी लेखकों ने अभावों, संघर्षों विघटित होते हुए मूल्यों के

बीच ज़िन्दगी की नब्ज़ पकड़ने की चेष्टा की है। उन्होंने महानगरों, गांवों और मध्यमवर्गीय जीवन को अपनालक्ष्य बनाया है और नया शिल्प, नई संवेदनशीलता, युग–बोध और नई धारणाएँ उभारकर जीवन को बाहर और भीतर से निरखा–परखा है। व्यक्ति अपने में और समाज के सन्दर्भ में कहां है, इसकी खोज हो रही है, व्यक्ति की नियति को पहचानने की कोशिश हो रही है। आस्था और अनास्था के बीच तुमुल युद्ध छिड़ा हुआ है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी का उपन्यास–साहित्य संस्कृत के 'हितोपदेश' और 'पंचतंत्र' की उपदेशात्मक शैली से आरंभ होकर तिलस्म, ऐयारी और जासूसी उपन्यासों द्वारा साहित्य–समाज जिज्ञासा और कौतुहल–वृद्धि को उद्‌बुद्ध और तृप्त करता हुआ ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं और समस्याओं के विधान पर आया और उन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए चरित्र–चित्रण की सृष्टि हुई। उसने अपने विकास और प्रगति के पथ पर अपनी भाव–धारा को परिवर्तित किया और राजनीति के गाँधीवाद और मार्क्सवाद, दोनों पक्षों को अंगीकार किया। अब आज वह अंतर्मुखी होकर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और चित्रण की ओर अभिमुख हुआ है और एक नूतन संस्कृति के पोषण एवं संवर्द्धन में सलंग्न है।

'हिन्दी उपन्यास–साहित्य में प्रेमचन्द का स्थान' निर्धारणकी दृष्टि से देखे तो पूर्व–प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकारों का ध्येय या तो पाठकों को उपदेश देना था या उनका मनोरंजन करना। उपदेशात्मक उपन्यासों में तत्कालीन समाज के नैतिक उत्थान का प्रयास हुआ और मनोरंजन–प्रधान उपन्यासों में कथा के माध्यम से पाठकों का मनोरंजन करना ही उपन्यासकारों का मुख्य ध्येय रहा। तिलस्मी, ऐयारी तथा जासूसी उपन्यासों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

प्रेमचन्द के पदार्पण से हिंदी–साहित्य में युगांतर उपस्थित हुआ। प्रेमचन्द आधुनिक उपन्यास के प्रवर्त्तक हैं। उनकी रचनाओं का उद्देश्य मनोरंजन मात्र न था बल्कि उनका मानव जीवन और समाज में उपयोग वांछित था। प्रेमचन्द का कथा साहित्य समस्या–प्रधान है जिसमें समाज और व्यक्ति की समस्याओं का व्यापक चित्रण किया गया है। विषय की दृष्टि से भी प्रेमचन्द ने नवीनता का परिचय दिया। उन्होंने साहित्य को रूढ़िबद्ध परंपरा से मुक्त किया औरअति मानवता के जीवन–चित्रण द्वारा कला की सार्थकता अनुभव की। प्रेमचन्द ने स्पष्ट शब्दों में कला को जीवन शक्ति से अनुप्राणित देखने में विश्वास प्रकट किया। न केवल उपन्यास साहित्य में वरन् समस्त हिन्दी साहित्य में नवीन और स्वस्थ साहित्यिक परम्परा का प्रवर्त्तन किया जो समाज की आधारभूत मानवता के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करती है। "प्रेमचन्द के उपन्यासों की मूल प्रेरणा सामाजिक कल्याण की भावना है। उनके कथानकों में मानव के सामाजिक जीवन का मुख्यतः चित्रण मिलता है, वैयक्तिक जीवन का भी अंशतः उल्लेख हो गया है। प्रेमचन्द के उपन्यास उनके युग की वाणी हैं। युग की परिस्थितियों की घनमाला ने उनके अन्तर–आकाश का आच्छादित कर दिया था। सामाजिक जीवन की विविध समस्याओं के माध्यम से उन्होंने अपनी कला के सामाजिक उद्देश्य को मूर्त्त किया है।" अपने चारों ओर के समाज में से विभिन्न कथानकों का चयन करके उन्होंने जिन उपन्यासों की रचना की है वे युग–युग तक हिंदी साहित्य की अमर निधि रहेंगे।

प्रेमचंद जनता के उन सेवकों में से थे जो उसकी रक्षा के लिए अन्याय और उत्पीड़न के विरूद्ध आवाज उठाते हैं, जो पराधीनता, दुर्व्यवस्था, अन्धविश्वासों और प्रतिक्रियावादी तत्त्वों से बराबर जूझते हैं। साथ ही अपनी सुख–सुविधाओं को समाज की सुख–समृद्धि के लिए त्याग देते हैं। वे जनहित के सच्चे पोषक थे। जब तक गान्धी जी

की सेवा, अहिंसा और मनः परिवर्तन के सिद्धांतों में उन्हें जनहित दिखाई दिया, तब तक वे उन्हें मानते रहे। जब उन्होंने इन सिद्धातों की सभी सीमाओं को पहचान लिया तो जनहित की ही भावना से उन्होंने शोषणरहित समाज की स्थापना के हेतु वर्ग–संघर्ष–सिद्धान्त को अपनाने का प्रयत्न किया।

हिन्दी उपन्यास को नया मोड़ देने वाले प्रेमचंद केवल अपने युग के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण हिंदी उपन्यास साहित्य में सर्वोत्कृष्ट लेखक हैं। आधुनिक युग में उपन्यास की जो नई प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं, अपने बीज रूप में वे प्रेमचंद के उपन्यासों में न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान हैं। इसी प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में जो समस्याएँ उठाई गयी हैं वे व्यक्तिगत और पारिवारिक न होकर समाजव्यापी हैं और सामाजिक सीमाओं का स्पर्श करती हैं। प्रेमचंद ने भारतीय नागरिक एवं ग्रामीण जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों और उनके विविध पक्षों पर मानवतावादी दृष्टिकोण से विचार किया है। यही कारण है कि उनकी कृतियाँ जनता का साहित्य है जिनमें भारतीय सामाजिक जीवन प्रतिबिंबित है। ग्रामीण समाज, सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक पाखंड़, वेश्या–समस्या, अछूत समस्या, अछूत राजनीतिक स्वतंत्रता, क्रांति का स्वरूप, नागरिक समाज के विभिन्न वर्ग आदि उनके उपन्यासों के प्रमुख विषय हैं।

हिंदी उपन्यास–साहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। उन्होंने हिंदी उपन्यास की पूर्ववर्ती समस्त परंपराओं का अनुगमन और संयोजन करते हुए उसके भावी विकास के लिए विविध धाराओं से युक्त एक ऐसी दिशा दी जिससे उसके विविध अंगों को समुचित रूप से पल्लवित होने का अवसर मिला। उनके उपन्यास समकालीन युग–जीवन के सजीव चित्र हैं। हिन्दी के सभी उपन्यासकारों में प्रेमचन्द एकमात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने भावी कथा साहित्य और कथाकारों को अत्यंत व्यापक रूप से प्रभावित किया था। प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास–साहित्य का विकास प्रेमचन्द के व्यक्तित्व की महानता और विरासत का प्रमाण हैं। संक्षेप में, प्रेमचंद का कथा–साहित्य भी हिन्दी –उपन्यास की उसी महान् परम्परा को आगे बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ है जिसका प्रसार भविष्य में अनिश्चित काल तक होने वाला है और जिसकी जड़ें अतीत में भी सुदीर्घ काल तक फैली हुई हैं।

2.4 सारांश

प्रेमचंद मनुष्यता के अमर कथाकार हैं। जब तक समाज में अनीति, अन्याय, अत्याचार और अविचार हैं, तब तक प्रेमचन्द की कृतियाँ मशाल का काम देंगी और जब मुक्ति के प्रकाश से मनुष्यता का मुख उज्ज्वल होगा, तब वे शोषित पीड़ित जनता की जीवन–गाथा से, उसके जीवनव्यापी संघर्ष से हमारा परिचय कराती रहेंगी।

2.5 कठिन शब्द

1.	परिष्कृत	6.	पतनोन्मुख
2.	कुतुहल	7.	कारिन्दे
3.	यथेष्ट	8.	साम्यवादी
4.	स्तम्भित	9.	संत्रास
5.	असामयिक	10.	अनुप्राणित

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. हिन्दी उपन्यास के विकास पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न. हिन्दी उपन्यास में पूर्व प्रेमचन्द उपन्यासों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न. हिन्दी उपन्यासों में प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों पर टिप्पणी कीजिए।

प्रश्न. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2.7 पठनीय पुस्कें :

1. प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृत्तित्व – हँसराज 'रहबर'
2. प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय
3. प्रेमचन्द – सं० सत्येन्द्र
4. कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रजा

———— 0 ————

प्रेमचन्द का साहित्य

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 प्रेमचन्द का साहित्य

3.3.1 प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य

3.3.2 प्रेमचन्द की कहानियाँ

3.3.3 प्रेमचन्द का नाटक साहित्य

3.3.4 प्रेमचन्द द्वारा रचा गया विविध साहित्य

3.3.5 प्रेमचन्द द्वारा अनूदित साहित्य

3.3.6 प्रेमचन्द का वैचारिक साहित्य

3.3.7 पत्रकारिता और प्रेमचन्द

3.4 सारांश

3.5 कठिन शब्द

3.6 अथ्यासार्थ प्रश्न

3.7 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप प्रेमचन्द के द्वारा रचे गए सम्पूर्ण साहित्य के बारे में जान सकेंगें। उपन्यास सम्राट कहे जाने वाले प्रेमचन्द ने न सिर्फ उपन्यासों में अपितु कहानियों में भी भरपूर ख्याति अर्जित की। उपन्यासों और कहानियों में ख्याति प्राप्त करने वाले प्रेमचन्द ने विविध साहित्य की भी रचना की इससे अवगत होंगे।

3.2 प्रस्तावना

प्रेमचन्द बहुमुखी प्रतिभा–संपन्न साहित्यकार थे और वे फारसी, उर्दू, अंग्रेज़ी एवं हिन्दी के ज्ञाता थे। उनका आरंभिक लेखन अधिकांशतः उर्दू में हुआ था, जिसका उन्होंने बाद में हिन्दीकरण किया। उन्होंने अपने 'रंगभूमि' तक के उपन्यास उर्दू में लिखे और बाद में उन्हें हिन्दी रूप दिया। प्रेमचन्द के उर्दू से हिन्दी में आने के कई कारण थे – हिन्दी से वह राष्ट्रीय रंगमंच से जुड़े, उर्दू की तुलना में हिन्दी में धन–यश अधिक था और वे उर्दू की साम्प्रदायिकता से भी व्यथित और पीड़ित थे। प्रेमचन्द की ख्याति यद्यपि कथाकार के रूप में हुई, किन्तु उन्होंने उपन्यास – कहानी के साथ नाटक, लेख, संस्मरण, लघुकथा, पुस्तक–समीक्षा, पत्र, भूमिका, संपादकीय पत्र, भाषण, बाल साहित्य आदि अन्य साहित्यिक – विधाओं में भी विपुल साहित्य की रचना की। प्रेमचन्द की उपन्यास एवं कहानी में इतनी प्रसिद्धि हुई कि हिन्दी संसार एवं लोक–मानस ने उन्हें इन दोनों विधाओं में 'सम्राट' के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। प्रेमचन्द के संबंध में यह महत्वपूर्ण है कि वे हिन्दी–उर्दू दोनों भाषाओं को अपनी सर्जनात्मकता के लिए चुनते हैं और इन भाषाओं के आदान–प्रदान से एक नया भाषिक संस्कार एवं भाषिक सृष्टि होती है और हिन्दी को एक नया रूप मिलता है।

3.3 प्रेमचन्द का साहित्य

3.3.1 प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य

प्रेमचन्द ने उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में उपन्यास लिखे हैं।

उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द का हिन्दी में पर्दापण सेवासदन (1918) के साथ हुआ। इससे पहले वे उर्दू में असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य (1903–05), 'हमखुर्मा व हमसवाब' (1906) 'किसना' (1908) 'जलव–ए–ईसार' (1912) आदि उपन्यास लिखे थे। 'हमखुर्मा और हमसवाब' उर्दू उपन्यास का हिन्दी रूपांतर प्रेमा अर्थात दो सखियों का विवाह नाम से प्रकाशित हुआ। 'जलव–ए–ईसार' प्रेमचन्द का तीसरा उर्दू उपन्यास था जो 1921 में हिन्दी में 'वरदान' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। प्रेमचन्द का पहला उपन्यास सेवासदन (1918) पहले उर्दू में 'बाजारे हुस्न' शीर्षक से लिखा गया था परन्तु उर्दू रूप हिन्दी रूपांतरण के बाद प्रकाशित हुआ। प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम (1922) और रंगभूमि (1925) पहले उर्दू में 'गौशए आफियत' और 'चौगाने हस्ती' नाम से लिखे गये थे, पर साथ–साथ उनके हिन्दी रूपांतर भी स्वयं प्रेमचन्द के द्वारा ही होते रहे। प्रेमचन्द का हिन्दी में लिखा पहला उपन्यास कायाकल्प (1926) था।

जब प्रेमचन्द ने उर्दू में उपन्यास और कहानियाँ लिखना आरंभ किया था उस समय हिन्दी में देवकीनंदन खत्री के ऐयारी तिलिस्म प्रधान उपन्यासों की धूम मची हुई थी परन्तु प्रेमचन्द इनके प्रभाव में नहीं आए। असरोरमआबिद उर्फ

देवस्थान रहस्य में उन्होंने मंदिरों और तीर्थस्थानों में फैलें भ्रष्टाचार पाखंड और प्रवंचना, वेश्याओं और चरित्रहीन स्त्रियों का चित्रण किया है। प्रेमचन्द पर आर्य समाज का प्रभाव था। वह हिन्दू समाज को आधुनिक रूप में देखना चाहते थे और समानता के पक्षधर थे जिसमें अमीर–गरीब, स्त्री–पुरुष, जंमीदार–किसान', भगवान इंसान में कोई फर्क नहो। इसी से प्रभावित होकर उन्होंने आरंभिक उर्दू उपन्यास लिखे। जहाँ उन्होंने असरारे मआबिद में रहस्य को उद्घाटित किया तो वही हमखुर्मा हमसवाब में विधवा–विवाह का आर्यसमाजी जोश के साथ समर्थन किया।

प्रेमचन्द ने लोकप्रियता पाने के लिए 'मानस' उपन्यास में नये रूप में परिकल्पना की जो मुख्य रूप से यूरोपीय उपन्यासों पर आधारित थी।

अपने पहले उपन्यास 'सेवासदन' (1918) में प्रेमचन्द ने वेश्या जीवन से जुड़ी समस्याओं का चित्रण किया है। हिन्दी उर्दू में इसके पूर्व वेश्या जीवन पर कई उपन्यास लिखे जा चुके थे। सेवासदन उपन्यास में स्त्रियों का वेश्यावृत्ति स्वीकार करने का मूल कारण तिलक–दहेज की प्रथा, पति द्वारा पत्नी की उपेक्षा, उसके प्रति अविश्वास और क्रूर व्यवहार तथा समाज की उपेक्षा और सहानुभूति माना गया है।

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों में मध्यवर्ग को प्रमुख विषय के रूप में केन्द्रित नहीं किया गया परन्तु कृष्णचन्द्र, गजाधर, पदम सिंह, मदन सिंह जैसे पात्रों के परिवारों के चित्रण द्वारा प्रेमचन्द ने समकालीन मध्यवर्ग पर प्रकाश डाला है तथा उससे संबंधित समस्याओं जैसे आर्थिक स्थिति, मूल्य संकट, नैतिक दुर्बलता आदि का चित्रण किया है।

सेवासदन उपन्यास के साथ हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक क्रांतिकारी बदलाव आया। सेवासदन से ऐसे उपन्यासों का सूत्रपात हुआ जिनमें घटनाओं का स्थान कार्य व्यापार ले लेते हैं। जब तक सामान्य प्रतीत होनेवाले कार्यव्यापारों को उनके प्रेरक भावों से सम्बन्ध नहीं किया जाता उनमें रोचकता पैदा नहीं होती। भावनाओंसे जुड़ जाने पर कार्य व्यापारों के मूल में निहित भावनाएँ ही पाठक की जिज्ञासा का विषय बन जाती हैं।

शिल्प की दृष्टि से सेवासदन में कोई नवीनता नहीं है परन्तु पूर्ववर्ती उपन्यासों से सेवासदन का एक अन्तर यह है कि किस्सागो अब पहले की तुलना में अप्रत्यक्ष हो गया है। सेवासदन के शिल्प की दूसरी विशेषता यह है कि पाठक पहले की तुलना में पात्रों के मनोजगत में प्रवेश कर जाता है।

भाषा की दृष्टि से प्रेमचन्द के लेखन में नए परिवर्तन आए। 'असरारे मआबिद' उपन्यास उर्दू फारसी गद्य से प्रभावित है। हमखुर्मा और हमसवाब में सहज और स्वाभाविक गद्य लेखन मिलता है। हिन्दी रूपांतर 'प्रेमा' की भाषा देवकीनंदन खत्री की भाषा से मिलती–जुलती है परन्तु 'सेवासदन' उपन्यास में संस्कृत गद्यकाव्य परंपरा देखने को नहीं मिलती।

'सेवासदन' के बाद प्रेमचन्द ने कई उपन्यास लिखे जैसे 'प्रेमाश्रम' (1922), 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1932), 'गोदान' (19236) आदि। इसी समय में उन्होंने अपने उर्दू उपन्यास 'जलवा–ए–ईसार' का 'वरदान' (1921) शीर्षक से अनुवाद और 'प्रतिज्ञा' (1929) शीर्षक से 'प्रेमा' (1907) का रूपांतर हुआ। 'मंगलसूत्र' प्रेमचन्द का अधूरा उपन्यास है जो उनकी मृत्यु के बाद (1948) प्रकाशित हुआ।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत किसानों और ज़मींदारों के संबंधोंका चित्रण किया है। भारत एक विदेशी पूँजीवादी ताकत का उपनिवेश था जिसका लक्ष्य देश का आर्थिक शोषण करना था। अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए ब्रिटिश शासन ने प्रशासन तंत्र, जमींदार वर्ग और साहूकार महाजन समुदाय को अपना सहायक बना रखा था।

पूर्ववर्ती उपन्यासकार ब्रिटिश शासन के सामने नत–मस्तक थे और जो ब्रिटिश शासन की वास्तविक सच्चाई को समझते थे वे उसके आतंक और दमन से डरे हुए थे। वे अपने उपन्यासों में ब्रिटिश शासन के द्वारा होने वाले आर्थिक शोषण, शिक्षा के प्रसार, उद्योग धन्धों और कृषि के विकास, सामाजिक सुधार और स्त्रियों की स्थिति में बदलाव आदि की बातें करते थे परन्तु शासन का विरोध करने की हिम्मत उनमें नहीं थी। प्रेमचन्द ने अपनी उर्दू कहानियों (सोज़े वतन 1908) में राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त किया जिसके कारण उनका (सोज़े वतन) सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। प्रेमचन्द के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति घृणा का भाव था। 'जलवा–ए–ईसार' में उन्होंने देशभक्ति को विषय का केन्द्र बनाया। 'प्रेमाश्रम' और उसके बाद के उपन्यासों में प्रेमचन्द ने देश की पराधीनता के यथार्थ को चित्रित किया है। ब्रिटिश शासन की शोषण नीति से बढ़ती किसानों की निर्धनता, उनकी दयनीय स्थिति तथा अमानवीय परिस्थितियों का चित्रण प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यासों में मिलता है। आर्थिक शोषण का प्रमुख आधार ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाया गया भूमिकर था जिसे निर्दयतापूर्वक वसूला जाता था। जिसके कारण किसान कर्ज में डूबे रहते थे। इसी का यथार्थ चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यास कर्मभूमि, गोदान, कायाकल्प आदि में मिलता है। लगानबंदी आंदोलन स्वतंत्रता संग्राम का महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। किसानों के इस संघर्ष का चित्रण इन उपन्यासों में मिलता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वाधीनता की लड़ाई का खुले रूप में चित्रण नहीं मिलता परन्तु उनकी कुछ कहानियाँ स्वदेशी आन्दोलन, असहयोग, सविनय अवज्ञा आंदोलन, शराबबंदी आंदोलन पर आधारित हैं। रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि उपन्यासों में जो सेवा समितियां हैं उनका उद्देश्य सरकार का तख्ता पलटना नहीं बल्कि सामाजिक सुधार करना और जमींदारों तथा सरकारी कर्मचारियों से अनुनय विनय करते हुए किसानों की दुःख–तकलीफों को दूर करने का प्रयास करना है। प्रेमचन्द ने सरकारी दमन का प्रभावशाली चित्रण किया है। साथ ही उस शिक्षित वर्ग की आलोचना की है जो अपने स्वार्थ के लिए सरकार का समर्थन करता है और जनता का शोषण। कर्मभूमि में अछूतों के मन्दिर प्रवेश और निम्न वर्ग के लोगों के आवास की समस्या को तत्कालीन जनान्दोलन का विषय बनाया है। प्रेमचन्द का सारा उपन्यास साहित्य ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का विरोध करता है। देशी राजाओं, महाजनों, पूँजीपतियों, सरकारी अमलों आदि का विरोध ब्रिटिश शासन का ही विरोध था। किसानों, मज़दूरों, दलितों, स्त्रियों, वेश्याओं, साम्प्रदायिकता की शिकार जनता आदि के प्रति गहरी सहानुभूति भी मुक्ति आंदोलन का ही विस्तार था। कायाकल्प, गबन और कर्मभूमि में कई ऐसे प्रसंग हैं जो स्वतन्त्रता आंदोलन से जुड़े हुए हैं। इस तरह प्रेमचन्द ने सरकारी कोप से बचते हुए आज़ादी की लड़ाई, जो उस समय की सबसे बड़ी और तीखी सच्चाई थी को अपने उपन्यासों में चित्रित किया।

प्रेमचन्द ने समकालीन मध्यवर्गीय समाज जो अन्तर्विरोधों तर्कहीन सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ नैतिक धारणाओं से ग्रस्त था उसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखा और उसका अध्ययन विश्लेषण करके अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम

से प्रस्तुत किया। सेवासदन में प्रेमचन्द ने मध्यवर्ग के जीवन को कथ्य का विषय बनाया और इसका विस्तार रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन आदि में मिलता है। सेवासदन के कृष्णचन्द्र और पद्मसिंह शर्मा, रंगभूमि के ताहिरअली, निर्मला के उद्यभानु लाल और मुंशी तोताराम, गबन के मुँशी दयानाथ और इन्दुभूषण आदि की समस्याएँ मध्यवर्गीय अन्तर्विरोधी समस्याएं चित्रित करती हैं। सेवासदन के कृष्णचन्द्र ईमानदार दरोगा हैं परन्तु बेटी का विवाह करने के लिए उन्हेंअपनी ईमानदारी छोड़नी पड़ती है। रिश्वत लेते हुए वह पकड़े जाते हैं और उनकी समस्याएँ शुरू होती हैं। निर्मला के वकील साहब आय से ज्यादा खर्च करते हैं जिसके फलस्वरूप निर्मला के विवाह की समस्या पैदा होती है और अन्ततः उसका विवाह अधेड़ तोताराम से हो जाता है जो स्वयं भी मध्यवर्गीय नैतिक मूल्यों की असंगतियों से ग्रस्त है। गबन में पूरी समस्या मध्यवर्गीय अन्तर्विरोधों की समस्या है। सेवासदन में पं. उमानाथ की पत्नी द्वारा कृष्णचन्द्र और उनके परिवार की उपेक्षा, रंगभूमि में ताहिर अली के परिवार में उनकी विमाताओं की कपट लीला, कायाकल्प में मुंशी वज्रधर की स्वार्थपन और खुशामद, निर्मला में मुँशी तोताराम का अपने ही पुत्रों के प्रति टुच्चा रवैया और कर्मभूमि में अमरकांत का चारित्रिक ढुलमुलपन मध्यवर्गीय जिंदगी की सच्ची तस्वीरें हैं।

भारतीय जीवन के यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष समाज और परिवार में नारी की स्थिति से जुड़ा है। प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती प्रबुद्ध उपन्यासकारों ने नारी सुधार के प्रति अपनी सहानुभूति जतायी परन्तु नारी संबंधी परंपरागत दृष्टिकोण में किसी क्रान्तिकारी बदलाव के पक्षधर नहीं थे।

प्रेमचन्द के समय में भी नारी की स्थिति चिंताजनक थी। उसे न तो पारिवारिक संपत्ति में कोई हक था और न वह स्वतंत्र रूप से जीविका अर्जित करने में समर्थ थी। शिक्षा से वंचित स्त्री की जगह केवल गृहिणी के रूप में,घर में थी या घर के बाहर वेश्या के कोठे पर। लड़कियों के विवाह में तिलक दहेज जुटाना और उनका विवाह होना भी जरूरी था। विवाह के बाद समाज स्त्रियों के प्रति कठोर रवैया अपना लेता था। सेवासदन और निर्मला में प्रेमचन्द ने इस यथार्थ को मार्मिक रूप में चित्रित किया है। गबन में पति की मृत्यु के बाद रतन की दुर्दशा उस समय में समाज में विधवा की असहाय स्थिति को दर्शाती है। रंगभूमि की अभिजातीय वर्गीय इन्दु की विवशता यह सिद्ध करती है कि स्त्री चाहे जितनी मर्जी संपन्न हो दासता की जंजीरों में जकड़ी हुई थी।

प्रेमचन्द के नारी पात्र सामाजिक स्थिति के प्रति आक्रोशित हैं परन्तु विद्रोह करने की स्थिति में नहीं, कारण है प्रेमचन्द का नारी विषयक पुराने आदर्शों का मोह। सेवासदन की सुमन आरंभ में कितनी तेजवान है जिसके मन में पुरुषों के प्रति विद्रोह भावना है परन्तु अन्त में वह परंपरागत आदर्शों की बलि हो जाती है। सेवासदन की शान्ता, प्रेमाश्रम की श्रद्धा और विद्या, रंगभूमि की इन्दु, निर्मला की निर्मला आदि प्रेमचन्द की आदर्श–नारी की प्रतिमा हैं। प्रेमचन्द नारी की सम्मानपर्वूक स्थिति चाहते थे। उन्होंने विधवा से विवाह करके समाज में विधवा–विवाह का समर्थन किया। गोदान में गोबर तथा सिलिया और मातादीन के विवाह के रूप में उन्होंने विधवा विवाह का ही नहीं अन्तर्जातीय विवाह का भी चित्रण किया है। मातादीन और सिलिया के विवाह में प्रेमचन्द एक सामाजिक क्रांति का आह्वान करते दिखाई देते हैं।

सन् 1930 में गाँधी ने विदेशी वस्तुओं की दुकानों, शराबघरों, सरकारी संस्थानों पर धरना देने का संदेश दिया। जिसमें महिलाओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया और जेल गईं। प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी भी जेल गईं।इसका प्रभाव

प्रेमचन्द के उपन्यासों के नारी पात्रों पर भी दिखाई देता है। गबन की जालपा का चरित्र नारी जागरण को स्पष्ट करता है। कर्मभूमि में सुखदा हरिजनों के 'मंदिर प्रवेश आन्दोलन' का नेतृत्व करती हुई जेल जाती है। सुखदा के अतिरिक्त सकीना, बुढ़िया पठानिन रेणुका देवी, मुन्नी आदि ब्रिटिश सरकार का विरोध करती हुई जेल जाती हैं। नैनाजुलूस का नेतृत्व करती शहीद हो जाती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी के किसी अन्य उपन्यासकार की रचना में भारतीय नारी का ऐसा जागृत रूप नहीं मिलता।

महात्मा गाँधी ने मानवीय संवेदना की दृष्टि से ही नहीं, राजनीतिक व्यवहारिकता के अर्न्तगत भी अछूतोद्धार आंदोलन का आरंभ किया था। उन्होंने अछूतों को 'हरिजन' की संज्ञा देकर, उनके प्रति उच्च वर्ग की मानवीयसहानुभूति जगा कर और आंदोलन छेड़ उनकी सामाजिक स्थिति को बदलने का प्रयास किया। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में हरिजनों के मन्दिर प्रवेश के आन्दोलन का चित्रण कर्मभूमि उपन्यास में हुआ है। इस उपन्यास में अमरकांत हरिजनों के गाँव में बस कर उनके सुधार के लिए प्रयत्न करता है। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप हरिजन शिक्षा का महत्व जानते हुए बच्चों को स्कूल भेजने के साथ, ताड़ी–शराब पीना छोड़ देते हैं। अपने अधिकारों के प्रति भी उनमें जागरुकतापैदा होती है। गोदान के हरिजन तो सिलिया के ब्राह्मण प्रेमी मातादीन का धर्म–भ्रष्ट कर अपनी विद्रोह भावना का साहसपूर्ण परिचय देते हैं।

प्रेमचन्द के समय में एक ज्वलंत यथार्थ साम्प्रदायिक तनाव से जुड़ा हुआ था। अंग्रेज स्वतंत्रता आंदोलन को कमजोर करने के लिए हिन्दू–मुसलमानों में फूट डालने की कोशिश करते रहे। कट्टरपंथी धार्मिक नेताओं और अपना स्वार्थ साधने वाले बुर्जआ वर्ग हिन्दू–मुसलमानों के सांप्रदायिक दंगों से अपना स्वार्थ साधते रहे। इस मिलीभगत के कारण 1925 के बाद भारत के विभिन्न भागों में अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए थे। प्रेमचन्द ने अपने समय की इस सच्चाई का चित्रण अपने उपन्यास कायाकल्प में किया।

प्रेमचन्द साम्प्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे। प्रेमचन्द समाज के जिस वर्ग में भी साम्प्रदायिकता, धार्मिक उन्माद और पाखंड देखते हैं उस पर निर्मम प्रहार करते हैं। इस प्रसंग में वे हिन्दू, मुसलमान या ईसाई किसी के प्रति कोई रियायत नहीं करते। वे अपने लेखों और टिप्पणियों द्वारा उन सभी तत्वों की निन्दा करते हैं जो साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारने की कोशिश करते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्र हिन्दू और मुसलमान होने से पहले मनुष्य होते हैं और संघर्ष को रोकने के लिए अपने आप को कुर्बान कर देते हैं। कायाकल्प का चक्रधर ऐसा ही पात्र है। कायाकल्प का दूसरा पात्र ख्वाजा महमूद अपने हिन्दू मित्र की बेटी के लिए अपने बेटे को माफ नहीं करता। इस प्रकार प्रेमचन्द ने साम्प्रदायिक सच्चाई के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है।

प्रेमचन्द की आलोचना इस बात के लिए की गई है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में आदर्शवादी और बनावटी समाधान प्रस्तुत किए हैं इसका कारण यह है कि उस समय प्रेमचन्द के सामने इसका बेहतर अन्य कोई विकल्प नहीं था। गोदान से पूर्व लिखे गए उपन्यासों में प्रेमचन्द द्वारा प्रस्तुत समस्याओं के समाधान उनके युग के अन्तर्विरोधों की देन है।

प्रेमचन्द का प्रमुख उद्देश्य अपने समय के जीवन को उसकी समस्याओं और संघर्षों के साथ प्रस्तुत करना है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में नाना प्रकार के पात्र हैं जो वास्तविक हैं। प्रेमचन्द के कथा संसार की एक अन्य विशेषता यह है कि उनमें से 'नायक' निरन्तर अपदस्थ होता गया है। रंगभूमि और गोदान इसके उदाहरण हैं। रंगभूमि का पात्र सूरदास अन्धा, अनपढ़, भिखारी और दलित है। वह उपन्यास के नायक की छवि से परे है। होरी जैसा पात्र जन्मना और कर्मणा दोनों दृष्टियों से अति साधारण है। प्रेमचन्द के उपन्यासों से नायक के टूटने या उसे तोड़ने की शुरूआत हुई है।

प्रेमचन्द के उपन्यास चरित्र प्रधान नहीं होते परन्तु गोदान उपन्यास का पात्र होरी यथार्थ की भूमि पर गढ़ा गया है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास में पाठकों को आत्मीय लगने वाले पात्रों को गढ़ा है।

हिन्दी उपन्यास के इतिहास में प्रेमचन्द की शिल्प विषयक उपलब्धि यह है कि उन्होंने अन्य उपन्यासकारों की तरह पाठकों को संबोधित करने की परम्परा को त्यागा है।

प्रेमचन्द ने कथाप्रस्तुति की दृश्यात्मक, परिदृश्यात्मक प्रविधि को अपने उपन्यासों में विशेष रूप से गोदान में शिखर पर पहुँचा दिया है।

हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द के आगमन तक कथानक का सुगठित होना उसकी श्रेष्ठता की कसौटी थी परन्तु प्रेमचन्द ने यह माना कि कथानक मनोरंजन प्रधान कथापुस्तकों के लिए उपयुक्त हो सकता है पर उपन्यास की संरचना के लिए सुगठित कथानक परिहार्य नहीं होता। प्रेमचंद ने सेवासदन उपन्यास में कथानक को ढीला छोड़ दिया। प्रेमाश्रम में भी इसकी झलक देखी जा सकती है पर रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि और गोदान में कथानक को शिथिल करने का प्रयास किया गया। गोदान में ग्राम और नगर कथाएँ एक–दूसरे से संबंधित होने के साथ सामान्तर रूप से अग्रसर होती हैं और प्रेमचन्द ने उन्हें जोड़ने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

प्रेमचन्द की भाषा हिन्दी उपन्यास की भाषिक परंपरा का सहज पर सर्जनात्मक विकास है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के लिए बोलचाल की गद्य शैली का प्रयोग किया है। उर्दू में कहानियाँ और उपन्यास लिखने के अभ्यास ने उन्हें भाषिक सर्जनात्मक की दिशा में अग्रसर कर दिया था। उनकी भाषिक सृजनशीलता की जड़ें आम जनता की सजीव भाषिक परंपरा में ही हैं। इसी कारण उनमें मौलिकता और ताज़गी मिलती है।

प्रेमचन्द अपने कथासंसार को सजीव बनाने के लिए भाषा का प्रयोग बहुत सावधानी से करते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्र आर्थिक–सामाजिक स्थिति अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं। प्रेमचन्द की भाषा में शब्द और अर्थ का सर्वोत्तम सामंजस्य, अर्थों की सांकेतिक संभावनाओं, लक्षणा और व्यंजना की समृद्धि, शैलीय उपकरणोंका सार्थक प्रयोग बिम्ब निर्माण की क्षमता आदि मिलकर एक अद्भुत प्रभाव पैदा करते हैं।

अतः कथ्य वैविध्य, विजन, चरित्रसृष्टि, शिल्प और भाषा सभी दृष्टियों से प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को एक ऐसे शिखर पर पहुँचा दिया जो आज भी एक मंजिल के मानदंड के रूप में मान्य है।

3.3.2 प्रेमचन्द की कहानियाँ

प्रेमचन्द की प्रकाशित कहानियों की संख्या लगभग तीन सौ से ऊपर है। इनमें 292 हिन्दी कहानियों की एक सूची प्रेमचन्द विश्वकोश खंड–2 में है और इसके साथ डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने 228 उर्दू कहानियों की एक सूची दी है।

प्रेमचन्द की लगभग चालीस उर्दू कहानियाँ 1908 से 1915 के बीच प्रकाशित हुईं। इन कहानियों के तीन संकलन– सोज़े वतन (1908), प्रेम प्रवीसी भाग–1 (1914), और भाग–2 (1918) भी प्रकाशित हुए। सोज़े वतन की कहानियों में देशद्रोह का भाव प्रमुख है, विक्रमादित्य का तेगा, रानी सारन्धा, राजा हरदौल, आल्हा, राजहठ, बांका जमीनदार आदि कहानियाँ देशप्रेम के भाव से ओत–प्रोत थीं।

दूसरी कोटि की कहानियों में मध्यवर्गीय संयुक्त परिवारों की परिस्थितियों और समस्याओं, मानव मूल्यों समाज में प्रचलित पूजा अर्चन के पाखंडों, संकीर्णताओं आदि का वर्णन किया है। इन कहानियों में 'ममता', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा', 'अमावस की रात', 'मनावन', 'अन्धेर', 'खून सफेद' आदि उल्लेखनीय हैं। 'सिर्फ एक आवाज' अछूतोद्वार' विषयक कहानी है, जिसमें प्रेमचन्द की दलित संवेदना व्यक्त हुई है। 'शिकारी राजकुमार' में समाज में अत्याचारियों, धार्मिक पाखंडियों और रिश्वतखोर अमलों के प्रति लेखक का आक्रोश व्यक्त हुआ है। यह कहानियाँ अत्याचारी और मार्गभ्रष्ट पात्रों के हृदय–परवर्तन को दर्शाती हैं जो प्रेमचन्द की मानवीय मूल्यों में आस्था का परिचायक है।

दिसंबर, 1915 में प्रेमचन्द की पहली हिन्दी कहानी 'सौत' प्रकाशित हुई। 'सौत' में बदलती हुई परिस्थितियों में संपत्तियों के ईर्ष्या भाव का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द के रचना–काल में 1916–1929 का काल विषय वैविध्य, सामाजिक चेतना मनोवैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि और कहानी कला के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस समयावधि में उन्होंने लगभग 200 कहानियाँ लिखीं जो समकालीन सामाजिक राजनीतिक जीवन के अनेक पक्ष उद्घाटित करती हैं। 1916–1920 के समय में प्रकाशित उनकी कहानियाँ राजनीतिक गतिविधियों से जुड़ी हैं परन्तु राजनीतिक स्वर मन्द है। प्रेमचन्द की अधिकतर कहानियाँ ग्रामीण जीवन के पारिवारिक संबंधों, मूल्यबोध, और आदर्श प्रस्तुत की भावना से ओत–प्रोत हैं। जैसे ईश्वरीय न्याय, सज्जनता का दंड, पंच परमेश्वर, घमंड का पुतला, दो भाई, दुर्गा का मंदिर, बेटी का धन, बूढ़ी काकी आदि। 1921 के बाद की कहानियों में स्वाधीनता आंदोलन का खुलकर प्रयोग हुआ है जैसे अजीब होली, लागहाट, आदर्श–विरोध, त्यागी का प्रेम, लाल फीता, हार की जीत, अधिकार चिंता, चकमा, इस्तीफा, माँ आदि कहानियाँ।

भारतीय नारी की दुर्भाग्यपूर्ण नियति की अभिव्यक्ति सेवासदन उपन्यास में हो चुकी थी। 1923–25 में महिला पत्रिका चांद में उनकी लगभग डेढ़ दर्जन कहानियों में जो प्रमोद शीर्षक संग्रह (1926) में भी प्रकाशित हुई थी। समकालीन नारी की दयनीय स्थिति के सजीव चित्र उपलब्ध होते हैं। परीक्षा, तेंतर, नैराश्य, निर्वासन, उद्धार, स्त्री और पुरुष, नरक का द्वार, एक आँच की कसर, स्वर्ग की देवी, आदि कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में नारी के प्रति प्रेमचन्द की करुणा ही व्यक्त हुई है परन्तु विद्रोह नहीं।

साम्प्रदायिक भेदभाव मुक्त सहजीवन प्रेमचन्द की मूल्य चेतना का अहम् हिस्सा था। नमक का दरोगा, पंच परमेश्वर, दफ्तरी, ताँगेवाले की बढ़ आदि कहानियाँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी मन्त्र, हिंसा परमोधर्म और जिहाद आदि कहानियों में धार्मिक उन्माद के तहत किए जाने वाले धर्म परिवर्तन का चित्रण और विरोध किया गया है।

इस अवधि में प्रेमचन्द ने परिवेश, घटनाओं और किवंदंतियों पर आधारित कुछ कहानियाँ लिखीं जैसे परीक्षा (1923) और शतरंज के खिलाड़ी (1924)। जुगनू की चमक, वफा का खंजर, राज्य भक्त, परीक्षा आदि ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित साधारण कहानियाँ हैं। (1921–29) की अवधि की कहानियाँ समकालीन जीवन पर आधारित हैं जैसे विध्वंस, गुप्त धन, मूठ, लोकमत का सम्मान, गृहदाह, बैर का अन्त, मुक्ति मार्ग, शंखनाद, निमंत्रण, कजाकी, रामलीला मंदिर आदि। मंदिर (1927) और घासवाली (1929) दलितों के शोषण पर आधारित है। कजाकी और सुजान भक्त उच्च कोटि की चरित्र–प्रधान कहानियाँ हैं। 'प्रेम की होली' प्रेम संवेदना की अभिव्यक्ति है।

संवेदना और शिल्प की दृष्टि से 1930–36 के समय में प्रकाशित प्रेमचन्द की कहानियाँ हिन्दी कहानी–साहित्य में विशेष महत्व रखती हैं। कथ्य की दृष्टि से इस काल की कहानियाँ समकालीन जीवन के अनेक पक्षों को उद्घाटित करती हैं। यह वह दौर था जब स्वाधीनता की लड़ाई अपने पूरे जोर पर थी। प्रेमचन्द की जुलूस, पत्नी से पति, समर यात्रा, शराब की दुकान, मैकू, आहुति, कौम का खादिम, कातिल (1930–31 में प्रकाशित) कुत्सा, अनुभव (1932) आदि की कहानियों में देशप्रेम की चेतना के दर्शन होते हैं। पूस की रात (1930) सद्गति (1931) ठाकुर का कुआँ (1932), ईदगाह (1933), नशा, दूध का दाम (1934), कफन (1935), लॉटरी (1935), जुरमाना (1936) आदि तो हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक महत्व की कहानियाँ हैं। इन कहानियों में आदर्श का स्थान यथार्थ ने, विचारों का स्थान संवेदनाओं ने और घटनाओं का स्थान रोजमर्रा के कार्य–व्यापारों ने ले लिया है। समाज में नारी की स्थिति और उसके शोषण, ग्रामीण मध्यवर्गीय समाज, मालिकों के साथ मजदूरों का संघर्ष आदि दो कब्रें, सुभागी, आखिरी हीला, प्रेम का उदय, स्वामिनी, मृतक भोज, नेउर, दो बैलों की कथा, लेखक, सौत, सती, बेटों वाली विधवा, झाँकी, कुसुम, गुल्ली डंडा, कायर, ज्योति, बड़े भाई साहब आदि कहानियों में मिलता है।

3.3.3 प्रेमचन्द का नाटक साहित्य

उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने तीन नाटक भी लिखे हैं। प्रेमचन्द ने लेखन का आरंभ एक नाटक से किया।

प्रेमचन्द का पहला नाटक 'संग्राम' था जो 1923 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद उनके दो और नाटक प्रकाशित हुए – 'कर्बला' (1924) और 'प्रेम की वेदी' (1933)। संग्राम नाटक किसान और जमींदार के संबंधों पर आधारित एक सामान्य कोटि का नाटक है। जमींदार ठाकुर सबल सिंह गाँव के एक किसान हलधर की पत्नी राजेश्वरी को देखकर उस पर आसक्त हो जाता है और उसे हासिल करने के लिए उसके पति हलधर को षडयंत्र के जरिये जेल भिजवा देता है। इस पर राजेश्वरी प्रतिशोध की भावना से भर कर जमींदार को तबाह कर देने का संकल्प लेती है। वह जमींदार का प्रस्ताव मान लेती है और उसके द्वारा उपलब्ध करायी गयी हवेली में रहने लगती है पर यह रहस्य अधिक दिनों तक

गोपनीय नहीं रह पाता। सबल सिंह का छोटा भाई भी राजेश्वरी का आशिक है। इस पर सबल सिंह अपने भाई की हत्या का षड़यंत्र रचता है। उधर हलधर जेल से छूटकर जमींदार और पत्नी से बदला लेने के लिए डाकू बन जाता है। कंचन सिंह अपराध–बोध से अशान्त होकर आत्महत्या कर लेता है। सबल सिंह अपने भाई की मृत्यु का समाचर पाकर आत्महत्या की कोशिश करता है। हलधर दोनों की प्राणरक्षा करता है। सबल सिंह की पत्नी आत्महत्या कर लेती है और सबलसिंह जीवन से उदासीन होकर तीर्थयात्रा के लिए निकल जाता है। हलधर को भी अपनी पत्नी की सच्चरित्रता का प्रमाण मिल जाता है। दोनों साथ रहने लगते हैं। सबलसिंह के तीर्थयात्रा पर चले जाने के बाद जमींदारी प्रथा की समाप्ति और जमीन पर किसानों के आधिपत्य की घोषणा से नाटक की सुखमय समाप्ति होती है।

'प्रेमाश्रम' की तरह ज़मींदारों के हृदय परिवर्तन पर प्रेमचन्द का अगाध विश्वास 'संग्राम' में भी परिलक्षित होता है।

'कर्बला' नाटक इस्लाम के इतिहास की एक क्रूर घटना पर आधारित है। इस नाटक का उद्देश्य भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सद्भाव पैदा करना था। 'कर्बला' के संग्राम में हिन्दू योद्धाओं ने भी हजरत हुसैन के पक्ष में प्राणोत्सर्ग किये थे। 'कर्बला' की भाषा 'सरासर उर्दू' थी जो देवनागरी लिपि में लिखी गई थी।

'प्रेम की वेदी' (1933) के केन्द्रीय कथ्य में प्रेम को संसार के सभी संबंधों से श्रेष्ठ माना गया है। इसकी नायिका मिस जेनी नाटक के अन्त में कहती है – "आज मैं सारे ढकोसलों को इन सारे बनावटी बंधनों को प्रेम की वेदी पर अर्पण करती हूँ। यही ईश्वर का धर्म है। धन का धर्म, विद्या का धर्म, राष्ट्र का धर्म संघर्ष में हो सकता है। खुदा का धर्म भी प्रेम और मैं इसी धर्म को स्वीकार करती हूँ। शेष धोखा है।"

इस नाटक की कथा निम्न मध्यवर्गीय ईसाई परिवार से संबंधित है। माँ और बेटी में विवाह संबंधी मान्याताओं को लेकर गहरा मतभेद है। माँ परंपरागत मान्यताओं की समर्थक है जबकि पुत्री विवाह को पुरुष की गुलामी मानती है। मिस जेनी के माध्यम से प्रेमचन्द ने समाज में उभरती आधुनिक नारी चेतना को वाणी देने की कोशिश की है।

प्रेमचन्द के नाटक उन्हें एक सफल नाटककार के रूप में प्रतष्ठित करने में असफल रहे हैं कारण उनकी प्रतिभा एक कथाकार की प्रतिभा थी। प्रेमचन्द का संबंध रंगमंच के साथ न के बराबर था।

3.3.4 प्रेमचन्द द्वारा रचा गया विविध साहित्य

प्रेमचन्द ने उर्दू पाठकों को ध्यान में रखकर अकबर गेरीबाल्डी, गोपालकृष्ण गोखले, डॉ. सर रामकृष्ण भंडारकर, तैयब जी, मौ. अब्दुल हलीम, शरर, रणजीत सिंह राजा टोडरमल, राजा मान सिंह, राणा जंग बहादुर, राणा प्रताप आदि की छोटी–छोटी जीवनियाँ लिखी थीं जो जमाना के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुई थीं। ये जीवनियाँ 1940 में प्रकाशित कलम, तलवार और त्याग (दो भाग) शीर्षक संग्रह में भी शामिल की गयी थी। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द की महात्मा शेखसादी (1917) और दुर्गादास (1938) शीर्षक जीवनी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई।

प्रेमचन्द की दिलचस्पी बाल साहित्य में थी। प्रेमचन्द का बाल–साहित्य रचना विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ था। गुब्बारे पर चीता, मिट्ठू, शेर और लड़का, साँप की मणि, मगर का शिकार आदि उनकी बाल कथाएँ हैं जो संग्रह के रूप में जंगल की कहानियाँ (1936) में उपलब्ध हैं। 'कुत्ते की कहानी' बालकथा पुस्तक के रूप में 1935 में प्रकाशित हुई थी। प्रेमचन्द ने रामचर्चा नामक पुस्तक जो 1928 में लिखी थी पहले उर्दू में और 1938 मेंहिन्दी में प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द ने मराठी से अनूदित बाल कहानियों का एक संकलन बाल नीति कथा (1925) भी संपादित किया था। बच्चों के लिए कीड़े–मकोड़े (1925) नामक पुस्तक का भी संपादन किया था।

प्रेमचन्द का पत्र साहित्य भी बहुत समृद्ध है। प्रेमचन्द के पत्रों के संकलनकर्ताओं में उनके सुपुत्र अमृतराय और मदन गोपाल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 1962 ई. में अमृतराय ने उनके पत्रों के दो संकलन चिट्ठी पत्री–1 और चिट्ठी पत्री–2 शीर्षक से प्रकाशित किए। चिट्ठी पत्री–1 में प्रेमचन्द के मुख्यतः धनपतराय और गौणतःनवाबराय और प्रेमचन्द के नाम से उर्दू के प्रसिद्ध मासिक पत्र जमाना के संपादक मुंशी दयारामन निगम के नाम लिखे 282 पत्र संगृहीत हैं। ये पत्र 30 जनवरी 1905 से 5 अगस्त 1936 तक की अवधि में लिखे गए थे। चिट्ठी पत्री–2 में पत्रोंकी संख्या 282 है।

यह पत्र जो मुंशी निगम के अतिरिक्त अख्तर हुसैन, उपेन्द्रनाथ अश्क, उषा देवी मिश्रा, जैनेन्द्र कुमार, दशरथ प्रसाद, शिवपूजन सहाय आदि दर्जनों व्यक्तियों को संबोधित थे। प्रेमचन्द के जीवन और व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हैं। प्रेमचन्द की लेखन प्रक्रिया, उनके साहित्यिक विकास, उर्दू से हिन्दी में आगमन, हिन्दी में रचना और प्रकाशन काल के निर्धारण में इन पत्रों की अहम भूमिका है जिसके कारण अमृतराय को 'कलम का सिपाही' के रूप में प्रेमचद की जीवनी लिखने में सफलता मिली।

3.3.5 प्रेमचन्द द्वारा अनूदित साहित्य

मौलिक सर्जनात्मक लेखन के साथ–साथ प्रेमचन्द की अनुवाद में भी सक्रिय रुची थी। उन्होंने तोलस्तोय की कहानियों से प्रभावित होकर उनकी कहानियों का अनुवाद और रूपांतर करना शुरू कर दिया। इनका संकलन 'टालस्टॉय की कहानियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था।

1920 में प्रेमचन्द ने जार्ज इलियट के प्रसिद्ध उपन्यास साइलस मारनर का सुखदास शीर्षक से रूपांतर किया। जो इसी वर्ष प्रकाशित भी हुआ। 1923 में प्रेमचंद का दूसरा अनूदित उपन्यास अहंकार प्रकाशित हुआ जो अनातोले फ्राँस के प्रसिद्ध उपन्यास 'थाया' का रूपांतर था।

1925 में प्रेमचन्द ने पं. रतननाथ सरसार की प्रसिद्ध कृति फसान–ए–आजाद का 'आजाद कथा' शीर्षक से संक्षिप्त रूपांतर प्रस्तुत किया जो दो खंडों में प्रकाशित हुआ। बाद में सरस्वती प्रेस से भी प्रकाशन हुआ।

1919 में प्रेमचन्द ने बेल्जियम के प्रसिद्ध नाटककार मॉरिस मेटरलिंक के नाटक साइटलेस का उर्दू अनुवाद शबेतार शीर्षक से प्रस्तुत किया जो 1919 में जमाना में प्रकाशित हुआ। 1930 में प्रेमचन्द ने जॉन गॉल्सवर्दी के तीन नाटकों, द सिल्वर बॉक्स, स्ट्राइक और जस्टिस के क्रमशः चांदी की डिबिया, हड़ताल और न्याय शीर्षक से अनुवाद किए

जो इसी वर्ष प्रकाशित हुए। मृत्यु से कुछ समय पहले प्रेमचन्द ने बर्नार्ड शॉ के नाटक बैक टु मैथ्युसेलह केप्रथम भाग इन द बिगनिंग का अनुवाद 'सृष्टि का आरंभ' शीर्षक से किया था जो हंस के मार्च–अप्रैल 1937 के अंक में और पुस्तककार 1938 में प्रकाशित हुआ। 1931 में ही प्रेमचन्द ने पं. जवाहरलाल नेहरू की प्रसिद्ध पुस्तक फादर्स लेटर्स टू डॉटर का अनुवाद 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' शीर्षक से प्रस्तुत किया।

3.3.6 प्रेमचन्द का वैचारिक साहित्य

सर्जनात्मक साहित्य के साथ–साथ प्रेमचन्द का वैचारिक साहित्य भी बहुत समृद्ध है। उन्होंने विभिन्न पत्रिकाओं के लिए उर्दू–हिन्दी में दर्जनों लेख लिखे। हंस और जागरण के लिए सैंकड़ों टिप्पणियाँ भी लिखीं जोअमृतराय द्वारा संपादित विविध प्रसंग, खंड–एक, दो और तीन में संकलित हैं।

विषय की दृष्टि से प्रेमचन्द के लेखों और टिप्पणियों को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकताहै – (1) साहित्य विषयक, (2) साहित्येतर विषयक।

साहित्यविषयक लेखों में 'उपन्यास 1–2', उपन्यास का विषय, 'उपन्यास रचना', 'कहानीकला – 1,,2,3', 'कहानी कैसी लिखनी चाहिए', 'भारत का कहानी साहित्य', 'साहित्य का उद्देश्य, साहित्य और मनोविज्ञान', साहित्य की नई प्रवृति, साहित्य की प्रगति, साहित्य में समालोचना, राष्ट्रभाषा हिंदी और उसकी समस्याएँ आदि महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचन्द ने सवा सौ पुस्तकों की समीक्षाएँ लिखीं। इनमें सियाराम शरण कृत अन्तिम अकांक्षा, जय शंकर प्रसाद कृत आँधी, कंकाल, तितली और स्कन्दगुप्त, बेचन शर्मा उग्र कृत शराबी आदि शामिल हैं। इन समीक्षाओं में प्रेमचन्द की समालोचनात्मक प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

साहित्येतर विषयक निबंधों में ज़माना (फ़रवरी 1919) में प्रकाशित उर्दू लेख दौरे–जदीदो कदीम' औरहंस के सितंबर 1936 में प्रकाशित 'महाजनी सभ्यता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन निबन्धों में समाज और दुनियाके बारे में प्रेमचन्द का प्रगतिशील और वैज्ञानिक दृष्टिकोण बहुत शक्त और तल्ख रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

प्रेमचन्द की साहित्येतर विषयक टिप्पणियों में विषय वैविध्य देखने को मिलता है। इन टिप्पणियों में ब्रिटेन की राजनीति, भारत में ब्रिटिश शासन, अंग्रेजी भाषा, सभ्यता और संस्कृति, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति, निशस्त्रीकरण, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र पूंजीवाद, प्रांतीयता, रंगभेद, अछूत समस्या, आतंकवाद,, न्याय व्यवस्था आदि विषयों पर प्रेमचन्द के विचार दर्शनीय हैं।

3.3.7 पत्रकारिता और प्रेमचन्द

हिन्दी पत्रकारिता को भी प्रेमचन्द की महत्वपूर्ण देन है। मार्च 1930 में उन्होंने हंस नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन–प्रकाशन आरंभ किया। इसका नामकरण हिन्दी के महान कवि जयशंकर प्रसाद ने किया था।

हंस में प्रेमचन्द की लगभग तीन दर्जन कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। प्रेमचन्द हंसवाणी से सम्पादकीय लिखते थे जिनकी संख्या लगभग 237 है। हंस में प्रेमचन्द के 16 लेख तथा नीर–क्षीर के अर्न्तगत लगभग सवा–सौ पुस्तकों की

समीक्षा की गई। 'हंस' के तीन महत्त्वपूर्ण विशेषांक 'स्वदेशांक' 'अभिनन्दनांक' और 'काशी अंक' थे जो क्रमशः अक्तूबर–नवंबर 1932, अप्रैल 1933 और अक्तूबर–नवंबर 1933 में प्रकाशित हुए थे।

हंस से अंग्रेजी सरकार ने दो बार 1932 और 1936 में जमानत माँगी थी। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से 'हंस' भारतीय साहित्य का मुखपत्र बनाया गया। मुंशी प्रेमचन्द और कन्हैयालाल मुँशी दोनों हंस के संपादक बने। भारतीय साहित्य के मुखपत्र के रूप में 'हंस' का पहला अंक अक्तूबर 1935 में निकला। जून 1936 के अंक में सेठ गोविंददास के एक नाटक के प्रकाशित होने पर सरकार ने पुनः 'हंस' से जमानत मांग ली , पर गाँधी जी ने जमानत देने से अस्वीकार कर दिया पर प्रेमचन्द ने जमानत दे दी और हंस का प्रकाशन जारी रहा। अक्तूबर 1936 में प्रेमचन्द का निधन हो जाने पर हंस शिवरानी देवी के संपादकत्व में निकलता रहा। जिसका प्रकाशन 1937 में मई अंक 'प्रेमचन्द स्मृति अंक' के रूप में हुआ। इसके संपादक बाबू विष्णु राव पराडकर थे। बाद में 'हंस' श्रीपत राय और अमृतराय के संपादन में भी निकला।

प्रेमचन्द ने 'जागरण' साप्ताहिक का भी संपादन प्रकाशन किया था। प्रेमचन्द के संपादकत्व में जागरण का पहला अंक 22 अगस्त 1932 को निकला और 28 मई 1934 तक लगातार प्रकाशित होता रहा। 4 जून 1934 को संपूर्णानन्द ने जागरण का संपादकत्व संभाला और 13 अंकों तक उसका संपादन किया। उसके बाद जागरण बन्द हो गया।

प्रेमचन्द हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रेमचन्द जैसी कथ्य की गहरी संवेदना उनके बाद के उपन्यासकारों में नहीं दिखाई देती है। कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द अप्रतिस्पर्धेय मोनजा सकते हैं।

सर्जनात्मक साहित्य के साथ–साथ वैचारिक साहित्य की रचना कर प्रेमचन्द ने अपनी प्रखर चिंतन की क्षमता प्रदर्शित की है। उनके साहित्य विषयक निबंध मौलिक चिन्तन का प्रमाण हैं। उन्होंने अपने लेखों, संपादकीय टिप्पणियों में अन्तरर्राष्ट्रीय राजनीति, समाज व्यवस्था , राष्ट्रीय समस्याओं, नारी जागरण द्वारा गंभीर चिंतनयुक्त विचार व्यक्त किए हैं।

प्रेमचन्द का पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। हंस और जागरण जैसी पत्रिकाओं के संपादन–प्रकाशन के साथ साहित्यिक और राजनीतिक पत्रकारिता का स्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है।

3.4 सारांश

प्रेमचन्द का आधुनिक साहित्यकारों में बड़ा ही सम्मानपूर्ण स्थान है और वे हिन्दी के महान एवं कालजयी साहित्यकार हैं। उनके साहित्य–चिन्तन में मौलिकता और आधुनिकता दोनों हैं। वे भारत के परंपरागत चिन्तनऔर पश्चिम के साहित्य–सिद्वांतों, दोनों को आत्मसात् करते हैं और अपने युगानुरूप एक नया साहित्यदर्शन देते हैं। प्रेमचन्द के साहित्य के गंभीर अवगाहन और विवेचन के समय इस साहित्य–चिंतन को दृष्टि–पथ में रखना आवश्यक है। इससे

हम सिद्धांत एवं रचना के संबंध को समझ सकेंगे तथा यह भी कि प्रेमचन्द अपने समकालीनों से कैसे भिन्न और विशिष्ट थे।

3.5 कठिन शब्द

1. रूपांतरण
2. नैतिक दुर्बलता
3. किस्सागों
4. औपनिवेशक
5. लगानबंदी
6. अभिजातीय
7. हरिजन
8. कट्टरपंथी
9. निर्मम
10. अवगाहन

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य का विश्लेषण करें।

प्रश्न. प्रेमचन्द की कहानियों में समाज का कैसा चित्रण हुआ है।

प्रश्न. प्रेमचन्द के नाट्य–साहित्य पर चर्चा कीजिए।

प्रश्न. प्रेमचन्द के विविध साहित्य पर दृष्टिपात कीजिए।

प्रश्न. प्रेमचन्द के अनूदित एवं वैचारिक साहित्य का विश्लेषण कीजिए।

प्रश्न. पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द की भूमिका स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3.7 पठनीय पुस्तकें

1 प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृत्तित्व – हंसराज 'रहबर'

2 प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास–कला – डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय

3 प्रेमचन्द – सं० सत्येंद्र

4 कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रजा

—— 0 ——

प्रेमचन्द युगीन परिस्थितियाँ

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 प्रेमचन्द युगीन परिस्थितियाँ

4.3.1 सामाजिक परिस्थितियाँ

4.3.2 आर्थिक परिस्थितियाँ

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्द

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप समझ सकेंगे –

– प्रेमचन्द युगीन सामाजिक परिस्थितयाँ कैसी थी।

– प्रेमचन्द युग में धार्मिक कुरीतियों का बोलबाला था।

– किसान की पीड़ा एवं दुर्दशा को जान पाएँगे।

– नारी जीवन विभिन्न कुरीतियों से ग्रस्त था।

4.2 प्रस्तावना

किसी भी युग के साहित्य का सम्यक् अध्ययन युग परिस्थितियों के परिपार्श्व में ही किया जा सकता है। युग परिस्थितियाँ ही साहित्यकार को उत्पन्न करती हैं, उसका निर्माण करती हैं और उसे साहित्य सृजन के लिए प्रेरित करती हैं। यही कारण है कि अपने युग के प्रति तटस्थ रहने का दंभ करने वाले कलाकार की कृतियों में भी विभिन्न रूपों में युग की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है। व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त अपने युग की परिस्थितियों से भी साहित्यकार प्रेरित एवं प्रभावित होता है। उसका भाव–बोध युगीन परिस्थितियों से ही विकसित होता है। प्रेमचन्द के निर्माण में उनके युग का अत्याधिक योग है। तभी तो उन्होंने कहा है "साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है और उसकी विशाल आत्मा अपने देश–बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।"

4.3 प्रेमचन्द युगीन परिस्थितियाँ

4.3.1 सामाजिक परिस्थितियाँ

इस युग में अंग्रेज़ी शासन अपनी समस्त कूटनीतियों से सशस्त्र हो दृढ़ हो चुका था। भारतीय परतंत्रता की चक्की में पिस रहे थे। भारतीय जीवन पर दोहरा आघात हो रहा था। एक ओर तो अपनी ही मूढ़ता, चारित्रिक दुर्बलता, अशिक्षा तथा गली–सड़ी सामाजिक परम्पराओं और बुराइयों में फँसी भारतीय जनता दीन–हीन अवस्था को प्राप्त हो गई थी, दूसरी ओर ब्रिटिश राज्य तथा अन्य शोषक–शक्तियाँ मगरमच्छ की तरह उसे निगल रही थीं। हमारे समाज–सुधारकों तथा राजनैतिक नेताओं को भी इसलिए दो मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ रहा था। एक था सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध और दूसरा विदेशी शासन के विरूद्ध। राजा राममोहनराय, केशवचन्द्रसेन, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, ऐनी बेसेंट आदि ने 'ब्रह्म समाज,' 'आर्य समाज', रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफिक्ल सोसाईटी आदि संस्थाओं की स्थापना करके समाज सुधार के आन्दोलन समूचे भारत में चला दिये थे। राजनीति के क्षेत्र में भी सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, तिलक, गोखले और गाँधीजी के सत्प्रयत्नों से ब्रिटिश राज्य के विरूद्ध व्यवस्थित मोर्चा तैयार हो गया था। देश के राजनीतिक संघर्ष की बागडोर गांधीजी के हाथों आने पर सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, स्वेदशी आन्दोलन नमक आन्दोलन, आदि कितने ही संघर्ष समय–समय पर चले। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में गांधीयुग का साथ पूरी ईमानदारी से दिया है। असहयोग के स्वर से मुखरित इस युग में 'प्रेमाश्रम' की रचना हुई। इसे हम युग जन्य प्रभाव ही कहेंगे कि सेवासदनकार की तुलना में प्रेमाश्रमकार के विचारों में सामाजिक यथार्थ की भावना अधिक प्रखर एवं सजग है। गांधी के असहयोग–आंदोलन की सबसे बड़ी देन यह थी कि उसने भारत की कोटि–कोटि जनता को अपने विदेशी शासकों के सम्मुख कमर सीधी करके खड़े होने का साहस और निर्भयता प्रदान की। प्रेमाश्रम' के किसानों में हम इसी साहस और निर्भयता का संचार देखते हैं।

इस युग में देश की विचारधारा में हो रहे क्रान्तिकारी परिवर्तनों से प्रेमचन्द अछूते नहीं रह सके। हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद आंदोलन के प्रेमचन्द जन्मदाता थे।

देश की 90 प्रतिशत जनता गाँव में रहती थी और हमारा ग्राम–समाज अत्यन्त शोचनीय दशा को प्राप्त हो चुका था। गाँव में परम्परागत सामाजिक व्यवस्थाएँ–वर्ण व्यवस्था, कठोर सामाजिक नियम, धार्मिक अन्ध–विश्वास और रूढ़ियाँ, पंचायती बन्धन आदि थे। व्यक्ति इन सामाजिक संस्थाओं में बंधा हुआ था। व्यक्ति को इसके कड़े नियमों और शासन में घुटना पड़ता था।

(Socio-religious) जागृति की दृष्टि से भी प्रेमचन्द का युग उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना राजनीतिक क्रांति और सामाजिक उथल–पुथल की दृष्टि से । भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का आरम्भ वस्तुतः विभिन्न सामाजिक–धार्मिक आंदोलनों के माध्यम से ही हुआ था। शताब्दियों की राजनीतिक दासता के कारण– जो क्रमशः मानसिक जड़ता और बौद्धिक निष्क्रियता में परिणत होती जा रही थी – भारत विभिन्न सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक अंधविश्वासों के जाल में फँसकर अपना लक्ष्य एवं मार्ग खो बैठा था। नवीन विचारों को ग्रहण करने तथा समय की आवश्यकताओं के अनुसार अपने सामाजिक जीवन को ढालने का वह सद्साहस, जिसके अभाव में कोई भी जाति या राष्ट्र अपने अस्तित्व को कायम नहीं रख सकता, भारतीय समाज–विशेषतः हिन्दू समाज–से पूर्णतः विलुप्त हो गया था। उसमें अब वह ग्रहणशीलता (Receptivity) नहीं रही जो कभी भारतीयों की अपनी विशेषता थी। हिन्दुस्तानी समाज के दो अंग सामाजिक अन्याय के सर्वाधिक शिकार रहे हैं– स्त्रियाँ और अछूत।

शताब्दियों के अन्याय, अत्याचार और अशिक्षा के कारण भारतीय नारी चारों ओर से उपेक्षित, तिरस्कृत और अभिशप्त जीवन व्यतीत करने पर विवश हो गई थी। बाल–विवाह, अनमेल–विवाह, बहु विवाह, दहेज, पर्दा, सती, विधवा आदि समस्याओं और कुरीतियों ने उसके व्यक्तित्व–विकास के सभी मार्गों को अवरूद्ध किया हुआ था। समाज में स्त्री की सिर्फ जिन्सी उपयोगिता रह गई थी। घर की चारदीवारी में बंद उसके जीवन का केवल एक ही उद्देश्य रह गया था–पुरुष के लिए बच्चे पैदा करना और उनकी देखभाल करना! उसका न पिता के परिवार में कोई हक़ था और न पति के परिवार में। इस प्रकार सामाजिक–व्यवस्था ने स्त्री को समाज का एक उपयोगी अँग बनने के अपने जायज़ अधिकार से वंचित किया हुआ था।

उधर छुआछूत और जाति–पाति का घातक विष राष्ट्र को सतत् हासोन्मुख बना रहा था। दूसरी ओर मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, पशुबलि, भूत–प्रेतादि की मान्यता तथा श्राद्ध आदि धार्मिक अँधविश्वास देश की प्रगति के रास्ते के रोड़े बने हुए थे। तीसरी ओर मादक पदार्थों का सेवन और अशिक्षा के क्षयी कीटाणु उसे पतन के गहन गर्त की ओर खींच रहे थे।

इन विभिन्न प्रकार के सामाजिक अन्यायों और धार्मिक संकीर्णताओं से जर्जरित हिन्दू समाज एक लम्बे अर्से से सामाजिक–धार्मिक सुधार की आवश्यकता अनुभव कर रहा था। ऐसे समय में आधुनिक भारत में सामाजिक जागृति के अग्रदूत और धार्मिक क्रांति के प्रथम नायक राजा राममोहनराय का आर्विभाव हुआ। प्रेमचन्द के जन्म से ठीक 108

वर्ष पूर्व सन् 1772 में राजा राममोहनराय का जन्म हुआ था। भारतीय समाज में एक सर्वांगणि सामाजिक क्रांति ही उनकी अभीष्ट थी। अपने इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए राजा राममोहनराय ने सबसे पहले भारतवासियों के संकीर्ण आचार–विचारों में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्होंने 1828 में ब्रह्मसमाज की स्थापना की। ब्रह्मसमाज ने जाति–प्रथा को अप्रजातंत्रीय, अमानवीय तथा अराष्ट्रीय मानकर उसके विरूद्ध एक प्रबल आंदोलन का सूत्रपात किया। भारतीय स्त्री के उद्धार के लिए जितना काम अकेले राजा राममोहनराय ने किया, उतना संभवतः आधुनिक युग में किसी भी अन्य समाज–सुधारक ने नहीं किया होगा। वे विधवा–विवाह और स्त्री के समानाधिकारों के प्रबल समर्थक थे। सती–प्रथा जैसी जघन्य एवं अमानवीय प्रथा को समाप्त कराने का उन्होंने ही बीड़ा उठाया था। इसके इलावा वे बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, पशुबलि आदि के भी कट्टर विरोधी थे।

यों तो उपर्युक्त सभी आंदोलन मूलतः भारतीय एवं राष्ट्रीय थे, लेकिन उनका कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत बहुत सीमित था। ये आंदोलन कुछ अंग्रेज़ी पढ़े–लिखे लोगों तक ही सीमित रहे, आम जनता तक नहीं पहुँच सके। इसके विपरीत उत्तर–पश्चिमी भारत में स्वामी दयानन्द द्वारा प्रवर्त्तित आर्य समाज के आंदोलन ने पूरे हिन्दू समाज को प्रभावित करने का प्रयास किया। अपने समय की एक प्रगतिशील संस्था होते हुए भी आर्य समाज सही अर्थों में राष्ट्रीय संस्था नहीं बन सकी, केवल एक हिन्दू संस्था बन कर रह गई। प्रेमचन्द के जन्म से पूरे 5 वर्ष पूर्व सन् 1875 में बंबई में आर्य समाज का जन्म हुआ, यद्यपि अंतिम रूप से उसके स्वरूप, सिद्धान्त और विधान का निर्धारण दो वर्ष पश्चात् लाहौर में हुआ। यह उल्लेखनीय है कि इसी वर्ष (सन् 1875) सर सैयद अहमद खाँ के प्रयत्नों से अलीगढ़ में मुस्लिम एंग्लो–ओरियन्टल कॉलेज (Muslim Anglo Oriental College) की स्थापना हुई थी। आर्य समाज में आरंभ से ही राष्ट्रभक्ति–राष्ट्र का अर्थ इस सन्दर्भ में हिन्दू राष्ट्र ही है– की उत्कर भावना और भारत की प्राचीन वैदिक सभ्यता के प्रति प्रबल आग्रह था। यद्यपि आर्य समाज ने हिन्दू धर्म एवं समाज में प्रचलित अनेक अंधविश्वासों, कुरीतियों, संकीर्णताओं और पूजा की अर्थहीन प्रणालियों का डटकर विरोध किया; पर वेदों को सभी विद्याओं, कलाओं तथा समस्त ज्ञान–अतीत, वर्तमान और भविष्य–का भण्डार मानने के कारण उसका दृष्टिकोण मूलतः पुनरुत्थानवादी, संकीर्ण एवं रूढ़िवादी ही बना रहा। जाति–प्रथा और ऊँच–नीच की भावना का तीव्र विरोधी होकर भी आर्य समाज ने वेद प्रतिपादित चार वर्णों को यथावत् कायम रखने का प्रयास किया। पुरुष और नारी की समानता का हामी होते हुए भी उसने सह–शिक्षा का घोर विरोध किया। आर्य समाज की संभवतः सबसे बड़ी देन यह है कि उसने हिन्दू धर्म को ब्राह्मणों के चुंगल से छुटकारा दिलाया। विधवा–विवाह को लोकप्रिय बनाने तथा विधवाओं की दयनीय अवस्था में सुधार करने की दिशा में भी उसने बहुत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कार्य किया। बाल–विवाह और वृद्ध–विवाह की निन्दनीय प्रथाओं के विरूद्ध प्रबल लोकमत उत्पन्न करके उसने हिन्दू–विवाह को एक स्वस्थ एवं बुद्धि–सम्मत (Rational) आधार प्रदान करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया। आधुनिक भारत के निर्माण में आर्य समाज के इस प्रगतिशील रोल के प्रेमचन्द बहुत बड़े प्रशंसक थे। उनके 'प्रतिज्ञा' आदि उपन्यासों में आर्य समाज के विभिन्न समाज–सुधार आंदोलनों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। सन् 1905 में प्रेमचन्द ने स्वयं एक बाल–विधवा से पुनर्विवाह किया था।

4.3.2 आर्थिक परिस्थितियाँ :

भारत में ब्रिटिश शासन का इतिहास आद्यांत आर्थिक शोषन की क्रूर एवं हृदय–द्रावक करूण–कथा है। दो शताब्दियों के अपने शासन काल में अंग्रेज़ों ने भारत को एक ऐसी ग़रीबी और तबाही दी है जिसकी तुलना संसार के किसी मुल्क से नहीं की जा सकती। अंग्रेज़ों ने देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खोखली कर दी थी। अंग्रेजीशासन की भूमि–व्यवस्था के कारण भूमि पर व्यक्ति का स्वाधिकार हुआ। भूमि को बेचने, बेदखल करने आदि के नियम लागू हुए जिनसे पिसा किसान विवशता के कारण बेदखली, नीलाम, विक्रय आदि की ठोकरें खाता हुआ भूमिहीन बनता जा रहा था।

पूँजीवादी अंग्रेज़ों ने भारत के प्राचीन उद्योग–धन्धों को नष्ट कर दिया था। गाँवों में कुटीर–उद्योगोंके अभाव से ज़मीन पर अत्याधिक भार बढ़ता जा रहा था। भूमि छोटे–छोटे टुकड़ों में बंटने लगी थी। सम्मिलित परिवार–प्रथा छिन्न–भिन्न हो रही थी। ग्राम–जीवन का आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर बहुत निम्न हो गया था। कृषि परम्परागत पुराने तरीकों से ही होती थी। किसान बेचारा अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोपों का भी शिकार रहता था। उपज कुछ होती न थी, उधर लगान–वसूली के नियम कड़े थे। पहले तो फसल का कुछ अंश ही लगान के रूप में लिया जाता था, परअब अंग्रेज़ी पद्धति में लगान नकदी के रूप में अनिवार्य हो गया। फसल चाहे हो या न हो, लगान अवश्य सिर पड़ता था। लगान की वसूली निर्दयता से होती थी, और उसमें बेईमानी होती थी सो अलग। ज़मीदार के कारिन्दे भी मनमानी करते थे।

कृषि की उन्नति बिल्कुल रूकी हुई थी। न तो सरकार और न ज़मींदार कोई भी कृषि के नए वैज्ञानिक ढंग को प्रोत्साहन नहीं दे रहा था। पुरानी सामन्तवादी पद्धति टूट रही थी। पूँजीवाद का विकास हो रहा था। ब्रिटिश पुलिस–पद्धति और नौकरशाही का बोलबाला था। ज़मींदार की हालत भी बिगड़ती जा रही थी। उनके अधीन किसान का तो बुरा हाल था ही। हमारे गाँवों में अशिक्षा और ग़रीबी का अंधेरा पर्दा छाया हुआ था। भूमि–हीन किसानों की तो अत्यन्त दरिद्र अवस्था थी। थोड़ी भूमि वाले किसान भी ज़मींदार, उसके कारिन्दे, पटवारी, साहूकार आदि के पंजे में फंसे हुए थे। पुश्त–दर–पुश्त ऋण के भार से किसान की कमर टूटती जा रही थी। गाँवों में महाजनी पूँजीवाद प्रचलित था। यह महाजनी शोषण कई प्रकार का था। गाँव का छोटा महाजन किसान को भारी सूद पर रुपया देता था। मूल बढ़ता ही जाता था। शहर के बड़े महाजन का एजेण्ट भी गाँवों में दखल रखता था। यही नहीं, गाँव में जिस–किसी के पास चार पैसे हुए, वही महाजन बनने लगा था। सूद का खून मुँह लग गया था। पूँजीवादी सभ्यता के विकास से बड़े–बड़े मिल, कल–कारखाने, बैंक आदि कम्पनियाँ स्थापित हो रही थीं। पूँजीवादी अड्डे भी किसान के लिए अहितकर ही सिद्ध हो रहे थे। बड़े–बड़े उद्योगों और मण्डियों में किसान की उपज सस्ते दामों में ही प्राप्त की जाती थीऔर पूँजीपति अपने उद्योगों तथा व्यापार में बहुत नफा बना रहे थे। ऋण–भार के कारण बेचारे किसान की फसल प्रायः खलिहानो में ही उठ जाती थी। सारा साल उसे पेट–भर खाने को भोजन भी नसीब नहीं होता था। उसे फिर ज़मींदार या साहूकार की शरण में ही जाना पड़ता था।

सामाजिक और राजनैतिक चेतना का गाँवों में अभाव ही था फिर भी किसान का बेटा कुछ समझने–गुनने लगा

था। वह युग की नई आवाज़ को सुनने लगा था। उसके मन में विरोध की प्रबलता बढ़ने लगी थी। विषमता के ज्ञान और उसकी चुभन से वह तिलमिलाने लगा था। पुरानी पीढ़ी का किसान तो भाग्यवादी और अन्धविश्वासी ही था, पर युवक में संघर्ष की आकांक्षाएँ उभरने लगी थीं। होरी और गोबर की ये दो सीमाएँ स्पष्ट थीं।

साम्राज्यवाद की छत्रछाया में पूँजीवाद विकसित हुआ। पुराने सामन्तों का ह्रास हुआ। उनके विशेष अधिकार समाप्त हो गए। वे भी अब ब्रिटिश राज्य के अधीन थे। अन्दर से वे खोखले होते जा रहे थे, पर बाहर से अपनी वही शान रखना चाहते थे किन्तु दम टूट रहा था। ऐसे ह्रासोन्मुख सामन्तवाद का खोखलापन प्रेमचन्द ने 'गोदान' में बहुत अच्छी तरह दिखाया है। रायसाहब इसका उदाहरण हैं।

पूँजीवाद के विकास और उद्योगपतियों के नगरों में एकत्रित होने तथा ब्रिटिश नौकरशाही ने मध्यवर्ग उत्पन्न किया। इसमें साधारण व्यवसायी, दुकानदार, वेतनभोगी कर्मचारी, अन्य छोटे–छोटे उत्पादक आदि हैं। नगरों में इस वर्ग का जीवन अत्यन्त कृत्रिम होने लगा था। झूठी शान, झूठी मर्यादा और आय से अधिक व्यय ने भी इस वर्ग की कमर तोड़ दी थी। यह वर्ग भौतिक–बौद्धिक स्वार्थी बन गया था। बड़े–बड़े मिलों में मज़दूर बढ़ने लगे। बेदखल हुआ या ऋण से ग्रस्त भूमिहीन किसान गाँव छोड़कर नगर में आराम महसूस करने लगा था। नगरों में मध्यवर्ग के अतिरिक्त मिल–मालिक या पूँजीपति और मज़दूर ये दो विषम वर्ग और उत्पन्न हो गए। वर्ग–संघर्ष अपना खेल खेलने लगा। टूटा हुआ जमींदार या तो सरकारी पिट्ठू बन गया था या भेस बदलकर वह ढोल का पोल बना किसानों का ख़ैरख़्वाह और नेशनलिस्ट बनने का दम्भ रचने लगा था।

प्रेमचन्द ने जिस वैज्ञानिक यथार्थवादी सूक्ष्मता से साम्राज्य की इस चाल को पहचाना और उसका चित्रण किया है वह आज भी हिन्दी के लेखकों में दुलर्भ है। किसान एक ओर जमींदार और उसके कारिन्दों के अत्याचारों का शिकार था तो दूसरी ओर महाजनों और पुलिस अधिकारियों के शोषण का उस पर लगान का बोझा इस कदर बढ़ गया था कि फसल का बहुतांश उसी में चला जाता था। श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में किसानों के इस चौमुखी शोषण का बहुत ही मार्मिक और यथार्थ वर्णन किया है। प्रेमचन्दभारतीय किसान की इस दुर्दशा से अच्छी तरह परिचित थे। अपने आरम्भिक उपन्यास 'वरदान' से लेकर उपन्यास 'गोदान' तक प्रेमचन्द अनेक पंजों वाले इस क्रूर शोषण–रूपी दानव (Octopus) के चंगुल में पिस रहे किसान को नहीं भूल सके थे। सच तो यह है कि यही उनके साहित्य का सर्वप्रमुख 'उद्देश्य' रहा है और इसे ही हम उनके साहित्य की धुरी कह सकते हैं। उपन्यास तथा कहानियों के अतिरिक्त 'हंस' की संपादकीय टिप्पणियों और लेखों द्वारा भी प्रेमचन्द नेकिसानों के इस चतुर्मुखी शोषण के विरुद्ध अपने आक्रोश को व्यक्त किया है। प्रेमचन्द के इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि वे किसानों के प्रति कांग्रेसी नेताओं की कृत्रिम सहानुभूति के रहस्य से अच्छी तरह परिचित थे। प्रेमचन्द के किसान दीन–हीन, निरीह और बेज़बान किसान नहीं हैं। वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिए संघर्षरत भी। यही प्रेमचन्द के किसान चित्रण की विशेषता है और यही प्रेमचन्द की महत्ता।

प्रेमचन्द युग, संक्षेप में कहना हो तो सामन्तवाद के पूंजीवाद में बदलने का युग है। इस परिवर्तन के

कारण स्वभावतः भारतीय समाज में कई नवीन सामाजिक–आर्थिक वर्गों का विकास हुआ। इनमें सबसे प्रमुख मध्यवर्ग है। प्रेमचन्द इस वर्ग की दुर्बलताओं, विडम्बनाओं और कुरीतियों से भली–भाँति परिचित थे। यही कारण है कि प्रेमचन्द किसान पात्रों के पश्चात् इसी वर्ग के चरित्रांकन में सर्वाधिक सफल हुए हैं। 'प्रतिज्ञा' 'सेवा सदन' निर्मला, ग़बन आदि उपन्यासों में लेखक ने इन्हीं समस्याओं को उठाया है। अतः कहा जा सकता है कि 'प्रेमचन्द का युग राजनीतिक हलचल का युग ही नहीं था अपितु आर्थिक हलचलों और संघर्षों का भी एक जीता जागता दर्पण है। जीवन्त इतिहास है।

4.4 सारांश

प्रेमचन्द के समय में गांधीवाद देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में लगा था। प्रेमचन्द ने गांधीवादी विचारधारा को पूरी तरह अपनाया। देश के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए तो प्रेमचन्द गांधीवाद को पूर्ण सफल सिद्धान्त मानते थे। किन्तु देश की आर्थिक समस्या का हल उन्हें गांधीवाद की अपेक्षा साम्यवाद में अधिक आशाजनक दिखाई दिया। इसी से उन्होंने साम्यवाद का पूरे उत्साह से स्वागत किया। प्रेमचन्द ने अपने युग की परिस्थितियों का सही अध्ययन, मनन और चिन्तन करके अपनी एक प्रगतिशील विचार धारा बनाई। समाज में प्रचलित वर्ण–व्यवस्था, छुआछूत पर अत्याचार, वैधव्य का चीत्कार, वेश्या का वीभत्स विलास, बाल–विवाह, बेमेल विवाह, दहेज प्रथा, दहेज की कुप्रथा, धार्मिक संकुचितता, साम्प्रदायिकता, धर्म का ढकोसल और पाखण्ड, अंधविश्वास तथा अन्य बुराइयों और कुप्रथाओं के प्रति असंतोष और विद्रोह की भावना प्रेमचन्द की रचनाओं में स्थान–स्थान पर पाई जाती हैं।

4.5 कठिन शब्द

1. परिपार्श्व
2. प्रतिच्छाया
3. सत्यप्रयत्न
4. अभिशप्त
5. हासोन्मुख
6. गर्त
7. जर्जरित
8. अभीष्ट
9. जघन्य
10. द्रावक

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :

प्रश्न. प्रेमचन्द युगीन सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालें।

प्रश्न. प्रेमचन्द युगीन राजनैतिक परिस्थितियाँ कैसी थी ? स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न. प्रेमचन्द युगीन आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालें।

प्रश्न. प्रेमचन्द युग के नारी जीवन पर प्रकाश डालें।

4.7 पठनीय पुस्तकें

1 प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृत्तित्व – हंसराज 'रहबर'

2 प्रेमचन्द – सं० सत्येंद्र

3 प्रेमचन्द और उनका युग – डॉ० राम विलास शर्मा

—— 0 ——

'सेवासदन' उपन्यास का कथानक

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 'सेवासदन' उपन्यास का कथानक

5.4 उपन्यास की समीक्षा

5.5 कथानक की विशेषताएँ

5.6 कठिन शब्द

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.8 पठनीय पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

इस आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे :–

– 'सेवासदन' प्रेमचन्द का पहला हिन्दी उपन्यास है और जिस युग–परिवर्तन का उल्लेख लेखक ने किया है उसका आरम्भ इससे हो गया।

– यह एक सामाजिक उपन्यास है।

– उपन्यास समाज की समस्याओं एवं कुरीतियों को उद्‌घाटित करता है।

– नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं को लेकर उपन्यास की रचना हुई है।

5.2 प्रस्तावना

यह एक सामाजिक उपन्यास है और स्त्री की दीन समस्या को लेकर लिखा गया यह उपन्यास मध्यवर्ग की आर्थिक कठिनाइयों और सामाजिक बन्धनों पर प्रकाश डालता है जिसमें ऊँचे और 'सभ्य वर्ग' आत्म विडम्बना, ढोंग और बगुला भक्ति की अच्छी कलई खोली गई है। प्रेमचन्द जब यह उपन्यास लिख रहे थे उस समय पाठकों को उपन्यास में रूचि पैदा हो रही थी। देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी आदि लेखकों ने हिन्दी पाठकों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया था जो तिलिस्मी दास्तानें नहीं, यथार्थ वर्णन करने वाली कहानियाँ पढ़ने के लिए उत्सुक था। ऐसे समय 'सेवासदन' प्रेमचन्द का वेश्या जीवन से संबंधित लिखा गया उपन्यास है। यह उपन्यास उर्दू में 'बाजोरहुस्न' नाम से लिखा गया प्रेमचन्द का उपन्यास 1918 में हिन्दी में 'सेवासदन' नाम से प्रकाशित हुआ। एक तरफ नारी–जीवन की समस्याओं को केन्द्र में रखकर उपन्यास रचा गया तो दूसरी ओर पूंजीवादी तथा कथित उच्च वर्ग के प्रतिनिधि, देश कार्य में जुटने के बहाने अपना उल्लू सीधा कर लेने वाले उद्योगपति तथा ऐसे में खुद को तटस्थ रखना कठिन काम था। इससे कठिन था नारी के जीवन सुधार पर बात करना। उसके लिए किसी विशेष साहस की आवश्यकता थी। प्रेमचंद ने यह साहस कर दिखाया।

5.3 'सेवासदन' उपन्यास का कथानक

'सेवासदन' उपन्यास की प्रमुख समस्या नारी की पराधीनता है। बेटी, बहन, पत्नी, माँ सभी रूपों में उसे समाज ने धार्मिक–सामाजिक रूढ़ियों से कैसे जकड़ रखा था इसके वर्णन 'सेवासदन' में मिलते हैं। 'विधवा' और 'वेश्या' की स्थिति तो समाज में सर्वाधिक दयनीय रही। उपन्यास की मुख्य कथा इसी विषय को लेकर है।

यह भी सामाजिक उपन्यास है और स्त्री की दीन समस्या को लेकर लिखा गया है। इसके साथ ही मध्यवर्ग के लोगों की आर्थिक कठिनाइयों और सामाजिक बन्धनों पर प्रकाश डाला गया है तथा ऊँचे और 'सभ्यवर्ग'की आत्म बिडम्बना, ढोंग और बगुला भक्ति की अच्छी कलई खोली गई है।

संक्षेप में उपन्यास की कहानी यह है। कृष्णचन्द्र एक ईमानदार थानेदार हैं। वह पुलिस कर्मचारियों की तरह घूस नहीं लेता। वेतन में गुजर बसर करता है। सुमन और शाँता उसकी दो बेटियाँ थीं। सुमन जवान हुई, तो उसके ब्याह के लिये घर में रुपया नहीं था। इसलिये कृष्णचन्द्र ने घूस लेने की ठानी। उस हलके में एक बड़ा महन्त औरजागीरदार रामदास था, जो साथ ही साहूकारी भी करता था। उसका कारोबार श्री बाँके बिहारीलाल के नाम चला करता था। दस–बीस मोटे ताजे और मुस्टंडे साधु उसके अखाड़े में पड़े रहते थे, जो दूध–मलाई खाते और दंड चलाते थे। चरस और भंग खूब पीते थे। महन्त जी की अफसरों से भी साँठ गाँठ थी। किसी आसामी की यह हिम्मत नहीं थी कि महन्त जी का कर अथवा सूद देने से इनकार करे। जो व्यक्ति महन्त जी की बात नहीं मानता था उसका इलाके में रहना सम्भव नहीं था। पानी में रहकर मगरमच्छ से कौन वैर मोल ले सकता है।

कृष्णचन्द्र जिन दिनों सुमन के ब्याह के लिए घूस लेने की बात सोच रहा था, उन्हीं दिनों श्री बाँकेबिहारीजी के मुस्टंडों ने एक आसामी चेतू को इतना पीटा कि उसे जान से मार डाला। उसका अपराध यह था कि वह यज्ञ के

लिये लगाया हुआ चन्दा नहीं दे सका था। थानेदार कृष्णचन्द्र ने रिश्वत लेकर मामला रफा दफा कर दिया। लेकिन उसने अपने मातहतों को घूस में से कोई हिस्सा नहीं दिया। जिससे बात खुल गई और घूस लेने के अपराध मेंकृष्णचन्द्र को पाँच साल कैद की सज़ा मिली।

कृष्णचन्द्र की पत्नी, सुमन और शान्ता को लेकर अपने भाई उमानाथ के घर चली गई। धनाभाव के कारण सुमन का विवाह पन्द्रह रुपये वेतन पाने वाले गजाधर नामक व्यक्ति से हो गया।

सुमन, जिसने भले दिन देखे थे, अब बहुत ही निम्न श्रेणी में चली गई। पन्द्रह रुपये में गृहस्थ चलाना मुश्किल जान पड़ता था। गजाधर से भी उसे कोई सहानुभूति नहीं मिली। वह उससे छोटी–छोटी बातों पर लड़ पड़ता था। भोजन उपरान्त यदि कुछ दाल भात बच जाता और सुमन उसे गिरा देती, तो गजाधर को उसकी यह बात बहुत खलती।

इधर सुमन को घर में यह बमचख सहनी पड़ती थी और दो जून रोटी भी नहीं जुड़ती थी। उधर उसके घर के सामने एक भोली नामक वेश्या खूब ठाठ से रहती थी। नगर के बड़े–बड़े आदमी उसके घर खुले बन्दों आतथे और भोली का आदर करते थे। सुमन सोचती थी कि मुझसे तो यह वेश्या कहलाने वाली भोली ही अच्छी है। एक दिन वह गंगा से लौटती हुई म्यूनिसिपल बाग में एक बेंच पर बैठने लगी, तो चौकीदार ने उसे उठा दिया और उसी समय दो वेश्याएं आईं तो चौकीदार ने उनका तपाक से स्वागत किया। सुमन को अपना यह अपमान बहुत खला।

इसी बीच में पद्मसिंह वकील की पत्नी सुभद्रा से सुमन का परिचय हो गया और वह उनके घर आने जाने लगी। गजाधर सुमन के पद्मसिंह के घर जाने पर सशंक रहने लगा। इस बीच में म्यूनिसिपल चुनाव आये और पद्मसिंह सदस्य चुने गये। इस खुशी में उनके घर भोली का मुजरा हुआ। मुजरा के पश्चात् सुमन रात को देर हुए घर पहुँची, तो गजाधर ने उस पर दुराचार का आरोप लगाकर उसे घर से निकाल दिया।

सुमन ने अपनी सहेली सुभद्रा के घर आश्रय लिया। इस पर गजाधर ने शहर में यह प्रचार किया कि बगुला भक्त पद्मसिंह ने उसकी पत्नी को अपने घर डाल लिया। पद्मसिंह ने बदनामी के भय से सुमन को अपने घर में नहीं रहने दिया। अब सारे शहर में एक भोली ही ऐसी थी, जिससे सुमन की जान पहचान थी। वह कुछ दिन उसके घरमें रही और फिर चौबारा लेकर दालमंडी में जा बैठी।

जब पद्मसिंह और उसके मित्र विट्ठलदास को पता लगा कि समाज की ठुकराई सुमन वेश्या बाजार में जा बैठी है तो सुधारक विट्ठलदास ने उसके उद्धार की सोची। उसकी बहुत कुछ दौड़–धूप और प्रयत्न के पश्चात्सुमन ने वह चौबारा छोड़ दिया और उसे विधवा आश्रम में दाखिल करा दिया गया।

उधर सुमन की छोटी बहन शांता भी विवाह के योग्य हो गई थी। उमानाथ ने उसकी सगाई पद्मसिंह के भतीजे सदनसिंह से कर दी। सदनसिंह का पिता मदनसिंह रूढ़िवादी व्यक्ति था। जब उसे पता चला कि सुमन शांता की बहन है और वह वेश्या बन गई है, तो उसने विवाह करने से इनकार कर दिया और बरात लौटा लाया।

सुमन का पिता कृष्णचंद कैद काटकर जेल से छूटा, तो वह पागलों की तरह रहने लगा। वह बात–बात पर लोगों से लड़ पड़ता था और गाँव की औरतों से अश्लील मज़ाक करता था। शांता की बरात लौट जाने परउसे मालूम हुआ कि सुमन वेश्या बन गई है। इस लज्जा के मारे वह गंगा में डूबकर मर गया।

शांता को पद्मसिंह और विट्ठलदास ने सुमन के साथ विधवा आश्रम में रखवा दिया। सदन बरात लौटाने के मामले में पिता से सहमत नहीं था। वह उससे झगड़ कर घर से चला गया और नाव चलाने का काम करने लगा। इस धंधे में उसे काफी सफलता मिली और वह मल्लाहों का नेता बन गया।

म्यूनिसिपैलिटी में पद्मसिंह ने यह प्रस्ताव पेश किया था कि वेश्याओं को शहर से बाहर रखा जाये। प्रतिक्रियावादी सदस्यों ने इस प्रस्ताव का न सिर्फ विरोध किया, बल्कि उसे साम्प्रदायिक रंग भी दे दिया गया। इसी सिलसिले में पद्मसिंह के विरोधियों ने सुमन के विधवाआश्रम में दाखिल कराने पर एतराज किया और अखबारों ने इस बात को उठा लिया। सुमन ने शांता को साथ लेकर आश्रम छोड़ दिया।

जब वे दोनों नाव से नदी पार करने गई, तो सदनसिंह ने उन्हें अपने पास रोक लिया और शांता से विवाहकर लिया। सदन और शांता दोनों ही सुमन से उदासीन रहने लगे। जब मल्लाहों को सुमन के वेश्या होने का पता चला,तो उन्होंने सदन का बहिष्कार कर दिया। सुमन को यह सब कुछ बहुत बुरा लगा। आखिर जब सदन के पुत्र जन्म पर उसके माता–पिता आये, तो शांता के संकेत पर सुमन को सदन की कुटी छोड़नी पड़ी।

सुमन के वेश्या बन जाने के बाद उसके पति गजाधर को पत्नी के प्रति अपनी निष्ठुरता और कठोरता का आभास हुआ। वह इस दुर्व्यवहार का पश्चाताप करने के लिए सन्यासी बन गया और जनसेवा और दुखी स्त्रियों के उद्धार के लिये जीवन बिताने लगा। जब सुमन सदन की कुटिया से निकल कर गंगा में डूबने जा रही थी, तो उसकी भेंट गजाधर से हुई, जो अब स्वामी गजानन्द था और उसी की प्रेरणा पर सुमन ने सेवाश्रम का कार्य संभालने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। सुमन को उसके जीवन का उद्देश्य मिल जाता है। वेश्याओं से मिली पचास लड़कियां उस आश्रम में रहती हैं वहाँ उन्हें अच्छी शिक्षा, संस्कार तथा सिलाई–बुनाई, संगीत जैसी कलाएँ सिखाई जाती हैं। उपन्यास के अन्त में सुभद्रा आश्रम देखने आती है और सुमन, जो कंभी उसकी सहेली थी, उसका बदला हुआ योगिनी – सा रूप देखती है, उसका आश्रम का कार्य देखती है और दंग रह जाती है। वेश्याओं की कन्याओं के उज्ज्वल भविष्य का संकेत पाठकोंको देकर उपन्यास समाप्त होता है।

5.4 उपन्यास की समीक्षा

प्रेमचन्द ने यह उपन्यास भी उर्दू में लिखा था, लेकिन प्रकाशित पहले हिन्दी में हुआ। पाठकों ने इसका खूब स्वागत किया और इसे हिन्दी जगत का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास घोषित किया। निस्संदेह प्रेमचन्द ने यह उपन्यास लिखकर अपनी कलम का लोहा मना लिया। उनके लिये यह सफलता वाकई हर्ष और सौभाग्य की बात थी।

हिंदीजगत ने सेवा–सदन का यह स्वागत ठीक ही किया। वाकई उस समय वह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास था। इस उपन्यास से पता चलता है कि प्रेमचंद किस तेजी से आगे बढ़ रहे थे और उनका दृष्टिकोण अब सीमित न रहकर व्यापक होता जा रहा था। उन्होंने इस उपन्यास में अबला स्त्री और मध्यवर्ग की समस्या को लेकर समाज के लगभग समस्त पहलुओं पर प्रकाश डाला है। उपन्यास मूलतः सुधारवादी है, लेकिन प्रेमचंद ने समाज में फैली हुई बुराइयों का यथार्थ कारण ढूँढ निकाला है और उसके लिये व्यक्तियों को दोषी न ठहराकर वर्तमान सामाजिक पद्धति को जिम्मेदार ठहराया है।

पहले हम देखते हैं कि पुलिस जिसका कर्त्तव्य समाज रक्षा और जन–सेवा है, वह खुद भ्रष्टाचार और बेईमानी फैला रही है। यदि कोई पुलिस अफसर ईमानदारी से जीवन बिताना चाहता है, तो उसके लिये गृहस्थ चलाना कठिन हो जाता है और उसके पास अपनी जवान कन्या के हाथ रंगने लायक भी पैसे नहीं होते। आखिर उसे भी बेईमान बनकर घूस लेनी पड़ती है और जेल जाना पड़ता है। यह अकेले कृष्णचंद्र की ट्रेजड़ी नहीं, समूचे समाज की ट्रेजड़ी है।

फिर श्री बांकेबिहारी लाल जी हैं, जो महन्त भी हैं और सामन्त भी हैं। वे दोनों हाथों से आसामियोंको लूटते हैं। अफसर भी इस लूट में उनके हिस्सेदार हैं। वे गुंडे पालते हैं और आसामियों की हत्या तक कर डालते हैं, कोई उन्हें पूछने वाला नहीं। धर्म और कानून दोनों महन्त जी के कुकर्म और अत्याचार की ढाल बने हुए हैं।

प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में विशेष रूप से वेश्याओं की समस्या को उठाया है। वे वेश्यावृत्ति को समाज का कलंक और कोढ़ समझते थे और इसका अन्त चाहते थे। तो उन्होंने समस्या का भावनात्मक और सुधारवादी हल उपस्थित किया है और विधवाश्रम तथा सेवाश्रम इस समस्या का कोई हल नहीं है, लेकिन उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी है कि वेश्याएँ कोई विधाता की ओर से बनकर नहीं आती, यह निष्ठुर समाज ही हमारी बहू बेटियों को वेश्याएं बनने पर मजबूर करता है। एक म्यूनिसपल मेम्बर कुंवर साहब दालमंडी बनने का कारण बताते हुए कहता है – "जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती राज्य कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु आदर और सम्मान के पात्र हों, वहां दालमंडी क्यों न आबाद हो? हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता है? जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद–दर–सूद का अन्त होगा उसी दिन दालमंडी उजड़ जायेगी – पहले नहीं।"

जब रामनवमी के उपलक्ष्य में काशी के प्रसिद्ध मन्दिर में भोली के भजन हुए, तो सुमन घृणा छोड़ कर उससे मेल–जोल बढ़ाने लगी। पति ने एतराज किया, तो उसने भोली के मन्दिर में जाने की बात कही। इस तर्क के जवाब में गजाधर ने कहा – "आजकल धर्म तो धूर्तों का अड्डा है। लंबी–लंबी जटायें, लंबे–लंबे तिलक और लम्बी-लम्बी दाढ़ियाँ तो महज़ पाखंड है और लोगों को धोखा देने के लिये हैं।"

सुमन जब एक गृहस्थ औरत है, तो उसे कोई आश्रय तक नहीं देता, लेकिन जब वह दालमंडी में जा बैठती है तो समाज के रंगे सयार अबुल वफा, सेठ चिम्मनलाल और पंडित दीनानाथ उसके तलवे सहलाते हैं। जब पद्मसिंह वेश्याओं को शहर से बाहर बसाने का प्रस्ताव पेश करता है तो इसी किस्म के लोग उस प्रस्ताव का विरोध करते हैं और उसे मजहब के नाम पर साम्प्रदायिक रंग देने तक से नहीं चूकते। झूठे धर्म और साम्प्रदायिकता के साथ–साथ प्रेमचन्द

ने झूठे सुधारवादियों की पोल खोली है। विट्ठलदास जब सुमन से वेश्यावृत्ति छुड़ाने के लिये 50 रुपया महीना जुटाना चाहता है, उसे सफलता नहीं मिलती। वेश्यावृत्ति के विरोधियों और सुमन का उद्धार चाहने वालों से भी उसेचन्दा नहीं मिलता। उनका समाज सुधार सिर्फ जबानी जमा खर्च है।

इस उपन्यास से बेजोड़ शादी और दहेज की प्रथा आदि पर भी चोट पड़ती है।

प्रेमचन्द के पहले उपन्यासों की अपेक्षा इस उपन्यास में जितनी यथार्थवाद की मात्रा अधिक है, उतना ही चित्र–चित्रण अधिक सुन्दर है। सुमन मानवती और हठीली लड़की है। उसने सुख आराम में जीवन बिताया था औरएक अच्छे घर में ब्याहे जाने के स्वप्न देखे थे। लेकिन ब्याह् के उपरान्त उसे न सुख मिला और न आदर। जीवन केअनुभव ने उसे कटु और कठोर बना दिया और वह इस समाज से घृणा करने लगी जिसमें उस जैसी भली और सच्चरित्र स्त्रियों का तो अपमान होता है, लेकिन वेश्याओं का आदर–सम्मान होता है। उन्हें भले घरों के उत्सवों और मंदिरों तक में निमंत्रित किया जाता है, जिसके नेता रंगे संयार ढोंगी और स्वार्थी हैं। उसने कठिनाईयाँ भी सहन की औरअपमान भी बर्दाश्त किया, फिर भी पति ने झूठा दोष लगाकर घर से निकाल दिया और भोली वेश्या के घर के सिवा उसे कहीं आश्रय नहीं मिला, तो उसने विवश होकर कुपथ ग्रहण किया व अपनाया, यह सुमन की अबला नारी की समाज को चुनौती है। वह दुखः और कष्ट सह सकती है, लेकिन अपमान और अवहेलना बर्दाश्त नहीं कर सकती। हमें उसका यह चलन ठीक ही जान पड़ता है।

पद्मसिंह अपने मध्यवर्गी पढ़े–लिखे समुदाय का टाइप चरित्र है। उसका किताबी ज्ञान और कानून की शिक्षा उसे हर समय फूँक–फूँक कर कदम रखने को कहता है। वह जरा–जरा–सी बात पर अपनी बदनामी से डर जाता है। म्यूनिसिपल चुनाव में सफल होने के बाद मुजरा को बुरा समझने के बावजूद मुजरा करवाता है, सुमन को निरपराध समझते हुए भी उसे अपने घर में आश्रय देने से इनकार कर देता है और म्यूनिसिपैलिटी में अपने प्रस्ताव काविरोध होते देखकर सोचने लगता है – 'अपना आराम से जीवन बिताते यह किस झमेले में पड़ गये।" दरअसल वह अपनी पोजीशन बनाने के लिये ही समाज सुधार और लोक–सेवा के कामों में हाथ डालता है और विरोध और बदनामी देख झट पीछे हटने को तैयार हो जाता है। उसके लिये सत्य, न्याय और सुधार सब गौण हैं, अपना स्वार्थ ही मुख्य है। विट्ठलदास उसे कहता है – "तुम्हारे संकल्प दृढ़ नहीं होते।" यही उसकी असलियत है।

विट्ठलदास सच्चे मन से समाज का सुधार चाहता है और उसके लिये तन, मन और धन से काम करता है। लेकिन वह तमाम सुधारवादियों की तरह व्यक्तिवादी भी है। वह पद्मसिंह से इसलिये बिगड़ गया कि उसने विरोधा के बावजूद मुजरा कराया और फिर वह गजाधर के कहने पर पद्मसिंह पर सुमन को घर में डाल लेने का झूठा लाँछन लगाने से भी बाज नहीं आया। उसके बाद जब उसे मालूम हुआ कि सुमन वेश्या बनकर दालमंडी में जा बैठी है, तब उसे बड़ा दुख और क्षोम हुआ और वह इसके लिये अपने आपको दोषी समझने लगा क्योंकि उसने पदम्सिंह के विरुद्ध झूठा प्रचार करके सुमन को उसके घर से निकलवाया था। इसका पश्चाताप यही था कि वह सुमन से वेश्यावृत्ति छुड़ाये और वह इस काम में जीजान से लग गया। ऐसे लोग हमेशा दोष, अपराध और पश्चाताप के चक्र में पड़े रहते हैं। उनकी सुकामनाओं और स्वेच्छाओं के बावजूद सुधार का काम कभी खत्म नहीं होता। सुमन ने उसे ठीक ही कहा –"एक मैं

ही तो नहीं। भले और ऊँचे कुल की कितनी ही बहू बेटियाँ दालमंडी में बैठी हैं।" विट्ठलदास फिर भी उनके बारे में नहीं सोचता। सोच ही नहीं सकता क्योंकि सुधारवाद समाज के इस रोग का निदान नहीं है। उससे तो महज़ किसी एक सुमन और एक शांता का उद्धार हो सकता है।

सुमन का पिता कृष्णचन्द्र पाठकों की हमदर्दी और सहानुभूति का पात्र है। इस दूषित सामाजिक व्यवस्था में किसी भी भले आदमी के लिये ईमानदार बने रहना सम्भव नहीं है। वह बेटी के विवाह से मजबूर है और घूस लेकर जेल जाता है। जेल से छूटकर उसका पागल और विकृत सा हो जाना भी स्वाभाविक है क्योंकि वह सोचता है कि न ईमान ही रहा और न धन ही मिला! यश भी गंवाया और घर भी खोया। जेल से निकलकर वह प्रायः यह दोहा पढ़ता है।

'लकड़ी जल कोला भई, कोला जल कर राख।

मैं पापन ऐसी जली कोयला भई, न राख।।"

प्रेमचंद ने यह दोहा ठीक ही उसके मुख से कहलवाया है।

गजाधर भी भला आदमी है। उसकी त्रुटियाँ समाज की त्रुटियाँ हैं। वह अपनी थोड़ी आमदनी के कारण ही ऐसा बना है और इसी कारण सुमन से लड़ता झगड़ता रहता और उस पर संदेह करता है। लेकिन सुमन के वेश्या बन जाने के बाद उसका जो दूसरा रूप हमारे सामने आता है उस पर विश्वास नहीं होता। समाज ने जिन व्यक्तियों को इतना कुचल दिया हो, वे एकदम परिस्थितियों से इतना ऊँचा नहीं उठ सकते। सिर्फ एक सुधारवादी लेखक ही ऐसा सोच सकता है और गजाधर को गजानंद बना सकता है।

महन्त रामदास, अबुलवफा, सेठ चिम्मनलाल और पंडित दीनानाथ अपने वर्ग के टाइप पात्र हैं और उनके द्वारा प्रेमचंद ने इस वर्ग के अन्याय, अत्याचार, ढोंग और पाखंड को भली भाँति प्रस्तुत किया है। शांता और सदन आदि पात्र गौण जान पड़ते हैं।

इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने भाषा और साहित्य के विषय पर भी प्रकाश डाला है। उन्हें इस बात का दुख है कि कुछ म्यूनिसिपल कमिश्नर और पढ़े लिखे स्वार्थी लोग खाह–मखाह विदेशी भाषा बोलते हैं। उन्हें इस बात का भी खेद है कि कोई लेखक महाशय अंग्रेजी के एक दो उपन्यासों अथवा पुस्तकों का, वह भी सीधे अंग्रेजी से नहीं बंगाली या गुजराती के माध्यम से, अनुवाद करके अपने आपको तीस मार खाँ समझने लगते हैं। यही कारण है कि हमारी भाषा में कोई अच्छा उपन्यास नहीं है।

प्रेमचंद ने सेवासदन लिखकर इस अभाव की पूर्ति की।

5.5 कथानक की विशेषताएँ

1. उपन्यास का तत्व 'कथानक' एक महत्वपूर्ण तत्व है। उपन्यास मनोरंजक, उत्सुकता बढ़ाने वाला, संभवनीय, सुगठित कथानक, परिणामकारक तथा अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने वाला बनता है।

2. उपन्यास वृहदाकार लिए है तथा सुगठित कथानक रखने का भरसक प्रयत्न किया गया है।

3. मुख्य कथानक के साथ अन्य कथाएँ भी विशेष महत्व रखती हैं।

4. संभव के साथ असंभव या चमत्कारिक घटना का वर्णन हुआ है जैसे गजाधर का अंत में आकर मिलना, सुमन को आश्रम के लिए जीवन समर्पित करने की प्रेरणा देना, उच्च आदर्श की बातें करना। शांता का विवाह सदन सिंह से तय होना इसे असंभवनीय बनाता है जिस पर विश्वास करना पाठकर के लिए थोड़ा मुश्किल हो जाता है।

5. नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं को लेकर कथावस्तु की रचना हुई है तथा नारी जीवन की समस्याओं को समाज के समक्ष लाना उपन्यास का उद्देश्य है।

6. तत्कालीन समाज के राजनीतिक वातावरण का वर्णन, हिन्दु–मुस्लिम समन्वय की बात करना तथा वेश्या सुधार आश्रम की स्थापना करना लेखक के प्रगतिवादी विचारों की पुष्टि करता है।

5.6 कठिन शब्द

1. बगुला भक्ति
2. कलई
3. घूस
4. आसामी
5. दालमंडी

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास की कहानी संक्षेप में लिखें।

प्रश्न : 'सेवासदन' के कथानक पर प्रकाश डालें।

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास के कथानक की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. सेवासदन – प्रेमचन्द
2. प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व – हंसराज 'रहबर'
3. प्रेमचन्द – सं. सत्येन्द्र

—— 0 ——

'सेवासदन' उपन्यास की प्रमुख समस्याएँ

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 सेवासदन की प्रमुख समस्याएँ

6.3.1 दहेज की समस्या

6.3.2 रिश्वतखोरी की समस्या

6.3.3 धार्मिक ठगी की समस्या

6.3.4 साम्प्रदायिक विद्वेष की समस्या

6.3.5 वेश्यावृति की समस्या

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्द

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.7 पठनीय पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

इस आलेख के अध्ययनोपरांत आप जान पांएगे कि प्रेमचन्द के उपन्यासों में 'समस्या'यही इसका बल स्थान है। उनके सभी उपन्यासों में कोई न कोई प्रमुख समस्या मिलती है। प्रमुख समस्या के साथ साथ अन्य समस्याओं की झलकें भी प्रत्येक उपन्यास में विद्यमान रहती हैं। हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द युग एक ऐसा युग आया जब देश

को भयावह परिस्थितियों से गुज़रना पड़ रहा था। इस युग में देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति असंतोषजनक और विषमता से परिपूर्ण थी। यही कारण है कि तत्कालीन समाज में स्थित समस्याओं का उद्‌घाटन हमें उनके उपन्यास में मिलता है।

6.2 प्रस्तावना

प्रेमचन्द मूलतः समस्या मूलक उपन्यासकार हैं। उन्होंने प्रत्येक उपन्यास में किसी न किसी समस्या को उठाया है। उन्होंने अपने उपन्यास में कथानक के माध्यम से अनेक सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं को उठाया है और उन्हें हल करने के उपाय भी सुझाये हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में कथानक का गठन, घटनावली का निर्माण और उपसंहार उनके चिन्तन का अनुगामी बन गया है। सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने सामाजिक कुरीतियों एवं कुप्रथाओं को लिया है। इन कुप्रथाओं को पुष्ट करने वाले कारणों एवं इनसे होने वाले दुष्परिणामों का वर्णन करते हुए वे परोक्ष रीति से इनके सुधार के उपाय भी बताते जाते हैं। इस दृष्टि से सामाजिक समस्या का निरूपण और हल करने वाले सुधारवादी प्रेमचन्द का रूप हमारे समक्ष आ जाता है। सुधारवादी प्रायः आदर्शवादी होता है क्योंकि किसी आदर्श विशेष को सामने रखे बिना वह प्रचलित व्यवस्था में सुधार की कल्पना नहीं कर सकता। यही कारण है कि सामाजिक समस्याओं का निरूपण करते समय प्रेमचन्द के उपन्यास में उनका सुधारवादी और आदर्शवादी रूप उभर आया है।

6.3 सेवासदन की प्रमुख समस्याएँ

सेवासदन में प्रेमचन्द ने मूलतः निम्नलिखित समस्याओं का चित्रण किया है –

दहेज की समस्या

रिश्वतखोरी की समस्या

धार्मिक ठगी की समस्या

साम्प्रदायिक विद्वेष की समस्या

वेश्यावृत्ति की समस्या

6.3.1 दहेज की समस्या

प्रेमचन्द ने दहेज की समस्या को सभी समस्याओं की जड़ माना है। इसके कारण कृष्णचन्द को अपनी ईमानदारी और सच्चाई पर पश्चात्ताप होने लगा। प्रेमचन्द ने लिखा है– "दारोगाजी वर की खोज में दौड़ने लगे, कई जगह से टिप्पणियाँ मंगवाई। वह शिक्षित परिवार चाहते थे। वह समझते थे कि ऐसे घरों में लेन–देन की चर्चा न होगी, पर उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल शिक्षा के अनुसार है। कोई चार हज़ार सुनाता, कोई पांच हज़ार और कोई इससे भी आगे बढ़ जाता।" लोग किस प्रकार तर्क देकर दहेज का औचित्य सिद्ध करते हैं। इस सम्बन्ध में दो महाशयों के उद्‌गार अवलोकनीय हैं। उनमें से पहले महाशय जी स्वयं को इस कुप्रथा का जानी दुश्मन बताते हैं,

उनका तर्क देखिए–

"महाशय मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूँ। लेकिन क्या करूँ, अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया, दो हज़ार दहेज में देने पड़े, दो हज़ार और खाने पीने में खर्च किये, आप ही कहिये, वह कमी कैसे पूरी हो ?"

दूसरे सज्जन ने तर्क प्रस्तुत किया कि लड़के पर हज़ारों रुपये खर्च करूँ मैं जबकि लाभ आपकी लड़की उठायेगी –

"दूसरे महाशय इनसे अधिक नीति कुशल थे। बोले दरोगाजी, मैंने लड़के को पाला है, सहस्त्रों रुपये उसकी पढ़ाई में खर्च किये हैं। आपकी लड़की को इससे उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लड़के को। तो आप ही न्याय कीजिए कि यह सारा भार मैं अकेला कैसे उठा सकता हूँ ?"

दरोगा कृष्णचन्द के उपरान्त सुमन के मामा को भी यह संकट झेलना पड़ा। "अन्त में उमानाथ ने निश्चय किया कि शहर में कोई वर ढूँढना चाहिए। सुमन के योग्य वर देहात में नहीं मिल सकता। पर शहरवालों की लम्बी चैड़ी बातें सुनी तो उनके होश उड़ गये, बड़े आदमियों का तो कहना ही क्या, दफ्तर के मुसद्दी और कलर्क भी हज़ारों का राग अलापते थे।"

यही दशा शांता के लिए वर खोजते समय होती है। गांव लौटते समय उनकी गजानन्द से बात होती है –

गजानन्द–लेकिन अब की सुयोग्य वर खोजिएगा।

उमानाथ–सुयोग्य वरों की तो कमी नहीं है, पर उनके लिए मुझमें सामर्थ्य भी तो हो ? सुमन के लिए क्या मैंने कम भाग दौड़ की थी ?

गजानन्द– सुयोग्य वर मिलने के लिए आपको कितने रूपये की अवश्यकता है ?

उमानाथ–एक हज़ार तो दहेज ही माँगते हैं और सब खर्च अलग रहा।

गजानन्द–आप विवाह तय कर दीजिये। एक हज़ार रूपये का प्रबन्ध ईश्वर चाहेंगे तो मैं कर दूंगा।

दहेज प्रथा के कारण निश्चय ही लड़कियों को अच्छे वर की प्राप्ति नहीं हो पाती थी। सुमन का पतन इसी कारण हुआ।

6.3.2 रिश्वतखोरी की समस्या

रिश्वत की समस्या को दरोगा कृष्णचन्द्र के माध्यम से उभारा गया है। कृष्णचन्द्र पच्चीस वर्ष तक ईमानदारी से काम करते रहे। इसका अन्त में परिणाम यह निकलता है कि उनके अफसर और अधीनस्थ कर्मचारी सभी उनसे असंतुष्ट रहते हैं। वे अपने मातहतों के साथ भाई–चारे का सा व्यवहार करते थे, किन्तु मातहत अक्सर कहा करते थे – "यहाँ हमारा पेट नहीं भरता, हम इनकी भलमनसी को लेकर क्या करें– चाटें ? हमें घुड़की डाँट–डपट, सख्ती सब

स्वीकार है, केवल हमारा पेट भरना चाहिए। रुखी रोटियां चांदी के थाल में परोसी जायें तो भी वे पूरियं न हो जायेंगी।"

दरोगा कृष्ण चन्द्र की शुष्कता को प्रायः लोग उनका अभिमान समझते थे। इसी कारण उनसे उनके अफसर प्रसन्न न थे। यथा–

दरोगाजी के अफसर भी उनसे प्रायः प्रसन्न न रहते। वह दूसरे थाने में जाते तो उनका बड़ा आदर सत्कार होता था, उनके अहलमद, मुहरिर और अरदली खूब दावतें उड़ाते। अहलमद को नज़राना मिलता, अरदली इनाम पात और अफसरों को नित्य गालियाँ मिलती पर कृष्णचन्द्र के यहाँ यह आदर–सत्कार कहाँ ? जो किसी से लेता नही, वह किसी को देगा कहाँ से? दरोगा कृष्णचन्द्र की शुष्कता को लोग अभिमान समझते थे।

इसे सामाजिक विडम्बना ही माना जायेगा कि रिश्वत न लेने वाले दरोगा से उसके अधीनस्थ कर्मचारी और उच्चस्थ अधिकारी प्रसन्न नहीं रहते। यहाँ तक कि जब अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर दहेज लेने की बात उठने लगती है तो दरोगा स्वयं परास्त हो जाते हैं। दरोगा कृष्णचन्द्र को अपने सत्याचरण और ईमानदारी पर पश्चत्ताप करते दिखाकर राष्ट्रीय चरित्र के पतन की ओर संकेत किया है। यथा–

कृष्णचन्द्र को अपनी ईमानदारी और सच्चाई पर पश्चाताप होने लगा। अपनी निःस्पृहता पर उन्हें जो घमण्ड था वह टूट गया। वह सोच रहे थे कि यदि मैं पाप से न डरता तो आज मुझे भी ठोकरें न खानी पड़ती। इस समय स्त्री पुत्र चिन्ता में डूबे बैठे थे, बड़ी देर के बाद कृष्णचन्द्र बोले, देख लिया संसार में सन्मार्ग पर चलने का यह फल होत है। यदि आज मैंने लोगों को लूट कर घर भर लिया होता तो लोग मुझसे सम्बन्ध करना अपना सौभाग्य समझते, नहीं तोकोई सीधे मुंह बात नहीं करता है। परमात्मा के दरबार में यह न्याय होता है। अब दो ही उपाय हैं, या तो सुमन को किसी कंगाल के पल्ले बांध दूं या कोई सोने की चिड़िया फंसाऊँ। पहली बात तो होने से रही, बस अब सोने की चिड़िय खोज निकालता हूँ। धर्म का मज़ा चख लिया, सुनीति का हाल भी देख चुका। अब लोगों को खूब दबाऊँगा, खूब रिश्वतें लूंगा, यही अन्तिम उपाय है। संसार यही चाहता है और कदाचित् ईश्वर भी यही चाहता है। यही सही। आज से मैं भी वहीं करूँगा जो सब लोग करते हैं।

6.3.3 धार्मिक ठगी की समस्या

प्रेमचन्द ने अपने समसामयिक जीवन में होने वाली ठगी का भी वर्णन किया है। यह ठगी धार्मिक गुरुओं और महन्तों के माध्यम से होती है। जनता का उन पर अन्धविश्वास और अपार श्रद्धा थी और उसी का लाभ ये धार्मिक महन्त और गुरु लोग उठाते थे। इन गुरुओं के आश्रय में अनेक मुस्तंडे पलते थे। यथा–

"दारोगाजी के हल्के में एक महंत रामदास थे। वह साधुओं की एक गद्दी के महंत थे। उनके यहाँ सारा कारोबार श्री बांके बिहारी जी के नाम पर होता था। श्री बांके बिहारी जी लेन देन करते थे और 32) सैंकड़े से कम सूद न लेते थे। वहीं मालगुज़ारी वसूल करते थे, वही रहननामे–बैनामें लिखाते थे। श्री बाँके विहारी जी की रकम दबाने का किसी को साहस न होता था और न अपनी रकम के लिए कोई दूसरा आदमी कड़ाई कर सकता था। श्री बाँके बिहारी जी को रुष्ट करके उस इलाके में रहना कठिन था। महंत रामदास के यहां दस–बीस मोटे–ताजे साधु स्थायी

रूप से रहते थे। वह अखाड़े में दण्ड पेलते, भैंस का ताजा दूध पीते, संध्या को दूधिया भंग छानते औरगाँजे–चरस की चिलम तो कभी ठंडी न होने पाती थी। ऐसे बलवान जत्थे के विरुद्ध कौन सर उठाता ?"

ये महंत जी अपने इलाके के प्रभावशाली व्यक्तियों में से थे। उच्च अधिकारियों से इन्होंने साँठ–गाँठ कररखी थी। इन अधिकारियों से भी इन्हें किसी प्रकार का भय न था। यथा–

"महंत जी का अधिकारियों में खूब मान था। श्री बाँके बिहारी जी उन्हें खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहन भोग खिलाते थे। उनके प्रसाद को कौन इन्कार कर सकता था ? ठाकुर जी संसार में आकर संसार की रीति पर चलते थे।"

अपनी आसामियों का शोषण करने के बाद महंत जी का अपना ठाट–बाठ देखने लायक है। प्रेमचन्द ने उनके जलूस की भव्यता का वर्णन किया है।

यथा–

"महंतजी अब अपने इलाके की निगरानी करने निकलते तो उनका जलूस राजसी ठाट–बाट के साथ चलता था। सबसे आगे हाथी पर श्री बाँके बिहारीजी की सवारी होती थी, उसके पीछे पालकी पर महंत जी चलते थे, उसके बाद साधुओं की सेना घोड़ों पर सवार, राम–नाम के झंडे लिए अपनी विचित्र शोभा दिखाती थी, उँटोंपर छोलदारियाँ, डेरे और शामियाने लदे होते थे। यह दल जिस गाँव में जा पहुंचता था, उसकी शामत आ जाती थी।

महंत जी एक ओर तो बाँके बिहारीजी के नाम पर ऊंची ब्याज़ – दर के कारण जनता का शोषण करते थे और समय आने पर अपने इलाके के लोगों से विशेष चंदा भी वसूल करते थे। यथा –

''इस साल मंहत जी तीर्थ यात्रा करने गए थे। वहाँ से आकर एक बड़ा यज्ञ किया। एक महीने तक हवन कुण्ड जलता रहा, महीनों तक कड़ाह न उतरे पूरे दस हज़ार महात्माओं को निमत्रंण था। इस के लिए इलाके केप्रत्येक आसामी से हल पीछे पाँच रुपया चंद उगाहा गया था किसी ने खुशी से दिया किसी ने उधार लेकर, जिसके पास न था। श्री बाँके बिहारी जी की आज्ञा कौन टाल सकता था। ?

महंत जी अपना इलाके में दबदबा बनाए रखने के लिए हर प्रकार के हथकंडे अपनाते हैं। बाँके बिहारी की आज्ञा को टालने वाले व्यक्ति को दंड भी भोगना पड़ता है यथा – एक बूढ़ा दरिद्र चेतु नाम का अहीर था। कई साल से उसकी फसल ख़राब हो रही थी। थोड़े ही दिन हुए श्री बाँके बिहारी जी ने उस पर हजाफा लगान की नालिश करके उसे ऋण के बोझ से और भी दबा दिया था। उसने यह चंदा देने से इंकार किया, यहाँ तक कि खक्का भी न लिखा। ठाकुरजी भला ऐसे द्रोही को कैसे क्षमा करते। एक दिन कई महात्मा चेतू को पकड़ लाये। ठाकुरजी के सामनेउस पर मार पड़ने लगी। चेतु भी बिगड़ा। हाथ तो बंधे थे, मुँह से लात घूँसों के जवाब देता रहा और जब तक ज़बान बन्द न हो गई चुप न हुआ।

गाँवों में यदि महंत का प्रभाव था, तो शहर भी उनके प्रभाव से मुक्त न थे। वहाँ रामनवमी के दिन भगवान का कीर्तन होना बन्द हो गया। उसकी जगह महंत भोलीबाई वेश्या का मुजरा करवाना पसंद करते थे। सुमन ने स्वयं

अपनी आँखों से देखा –

रामनमवी के दिन सुमन कई सहेलियों के साथ एक बड़े मंदिर में जन्मोत्सव देखने गई। मंदिर खूब सजाया हुआ था। बिजली की बत्तियों से दिन का सा प्रकाश ही रहा था, बड़ी भीड़ थी। मंदिर के आँगन में तिल रखने की भी जगह न थी। संगीत की मधुर ध्वनि आ रही थी। सुमन ने खिड़की में से आँगन की ओर झांका तो क्या देखा कि वही उसकी पड़ोसिन भोली बैठी गा रही है । सभा में एक से एक बड़े आदमी बैठे हुए थे, कोई वैष्णव तिलक लगाये, कोई भस्म रमाये, कोई गले में कंठी माला डाले और राम राम की चादर ओढ़े कोई गरुए वस्त्र पहने। उनमें से कितनों को सुमन नित्य गंगा स्नान करते देखती थी। वह उन्हें माहत्मा विद्वान समझती थी। वही लोग यहाँ इस भाँति तन्मय हो रहे थे, मानो स्वर्गलोग में पहुँच गये हैं। भोली जिसकी और कटाक्ष पूर्ण नेत्रों से देखती थी वह मुग्ध हो जाता था मानों साक्षात् राधाकृष्ण के दर्शन हो गए।''

गजाधर का विश्वास है कि साधु बनकर धन आसानी से कमाया व एकत्र किया जा सकता है। वह केवल जीवन का सुख और उत्तम भोजन का स्वाद लूटने के लिए पुजारी बना। वह उमानाथ से कहता है।

आप विवाह तय कर लिजिए। एक हजार रुपये का प्रबन्ध ईश्वर चाहेंगे तो मै कर दूँगा। यह भेष धारण करके अब लोगों को आसानी से ठग सकता हूँ। मुझे ज्ञात हो रहा है कि मैं प्राणियों का बहुत उपकार कर सकता हूँ।

धार्मिकता के नाम पर ठगी करने वाले धूर्तों का समाज में बोलबाला रहा है। यह समाज के प्रत्येक वर्ग का आदमी जानता था। साधु बनने से पूर्व एक बार गजाधर ने सुमन को समझाते हुए कहा है –

''तो तुमने उन लोगों के बड़े–बड़े छापे तिलक देखकर ही उन्हे धर्मात्मा समझ लिया? आजकल धर्म तो धुर्तो का अड्डा बना हुआ है। इस निर्मल सागर में एक से एक मगरमच्छ पड़े हैं। भोले–भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है। लम्बी–लम्बी जटाएँ, लम्बे–लम्बें तिलक–छापे और लम्बी–लम्बी दाढ़ियाँ देखकर लोग उनके धोखें में आ जाते हैं। पर वह सबके सब महान पाखंडी, धर्म के उज्ज्वल नाम को कलंकित करने वाले धर्म के नाम पर टका कमाने वाले, भोग विलास करने वाले पापी हैं।

6.3.4 साम्प्रदायिक समस्या

प्रेमचन्द ने सेवादन उपन्यास में तत्कालीन समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक समस्या को भी उठाया है। यह समाज का एक ऐसा रोग है, जिसके कारण भारतीय समाज पनप ही नहीं पाता। वेश्या समस्या के समाधान के लिए भी तत्कालीन म्युनिसिपैलिटी के सदस्य अपनी–अपनी साम्प्रदायिक भावनाओं को लाये बिना नहीं माने। दालमंडी में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म वाले लोगों की दुकानें और मकान हैं जिनका वे लोग बढ़ा हुआ किराया चाहते हैं लेकिन मन में यह भी मानते हैं कि यह एक सामाजिक समस्या है। इस समस्या पर जब वे बहस करते हैं – तो कुछ और ही कहते हैं। यथा –

हाजी हाशिम बोले, बिरादराने वतन की यह नयी चाल देखी ? बल्लाह इनको सूझती खूब है। बगली घूस

मारना कोई इनसे सीख ले। मैं तो इनकी रेशादवानियों से इतना बदजन हो गया हूँ कि अगर इनकी नेक नियती पर ईमान लाने में नजात भी होती हो तो न लाऊँ।

अबुलवफा इस तथ्य को राजनीतिक रंग देकर प्रस्तुत करते हैं। उनके विचार में यह कार्य मुस्लिम बोटरों की संख्या कम करने का एक षड़यन्त्र है –

"मगर अब खुदा की फज़ल से हमको भी अपने नफे–नुक्सान का एहसास होने लगा है। यह हमारी तादाद को घटाने की सरीह कोशिश है। तवायफें 60 फीसदी मुसलमान हैं जो रोज़े रखती हैं, इजादारी करती हैं,मौलूद और उर्स करती हैं। हमको उनके ज़ाती फेलों से कोई बहस नहीं है। नेक व बद की सजा व जज़ा देना खुदा का काम है। हमको तो सिर्फ उनकी तादाद से गर्ज़ है।"

अबुलवफा की धूर्तता परले सिरे की है। वे राजनीतिक स्वार्थ के वशीभूत होकर हर तथ्य से आखँ मूँद लेना चाहते हैं तो अली उनसे पूछते हैं कि "मगर उनकी तादाद, क्या इतनी ज्यादा है कि उससे हमारे मुजमई वोट परकोई असर पड़ सकता है ? तो अबुलवफा कहते हैं –

"कुछ न कुछ तो पड़ेगा। ख्वाह यह कम हो या ज्यादा। बिरादराने वतन को देखिए, वह डोमड़ों तक को मिलाने की कोशिश करते हैं। उनके साये से परहेज करते हैं, उन्हें जानवरों से भी ज़लील समझते हैं, मगर महज अपने पोलिटीकल मफाद के लिए उन्हें अपने कौमी जिस्म का एक अजो बनाये हुए हैं। डोमड़ों का शुमार जरायम पेशा अकवाम में है। आलि, हाजा पासी भर बगैरह इसी जेल में आते हैं। सरका, कत्ल, रहजनी यह उनके पेशे हैं। मगर जब उन्हें हिन्दुओं से अलहदा करने की कोशिश की जाती है तो बिरादराने वतन कैसे चिरागया होते हैं "वेद और शासतर की सनदें नकल करते फिरते हैं। हमको इस मुआमिले में उन्हीं से सबक लेना चाहिए।"

मुसलमानों में सभी हाजी आशिम और अबुलवफा की भाँति न थे। उनमें भी कुछ समझदार लोग थे जैसे कि सैयद शफकत अली। वे कहते हैं –

"इन जरायम पेशा अकवाम के लिए गवर्नमेंट ने शहरों में खित्त अलेहदा कर दिए। उन पर पुलिस की निगरानी रहती है। मैं खुद अपने दौराने मूलाजिमत में उनकी नकल व हरकत की रिपोर्ट लिखा करता था। मगर मेरे ख्याल में किसी ज़िम्मेदार हिन्दू ने गवर्नमेंट के इस तर्जे अमल की मुखालिफत नहीं की। हालांकि मेरी निगाह में सरका, कत्ल बगैरह इतने मकरुह फैल नहीं हैं, जितनी असमत फरोशी। डोमनी भी जब असमतफरोशी करती है, तो वह अपनी बिरादरी से खारिज कर दी जाती है ..... अगर इन तवायफों की दिनदारी के तुफैल में सारे इस्लाम को खुदा जन्नत अता करे, तो मैं दोजख में जाना पसंद करूँगा। अगर उनकी तादाद की बिना पर हमको इस मुल्क की बादशाही भी मिलती हो, तो मैं कबूल न करू। मेरी राय तो यह है कि इन्हें मरकज शहर ही से नहीं, हदूद शहर से खारिज कर देना चाहिए।"

हिन्दुओं में भी साम्प्रदायिक भावना को उभार कर स्वार्थ सिद्धि करने वाले सदस्यों की कमी नहीं थी। जब वेश्या समस्या पर विचार करने के लिए मुसलमानों के जलसे की बात हिन्दू सदस्यों को पता चली तो उनके भी कान खड़े हुए। उन्हें मुसलमानों से जो आशा थी। वह भंग हो गई। दालमंडी चौक की दुकानों में से अधिकांश सेठ बलभद्रदास और सेठ

चिम्मनलाल की थीं। पंडित दीनानाथ के कितने ही मकान दालमंडी में थे। प्रभाकर राव पेशे से पत्रकार थे और मुसलमानों के कट्टर विरोधी थे। पंडित दीनानाथ प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहते हैं –

"हमारे मुसलमान भाइयों ने तो इस विषय में बड़ी उदारता दिखाई पर इसमें एक गूढ़ रहस्य है। उन्होंने एक पंथ दो काज वाली चाल चली है। एक ओर तो समाज सुधार की नेकनामी हाथ आती है, दूसरी ओर हिन्दुओं को हानि पहुंचाने का एक बहाना मिलता है।"

सेठ चिम्मनलाल ने सारे विषय को साम्प्रदायिकता के रंग में रंगते हुए कहा– "मुझे पोलिटिक्स से कोई वास्ता नहीं है और न मैं इसके निकट जाता हूँ लेकिन यह कहने से तनिक भी संकोच नहीं है कि हमारे मुस्लिम भाइयें ने हमारी गरदन बुरी तरह पकड़ी है। दालमंडी और चौक के अधिकांश मकान हिन्दुओं के हैं। यदि बोर्ड ने स्वीकार करलिया तो हिन्दुओं का मटियामेट हो जायेगा। छिपे–छिपे चोट करना मुसलमानों से सीखे। अभी बहुत दिन बीते कि सूदकी आड़ में हिन्दुओं पर आक्रमण किया गया था। जब वह चाल पलट गई तो नया उपाय सोचा।"

रुस्तम भाई इन दोनों माननीय सदस्यों की बात काटते हुए कहते हैं –

"उन्होंने इस विषय में जो कुछ निश्चित किया है वह सार्वजनिक उपकार के विचार से किया है। अगर इससे हिन्दुओं को अधिक हानि हो रही है तो दूसरी बात है। मुझे विश्वास है कि मुसलमानों की इससे अधिक हानि होती तब भी उनका यही फैसला होता। अगर आप सच्चे हृदय से मानते हैं कि यह प्रस्ताव एक सामाजिक कुप्रथा के सुधार के लिए है, तो आपको उसको स्वीकार करने में कोई बाधा न होनी चाहिए, चाहे धन की कितनी ही हानि हो। आचरण के सामने धन का कोई महत्त्व न होना चाहिए।"

साम्प्रदायिक समस्या के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने हिन्दू और मुसलमानों की अतिवादी विचारधारा का उल्लेख कर इस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि कुछ लोगों की उग्र विचारधारा साम्प्रदायिक भावनाओं को इस प्रकार उभार देती है कि लोगों में परस्पर वैमनस्य बढ़ जाता है।

6.3.5 वेश्यावृत्ति की समस्या

सेवासदन की प्रमुख समस्या वेश्यावृत्ति की समस्या पर प्रकाश डालना है। प्रेमचन्द ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि सिद्धांत रूप में वेश्याएँ घृणित समझी जाती हैं किन्तु सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में उनका इतना अधिक मान–सम्मान किया जाता है कि वे ऐशो आराम का जीवन यापन करती हैं। यही नहीं कुलवधुओं को उनसे ईर्ष्या होने लगती है। सुमन के वेश्यावृत्ति की ओर उन्मुख होने का कारण भी जगह–जगह भोलीबाई का आदर और सम्मान होना ही है।

सुमन ने सुन रखा था कि वेश्याएँ अत्यन्त दुश्चरित्र और कुलटा होती हैं। वे अपने कौशल से नवयुवकों को अपने माया जाल में फँसा लिया करती हैं। कोई भलामानुस उनसे बातचीत नहीं करता, केवल शोहदे रात को छिपकर उनके यहाँ जाया करते हैं। भोली ने कई बार उसे चिक की आड़ में खड़े होकर इशारे से बुलाया था, परसुमन उससे

बोलने में अपना अपमान समझती थी। मैं दरिद्र सही, दीन सही, पर अपनी मर्यादा पर दृढ़ हूँ, किसी भलेमानुस के घर में मेरी रोक तो नही, कोई मुझे नीच तो नहीं समझता। वह कितना ही भोग–विलास करे, पर उसका कहीं आदरतो नहीं होता। बस अपने कोठे पर बैठी अपनी निर्लज्जता और अधर्म का फल भोगा करे।

सुमन का यह आत्म–गर्व शीघ्र ही खंडित होता है। धीरे–धीरे उसे अनुभव होने लगता है कि भोली को वह जितनी नींच समझती है, वास्तव में उसकी स्थिति वैसी नहीं है। समाज में उसका आदर है। मन्दिर में रामनवमी के दिन भोली का गाना होता है। होली के दिन पंडित पद्मसिंह के यहाँ भोली का गायन सुनकर तो सुमन की विचारधारा ही पलट जाती है। वेश्यावृत्ति ग्रहण करने के बाद वह स्पष्ट रूप से पद्मसिंह से कहती है–

आदर में वह संतोष है जो धन और भोग विलास में नहीं है। मेरे मन में नित्य यही चिन्ता रहती थी कि आदर कैसे मिले। इसका उत्तर मुझे कितनी ही बार मिला, लेकिन आपके होली वाले जलसे के दिन जो उत्तर मिला, उसनेभ्रम दूर कर दिया, मुझे आदर और सम्मान का मार्ग दिखा दिया। यदि मैं उस जलसे में न आती तो आज मैं अपने झोंपड़े में संतुष्ट होती। आपको मैं बहुत सच्चरित्र पुरूष समझती थी, इसलिए आपकी रसिकता का मुझ पर और भी प्रभाव पड़ा। भोलीबाई आपके सामने गर्व से बैठी हुई थी, आप उसके सामने आदर और भक्ति की मूर्ति बने हुए थे। आपके मित्र–वृन्द उसके इशारों पर कठपुतली की भाँति नाचते थे। एक सरल हृदय आदर की अभिलाषिणी स्त्री पर इस दृश्य का जो फल हो सकता था वही मुझ पर हुआ।

इस वेश्यावृत्ति की समस्या पर प्रेमचन्द ने सुधार के काम में सक्रिय रूप से पंडित पद्मसिंह और विट्ठलदास को काम करते दिखाया है। नगर से बाहर वेश्याओं की पुत्रियों के लिए सेवासदन नामक अनाथालय तथा सुधारगृह की स्थापना की गई। इसके लिए अनेक वेश्याओं ने अपनी सम्पत्ति का दान किया। इस सेवासदन में वेश्याओं की कन्याऐं पढ़ने–लिखने तथा सिलाई–कढ़ाई आदि कार्य सीखने लगीं।

6.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में अनेक समस्याओं को उठाया है, किन्तु उनका ध्यान वेश्यावृत्ति के प्रसार के कारणों पर प्रकाश डालना रहा है। इसके साथ ही उन्होंने गांधीवादी अदर्शों के अनुसार सेवासदन की स्थापना कराकर उक्त समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया है।

6.5 कठिन शब्द

1. विषमता
2. अनुगामी
3. निरूपण
4. अवलोकनीय
5. मातहत
6. सन्मार्ग
7. मालगुज़ारी
8. छोलदारियाँ
9. नलिश
10. नेकनामी

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. सेवासदन उपन्यास की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न. धार्मिक ठगी की समस्या उपन्यास में चित्रित हुई है, इस पर टिप्पणी कीजिए।

प्रश्न. 'सेवासदन' उपन्यास में अभिव्यक्त साम्प्रदायिक विद्वेष की समस्या पर नोट लिखिए।

प्रश्न. 'सेवासदन' उपन्यास में अभिव्यक्त दहेज समस्या पर प्रकाश डालिए।

6.7 पठनीय पुस्तकें :

1 सेवासदन – प्रेमचन्द

2 प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृत्तित्व – हँसराज 'रहबर'

3 प्रेमचन्द – सं० सत्येन्द्र

4 प्रेमचन्द और उनका युग – डॉ० राम विलास शर्मा

—— 0 ——

'सेवासदन' उपन्यास में चित्रित नारी

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 सेवासदन उपन्यास में चित्रित नारी

7.4 सेवासदन उपन्यास में नारी के विविध रूप

7.5 सारांश

7.6 कठिन शब्द

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.8 पठनीय पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप :–

– 'सेवासदन' में नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं को जानेंगें।

– नारी के मनोवैज्ञानिक पक्ष को समझेंगे।

– आर्थिक विषमता हेतु नारी संघर्ष को जानेंगे।

7.2 प्रस्तावना

भारत के हिन्दू समाज में नारी का प्राचीन काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था, वह उच्च शिक्षा की अधिकारिणी थी तथा उसे समाज में महत्वपूर्ण अधिकार भी प्रदान किये जाते थे परन्तु नारी की यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकी

और जैसे–जैसे भारत पर विदेशी आक्रमण हुए वैसे ही नारी की स्थिति शोचनीय हो गयी। प्रेमचन्द ने अपनेसाहित्य में उन सभी वर्गों को चित्रण का आधार बनाया जो कि शोषित एवं दलित थे। नारी की दयनीय स्थिति को हृदयंगम करके उसके विविध रूपों को उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की।

7.3 सेवासदन उपन्यास में चित्रित नारी

नारी के जीवन संघर्ष का चित्रण – जीवन संघर्ष में पिसने वाले व्यक्ति का चित्रण प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में सुमन के जीवन के चित्रण के माध्यम से किया है। इससे पता चलता है कि उस समय का व्यक्ति जीवन संघर्ष में किस प्रकार से पिस रहा था। लड़की का विवाह करने के चक्कर में जब दरोगा कृष्णचन्द्र वर की तलाश में निकलते हैं तो लेन–देन की बात सुनकर उनकी आँखों के आगे अंधेरा छा जाता है क्योंकि कोई चार हज़ार सुनाता कोई पाँच हज़ार और कोई इससे भी आगे बढ़ जाता। यह सब सुनकर कृष्णचन्द्र को अपनी ईमानदारी और सच्चाई पर पश्चाताप होने लगा और उन्होंने निश्चय कर लिया अब लोगों को खूब दबाऊँगा, खूब रिश्वत लूँगा। यह सुनकर उनकी पत्नी गंगाजली सिर झुकाये चुपचाप दुखित होती रही और आँखों से आँसू बहाती रही। यही कारण बनता है सुमन और गंगाजली के आर्थिक संघर्ष का। कृष्णचन्द्र के जेल चले जाने पर सुमन का सम्बन्ध जहाँ पर पक्का हुआ था वहाँ से साफ जवाब आ गया। गंगाजली के सामने अब विकट समस्या थी कृष्णचन्द्र के रुपये सब मुकदमें में लग चुके थे। एक साल की दौड़–धूप के बाद उमानाथ बिना दहेज वाले तीस वर्षीय वर को सोलह वर्षीय सुमन के लिए पा सके। गंगाजली के पूछने परउन्होंने बताया – शहर में कोई कुरूप तो होता ही नहीं सुन्दर बाल उजले कपड़े सभी के हैं और गुण शील, बातचीत का तो पूछना ही क्या? बात करते मुँह से फूल झड़ते हैं नाम है गजाधर प्रसाद। परन्तु जब गंगाजली ने दामाद को देखा तो खूब रोई उसे ऐसा दुख हुआ मानों सुमन को कुएँ में डाल दिया।

ससुराल में आकर सुमन की स्थिति की दारुण कथा प्रारम्भ होती है दो महीने बाद ही गजाधर की बूढ़ी बुआ चल बसी। सुमन को चौका बर्तन, नल से पानी भरने आदि सभी कार्य करने पड़े। मकान में केवल दो कोठरियाँ थीं और एक सायबान। दीवारों में चारों ओर लोनी लगी थी। बाहर से नालियों की दुर्गन्ध आती रहती थी। धूपऔर प्रकाश का कहीं गुजर नहीं।

गजाधर ने सुमन को घर की स्वामिनी बना तो दिया पर वह स्वभाव से कृपण था। सुमन भी गृह प्रबन्ध में कुशल न होने के कारण आवश्यक और अनावश्यक खर्च में भेद नहीं कर पाती थी। उसने गृहिणी बनने की नहीअपितु इन्द्रियों के आनन्द भोग की शिक्षा पाई थी। अतः महीना पूरा होने से पहले ही रुपये खर्च हो जाते। बातें–बातों में दोनों का झगड़ा हो गया। अन्त में सुमन ने अपनी हँसुली गिरवी रख दी। गजाधर कारखाने से लौटते ही एक दूसरी दुकान पर हिसाब–किताब लिखने जाने लगा। वहाँ से आठ बजे लौटता। उसका संचयशील हृदय खा–पीकर बराबर वाली दशा से बड़ा दुखी रहा करता था। उस पर सुमन अपने फूटे भाग्य का रोना रोती रहती थी। गजाधर को स्पष्ट दिखाई देता था कि सुमन का हृदय उसकी ओर से शिथिल होता जा रहा है। उसे यह न मालूम था कि सुमन मेरी प्रेम रसपूर्णबातों से मिठाई के दोनों को अधिक आनन्दप्रद समझती है अतएव वह अपने प्रेम और परिश्रम से पल न पाकर, उसे अपने शासनाधिकार से प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। इस प्रकार दोनों में तनातनी बढ़ती गयी।

सुमन पड़ोस की स्त्रियों में बैठने लगी। उसके पड़ोस में भोली नाम की वेश्या रहती थी वह भी सुमन के यहाँ आ जाती थी। यह बात गजाधर को बुरी मालूम होती थी। एक बार वकील साहब के यहाँ भोली का मुजरा हुआ और रात में देर से सुमन घर पहुँची तो गजाधर उससे इतना नाराज हुआ कि उसे घर से निकाल दिया। वह शरण लेने पद्मसिंह के घर पहुँची पर उन्होंने भी बदनामी के भय से उसे निकाल दिया। अन्त में उसे भोली के यहाँ शरण मिली।

उमानाथ के घर से गंगाजली की हालत दयनीय थी। वह बीमार थी, उसे देखने उमानाथ गये। वह बेसुध पड़ी हुई थी। बिछावन चिथड़ा सा हो रहा था। साड़ी फट कर तार–तार हो गयी थी, शांता उसके पास बैठकर पंखा झोल रही थी। यह करुणाजनक दृश्य देखकर उमानाथ रो पड़े। गंगाजली की मृत्यु के उपरान्त शांता की दशा नौकरानी जैसी हो गई। कृष्णचन्द्र जेल से छूटकर आये, तो उन्होंने घर गृहस्थी संभालने की कोई चिन्ता न की और जब शांता का विवाह न हो सका तो आत्महत्या कर ली।

उपन्यास के नारी पात्र जीवन संघर्ष से जूझते हैं जिसका सबसे बड़ा उदाहरण सुमन है। प्रेमचन्द ने वेश्यावृत्ति जो दहेज का दुष्परिणाम है, को प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ स्त्री की उन कोमल भावनाओं से हमें अवगत कराया है जो उनके भीतर के बदलाव का कारण होते हैं । जिन हालात के चलते सुमन अपने को वेश्यावृत्ति में झोंकदेती है।

सुमन में संयम तो है पर लिप्सा हेतु संघर्ष की लिप्सा वह नहीं जो महत्वाकांक्षा कही जा सके, वह लिप्सा जो सीमाओं के दुख से मुक्ति चाहती है यदि सुमन सुख और प्रतिष्ठा चाहती है तो उसमें पाप नहीं कमाती परउसे पाने के जिस मार्ग का वह अवलम्बन करती या जिसका उसे अवलम्बन करना पड़ता है बस वहीं, और वही पाप है। इसी लिप्सा का संयम के सुख से संघर्ष है।

नारी के आदर्श रूप का चित्रण – प्रेमचन्द ने समाज की विभिन्न समस्याओं का चित्रण इस उपन्यास में किया है तो वहीं नारी के आदर्श रूप को भी वर्णित किया है। उपन्यास की नायिका सुमन प्रतिष्ठित परिवार में पली हुई स्वरूपवान और अभिमानी नवयुवती है, पिता को रिश्वतखोरी के अपराध में जेल हो जाने के कारण पराश्रित हो जाती हैऔर फलतः उसके मामाजी उसका विवाह अयोग्य वर गजाधर के साथ कर देते हैं। गजाधर सुमन के समान न तो गुणवान था और न ही बुद्धिमान और रूपवान। गजाधर एक 75 रुपए तनखाह पाने वाला साधारण नौकर है जो सुमन के साथ मेल नहीं खाता है, हर सूरत से सुमन के सम्मुख फीका पड़ा हुआ है। सुमन के रूप पर गजाधर मुग्ध है, किन्तु बड़े घरकी बेटी की एक दरिद्री वातावरण में कैसे निभ सकती है। सगर्वा प्रकृति की सुमन पास–पड़ोस में अपने अमीराना व्यक्तित्व के कारण काफी प्रसिद्ध हो जाती है, पर प्रत्यक्ष जिन्दगी में अभावों की उपस्थिति ने उसके मूल अहं को अधिकाधिक जागृत किया – यहाँ तक कि उसका प्रत्येक व्यवहार पति की शान्ति को चुनौती देने लगता है। दोनों के बीच तनावोंकी स्थिति इतनी नाजुक हो जाती है कि दोनों की सहन–शक्ति टूटने के स्तर तक पहुँच जाती है। बीच–बीच में सुमन के मानस पर पारंपरिक आदर्शों का प्रभाव पड़ता है, वह अपने–आपको रोकने का प्रयत्न भी करती है किन्तु कृत्रिम बन्धनों से मुक्ति पाने की उसकी कामना इतनी बलवती है कि अन्त में सुमन भोलीबाई वेश्या का आश्रय ले लेती है। भारतीय परिवार में पली हुई लड़की वेश्या व्यवसाय की ओर क्यों आकर्षित हुई? क्या सुमन गजाधर के कमजोर व्यक्तित्व से मुक्तनहीं होना चाहती? यहाँ पत्नी का पति के पवित्र प्रभाव से मुक्त होना नहीं है अपितु एक मानिनी स्त्री का अनमेल पुरुष व्यक्तित्व

से छुटकारा पाना है। कृत्रिमता की अस्वीकृति से ऐसे स्थान की स्वीकृति है जहाँ क्षणिक क्यों न हो, मुक्ति का आनन्द मिलता है। यह नहीं कि अनमेल पति से मुक्ति पाने का साधन वेश्या व्यवसाय है। वेश्या–व्यवसाय भी एक भयंकर गुलामी है जहाँ न व्यक्तित्व की पवित्रता सुरक्षित रहती है न आत्मा की प्रतिष्ठा। एक बन्धन से मुक्त होकर उपन्यास की नायिका स्वाधीनता की सांस लेना चाहती है। उसने अपने अनुभवों से जाना कि समाज में वेश्याओं की कितनी ऊँची कद्र होती है। धर्म का, आदर्शों का, सुधारों का नारा लगाने वाले बड़े–बड़े व्यक्तित्व भोली भाई की एक नज़र के भूखे हैं। वह अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की रक्षा करने के लिए भोलीबाई का मार्ग अपनाती है। किन्तु उस जीवन का अनुभव लेने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचती है कि उसका वह मार्ग भी घृणित है – वहाँ भी आत्मा की स्वतन्त्रता का आनन्द नहीं। वह फिर से छटपटाने लगती है। परदे के बाहर आने की कामना की थी, फिर से बंधनों में फँस जाती है। सुमन के मन में कई मानसिक उद्वेलन, कई आन्दोलन, आतंक, क्रोध आदि भावनाओं का चक्र आरम्भ हो जाता है। वेश्या व्यवसाय की गर्त में पड़ी हुई सुमन एक ऐसे पुरुष की खोज में लग जाती है जिसके सम्मुख वह अपनी छटपटाहट को व्यक्त कर सके, जिसके साथ होकर स्वाधीनता का आनन्द ले सके। सुमन के यहाँ आने वाले कई क्षुद्र लोगों में एक युवक सदनसिंह है जिसमें अन्यों की सी कायरता एवं क्षुद्रता नहीं है। सदन सुस्वरूप युवक है जिसका हृदय सरल है, सुमन पर उसका निस्वार्थ प्रेम है। सुमन सदन की ओर खिंचती चली जाती है। वेश्या व्यवसाय करके भी वह सदन के सामने अपने व्यक्तित्व की पवित्रता को प्राप्त करती है। सुमन का सदन की ओर आकर्षित होना क्या एक बंधन से मुक्ति पाने की कामना का परिचायक नहीं है? वेश्या–व्यवसाय जैसे घृणित कर्म से छुटकारा पाने की छटपटाहट का अन्त हो जाता है परन्तु वेश्यालय में रह कर भी सुमन चरित्रवान बनी रहती है। सुमन वेश्यालय से निकल विधवाश्रम की राह स्वीकार करती है। सुमन के आदर्श जीवन की यात्रा का प्रारम्भ यहाँ से होता है। इधर सुमन की बहन शांता का विवाह हो जाता है किन्तु सदन के पिता को इस बात का पता चल जाने पर कि शांता सुमनबाई वेश्या की बहन है, शांता को बिन साथ लिये सदन की बारात लौट जाती है। द्रवित होकर शांता आत्महत्या का प्रयास करती है परन्तु सदन उसे बचा लेता है। सुमन के समझाने पर सदन शांता को अपनाता है और सुमन विधवाश्रम से निकल सदन के घर रहने लगती है। बहन और बहनोई की सेवा करना, पास–पड़ोसे के श्रमिकों की परिचर्चा करना, आत्म–शुद्धि के लिए धार्मिक ग्रन्थों का पठन–पाठन करना – इसमें वह अपना समय बिताना चाहती है। सेवा के पवित्र कार्य में आत्मा की स्वाधीनता का आनन्द लेने की उसकी कामना भी पूरी नहीं होती। अजीब संयोग है कि जिस सदन को उसने प्यार किया था, उसी के यहाँ एक सेविका के रूप में रहना पड़ रहा है। उसका सेवा भाव बढ़ गया है। ज्ञान की जगह भक्ति ने ली है किन्तु शांता और सदन के मुँह से कृतज्ञता के शब्द नहीं अपितु अविश्वास एवं घृणा की भावना प्रकट होने लगती है। सगर्वा एवं अपनी स्वतन्त्र चेतना की रक्षा करने वाली सुमन के लिए यह असहनीय हो जाता है। फिर से बन्धन मुक्ति की छटपटाहट आरम्भ होने लगती है। वह वहां से भाग जाना चाहती है। पर कहां? बिना सहारे के संसार में रहने के विचार से उसका कलेजा कांपने लगता है किन्तु मुक्ति की कामना इतनी व्यग्र है कि वह अपना भविष्य निश्चित कर लेती है। उसके अनुसार, 'जीवन का प्रभात होगा, कभी उसमें भी उषा की झलक दिखायी देगी, कभी सूर्य का प्रकाश होगा।' सुमन पति गजाधर के आदेशानुसार एवं विट्ठलनाथ के प्रयत्न हेतु सेवासदन की राह लेती है। भौतिक आकर्षणों से मुक्त होकर सेवा के पवित्र कर्म में अपने आपको अर्पित कर देती है। अब सुमन केशहीन, आभूषण विहीना स्त्री है। उसमें न वह

कोमलता है, न वह चंचलता, न वह मुस्कराती हुई आँखें, न हँसते हुए होंठ। रूप–लावण्य की जगह पवित्रता की ज्योति झलकती हुई दिखाई देती है।

अतः स्पष्ट है कि सुमन की जीवन यात्रा स्वतन्त्र चेतना की यात्रा है – आत्मा में छिपे परमात्मा को पाने की यात्रा है। चंचलचता और तृष्णा से विरक्त हो वह धार्मिक पथ का अनुसरण करती है। धन की अपेक्षा वह सेवा–निरत हो जीवन को परिवर्तित कर देती है। उसका त्यागमय जीवन और सेवा–भाव उसे अत्यन्त ऊँचे स्थान पर बिठा देता है।

नारी का मनोवैज्ञानिक पक्ष – 'सेवासदन' उपन्यास में नारी भावना के पीछे छुपे दृष्टिकोण में प्रेमचन्द का नारी मनोविज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्द के सेवासदन उपन्यास में सुमन, शान्ता, सुभद्रा, गंगाजली, भोली, भामा आदि स्त्री पात्रों की मनोदशा, मनोव्यथा, मनोभावना को बड़ी बारीकी से पकड़ा है। उपन्यास की नायिका सुमन कभी विद्रोहिणी गर्वीली कभी त्याग–ममता की छवि कभी असहाय कभी शक्तिशाली बन जाती है। सुभद्रा कभी नीरस कभी प्रेमभरी, शान्ता कभी शान्त कभी इच्छाओं से भरी, कभी भोली भाली, कभी स्वार्थी, गंगाजली कभी हतोत्साहित, कभी उत्साह भरी। भामा कभी क्रोध, कभी क्षमा यह सभी मनोभाव 'सेवासदन' के स्त्री पात्रों में उपस्थिति और अनुपस्थित चलते रहते हैं। इसके पीछे छिपा नारी मनोविज्ञान उभर कर आता है।

उपन्यास की सुमन बहुत गर्वीली है उसकी इच्छाएँ और आकाक्षाएँ बहुत ऊँची हैं अपने पिता के घर में शान से रहती है। पिता कृष्णचन्द अपनी बेटियों की सभी इच्छाएँ पूरी करते हैं। सुमन जो चीज़ पसन्द करती है वह उसे हर कीमत पर लेना चाहती है परन्तु शान्ता को जो मिलता है उसे सहर्ष स्वीकार करती है। सुमन का यह चरित्र आरम्भ से अन्त तक उतार चढ़ाव देखता है इसके पीछे छिपा नारी मनोविज्ञान ही है जो कभी दृढ़ और कभी द्वन्द्व भरा चलत रहता है। संघर्ष उसके जीवन पर्यन्त चलता रहता है। पिता के घर रहते हुए सुमन के जीवन में ऐसा मोड़ आता है कि उसकी शादी बेमेल गजाधर से कर दी जाती है जहाँ पग–पग उसके आत्म सम्मान पर गहरी चोट लगती है और एक दिन पति द्वारा दुत्कार दी जाती है, "चली जा मेरे घर से।"

स्वाभिमानी सुमन न पैर पड़ती है न गिड़गिड़ाती है अपितु उसका स्वाभिमान जाग उठता है, "हाँ यों कहो कि मुझे रखना नहीं चाहते मेरे लिए सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मँजूरी करूँगी वहीं पेट पाल लूंगी" सुमन का यही नारी मनोविज्ञान ही है जो उसे दृढ़ बनाता है। यदि सुमन अपने सौन्दर्य से पति को आकर्षित करती है किन्तु उसकी गृह प्रबन्ध की अनभिज्ञता सदैव खटकती है। सुमन और गजाधर के पीछे गहरा मनोविज्ञान है जिससे दोनों के मन में एक दूसरे को लेकर खटक बनी रहती है। सुमन को धन की प्यास तीव्र है इसलिए उसे गजाधर के पास सन्तुष्टि नहीं मिल पाती है। वह उसे सदन में खोजने की कोशिश करती है। लेकिन विवाहित और गजाधर से ठोकर खाने के बाद वह संभलकर चलना चाहती है लेकिन यहाँ पर भी मन का द्वन्द्व जोर पकड़ता है। सदन से मिलने के द्वन्द्व के पीछे नारी की मनोदशा ही है जो लगाव महसूस करती है, "सदन के आने का समय हुआ। सुमन आज उससे मिलने के लिए बहुत उत्कंठित थी। आज यह अन्तिम मिलाप होगा। मुझे यह वियोग सहने की शक्ति दीजिए नहीं इस समय सदन न आये तो अच्छा है, उससे न मिलने में ही कल्याण है। कौन जाने उसके सामने मेरा संकल्प स्थिर

रह सकेगा या नहीं। पर आ जाता तो एक बार दिल खोलकर उससे बातें कर लेती उसे इस कपट सागर में डूबने से बचाने की चेष्टा करती।" यह नारी मन ही है जो त्याग, प्रेम, चिन्ता सभी भावों के समावेश के साथ कभी–कभी गहरे द्वन्द्व में फंस जाता है। यहां नारी स्थिति का भी वर्णन है जो परिस्थितिवश उपजा है। सदन की बारात वापिस जाना और सुमन का सदन को फटकारना उसके मन का सारा इकट्ठा हुआ बवाल बाहर निकलने का परिचायक है। प्रेमचन्द नारी की मनोदशा का यथार्थ रूप में वर्णन करते हैं। प्रेमचन्द को यह विदित था कि "नारी में मान सामान्यसी बात है किन्तु जब स्त्री में इस मान भावना का उदय हो जाता है तब वह दुराग्रह का रूप धारण करता है। उस अवस्था मे ऐसा मान अनुचित तथा अग्राह्य प्रतीत होता है क्योंकि सीमित मान जहां मनोविनोद के कारण ग्राह्य है, वहाँ असीमित मान उदण्डता के कारण ही अग्राह्य बन जाता है।"

उमानाथ की पत्नी जाह्नवी इस मान का जीता–जागता उदाहरण है। जाह्नवी के मन में सुमन और शान्ता के लिए प्रेम नहीं है। वह उमानाथ से भी उनके प्रति द्वेषपूर्ण बातें करती है जिस कारण उनका जीवन कष्टमय बनता है। शान्ता की बात करें तो वह सदन से विवाह की आस लगाए हुए है। उसे बेचैनी रहती है कि किसी भी तरह सब सही हो जाए, "शान्ता को अभी तक यह आशा थी कि कभी न कभी मैं पति के घर अवश्य जाऊँगी, कभी न कभी स्वामी के चरणों में अवश्य ही आश्रय पाऊँगी। वह व्यथित हो कह उठती है, "वह कहाँ है मेरे स्वामी मेरे जीवन का आधार, उन्हें बुलाओ, आकर मुझे दर्शन दे, बहुत जलाया है, इस दाह को बुझाए मैं उनसे कुछ पूछूंगी। आज मेरी उनसे तकरार होगी, नहीं, मैं उनसे तकरार न करूँगी, केवल यही कहूँगी कि अब मुझे छोड़कर कहीं मत जाओ।" शान्ता की यह बातें उसके अर्न्तमन की बातें हैं। वह सदन को लेकर व्यथित है। इस हेतु वह अचेतन अवस्था में पहुँचती है और फिर सुमन के प्रयत्नों के बाद चेतन अवस्था में आती है। सदन को पाने के उपरान्त वह सुमन को भी शक की नज़र से देखती है। वह यह भूल जाती है कि इस बहन के कारण ही वह सदन को पा सकी है। यह शान्ता का मनोविज्ञान ही है कि जो बचपन में उसे शान्त और बाद में उसे इतना विद्रोही बना देता है। सेवासदन की सुभद्रा का चरित्र निरन्तर परिपक्वता की तरफ बढ़ता दिखाई देता हे। सुभ्रदा मातृत्व सुख से वंचित रह गयी तभी तो वह पदमसिंह के भतीजे सदन के प्रतिअपनी ममता न महसूस कर पाई। सदन के घोड़े की मांग वह अपने पास इकट्ठा हुआ सारा धन देकर पूरी करती है। उपन्यास की पात्रा वेश्या भोली परिस्थिति वश इस धन्धे में आ गयी। उसके चाहने वाले कितने थे परन्तु नारी का मन झूठे सम्मान को स्वीकार नहीं कर पाता है वह कहती है, "हम कोई भेड़–बकरी नहीं है कि माँ–बाप जिसके गले में मढ़ दे, बस उसी के हो रहे। अगर अल्लाह को मंजूर होता कि तुम मुसीबतें झेलो, तो तुम्हें परियों की सूरत क्यों देता?यही बेहूदा रिवाज़ यहीं के लोगों में है कि औरत को इतना जलील समझते हैं।" भोलीबाई को व्यवस्था के प्रति इतना आक्रोश है, कि जिस कारण से वह वेश्या जीवन में लिप्त हुई। भोली बाई चेतन है, जिसके कारण उसमें इस परिस्थिति से लड़ने की क्षमता है। उपन्यास की गंगाजली कृष्णचन्द्र के जेल जाने से अस्थिर एवं असहाय महसूस करती है। उसे अपनी अदूरदर्शिता पर क्रोध आता है। शोक और आत्मवेदना की एक लहर बादल से निकलने वाली धूप के सदृश उसके हृदय पर आती हुई मालूम हुई। इसके पीछे नारी का मनोविज्ञान ही है जो अपने पति को जेल जाता देखकर और दो बिन ब्याही लड़कियों की चिन्ता से इतनी विचलित हो जाती है। घृणा का भाव उत्पन्न होने लगता है और मन एक तरह से अचेतन अवस्था में पहुँच जाता है। उपन्यास के विभिन्न नारी पात्रों की मनोदशा से उनके मनोविज्ञान का पता लगता है। 'सेवासदन' में

नारी मन की विभिन्न गुत्थियाँ सुलझाने में प्रेमचन्द सफल हुए हैं। प्रेम, घृणा, पीड़ा को मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्रित किया है तथा परिवेशजन्य नारी मानसिकता का चित्रण हुआ है। इसमें नारी पात्रों के अर्न्तद्वन्द्व, अचेतन मनस्थिति, अहम, कुंठा सभी भावों का चित्रण हुआ है।

7.4 सेवासदन उपन्यास में नारी के विविध रूप

बेटी के रूप में – दारोगा कृष्णचन्द्र की लाडली बड़ी बेटी सुमन के आरंभिक जीवन से संबद्ध कुछ सूचनाएँ उपन्यास में यत्र–तत्र दी गयी हैं। वह "दूसरों से बढ़चढ़कर रहना चाहती थी। यदि दोनों बहनों को बाजार से एक ही प्रकार की साड़ियाँ आती थीं तो सुमन मुँह फुला लेती थी। शान्ता (छोटी लड़की) को जो कुछ मिल जाता, उसी मे प्रसन्न रहती थी।" दारोगा कृष्णचन्द्र अपनी हैसियत को देखते हुए काफी शाहखर्च थे। वे लड़कियों को ऐशोआराम से रहने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ते थे। बाज़ार से उनके लिए अच्छे–से–अच्छे कपड़े और नयी–नयी मनबहलाव की चीजें लाते। उन्होंने लड़कियों को पढ़ाने–लिखाने और कढ़ाई–सिलाई की शिक्षा देने के लिए एक विशेषज्ञ ईसाई महिला को नियुक्त कर दिया था।

अपने इस परिवेश में सुमन जिन्दगी के प्रति काफी लापरवाह हो गयी थी। वह सुन्दर तो थी ही, इस परिवेश ने उसे चंचल और अभिमानी भी बना दिया था। भावनाओं और इच्छाओं की अबाध पूर्ति ने उसे सुखोपभोग का आदती बना दिया था। इस अच्छा खाने, अच्छा पहनने की प्रबल इच्छा की पूर्ति को ही उसने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया था। गुणवती होने के बावजूद 'उसने गृहिणी बनने की नहीं, इन्द्रियों के आनन्द भोग की शिक्षा पायी थी। अपने द्वार पर खोमचे वालों की आवाज सुन कर उससे रहा नहीं जाता।' सौन्दर्याभिमान ने उसे चंचल भी बना दिया था। प्रदर्शनप्रियता की आदत भी उसमें बाल्यकाल से ही जड़ जमा बैठी थी। इससे वह चूल्हा–चक्की से दूर ही रही। गृहस्थी के वास्तविक अर्थ को उसने समझा ही नहीं, इच्छाओं की पूर्ति और भोग–भावना ही उसके लिए सर्वस्व थी। ऐसी युवती के लिए स्वाभाविक था कि उसके मन में एक सुन्दर और सम्पन्न पति की भी कामना रही हो। पिता दारोगा कृष्णचन्द्र के व्यक्तित्व और प्रभाव से वह इस ओर से भी निश्चिन्त थी। मध्यवर्गीय पारिवारिक संस्कार उसे इस कार्य में हस्तक्षेप की अनुमति नहीं देते थे। रिश्वत के मामले में आरोपी कृष्णचन्द्र की कैद ने उसकी तमाम इच्छाओं को धराशायी कर दिया। मामा उमानाथ की अनुकम्पा से उसे 15 रुपये मासिक वेतन पर कारखाने में काम करने वाले अधेड़ उम्र के कुरूप और अर्ध शिक्षित के साथ विवाह बंधन में बँधना पड़ता है। यहीं से उसके जीवन की त्रासदी आरम्भ होती है। इसी तरह से दूसरी बेटी शान्ता नाम के अनुसार ही शान्त थी। उसे जो मिलता वह सहर्ष स्वीकार कर लेती। उसमें सुमन की तरह न ही ज़िद थी और न ही अहंकार।

पत्नी के रूप में – सुमन के विवाह में वर को देखकर उसकी माँ गंगाजली ने माथा पीट लिया, "मानो लड़की को कुएँ में डाल दिया गया" ससुराल पहुँचने पर उसे और अधिक बुरी अवस्था का अनुभव हुआ। सीलन से भरी, चारों ओर गंदी नालियों से घिरी तीन रुपए मासिक की दो बन्द कोठरियों को देखकर उसका हृदय ग्लानि से भर गया। बूढ़ी फुवा के आसरे दो महीने थोड़े आराम से कटे। घर के सारे काम वे देख लेती थीं। लेकिन हैजे में उनकी मृत्युके बाद घर

में चूल्हा जलना बंद हो गया। कुछ दिन बाजार से लायी गयी पूरियों से काम चला। ऐसा सर्वथा संभव न देख गजाधर ने एक दिन रात में ही उठकर बर्तन मांजे और चौका धो–पोंछ दिया। नलके से पानी भरकर रख दिया। शर्म के मारे दूसरे दिन घर का सारा काम–काज स्वयं सुमन को संभालना पड़ा। बर्तन मांजते समय उसकी आंखों से आँसुओं की धार प्रवाहित होती रहती थी।

गजाधर हर तरह से सुमन को खुश रखने का प्रयास करता। कारखाने से लौटकर वह पाँच रुपए के लिए अतिरिक्त काम करने लगा। मासिक वेतन सुमन के हवाले कर देता। पड़ोसियों से सुमन की तारीफ के पुल बांधने लगा। पैसे समाप्त होने पर कर्ज ले आता। लेकिन जब कर्ज मिलना बंद हो गया तो उसने सुमन से खर्च में किफायत की बात कही। जब उसे यह सुनना पड़ा कि इतने पैसों में काम नहीं चलेगा तो गजाधर ने झिड़की के साथ कहा कि "मै डाका तो नहीं मार सकता।" दिन–प्रतिदिन तकरार बढ़ती गई। सुमन को बारजे की चिक से तांक–झांक करने की मनाही की गयी।

इन घुटन भरी परिस्थितियों में सुमन की दृष्टि अपने घर के सामने वाली वेश्या भोली की ओर गई। वेश्या–चरित्र से उसे अत्यन्त घृणा थी। लेकिन जब एक दिन मौलूद (जन्मदिन से सम्बद्ध धार्मिक उत्सव) के अवसर पर भोलीबाई के यहाँ प्रतिष्ठित धार्मिक व्यक्तियों के जमावड़े को देखा तो उसकी आंखे चौंधिया गईं। तब से वेश्याओं से सम्बद्ध उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगा। घर में उसका मन लगता नहीं था। पड़ोसियों के यहाँ बैठ कर समय काटती थी। एक दिन भोली के बहुत आग्रह पर संध्या के समय उसके घर चली गयीं। बातचीत में देर हो गयी। वापस लौटने पर गजाधर की डांट–फटकार सुननी पड़ी। लेकिन जब मौलूद के अवसर पर भोली के यहाँ उपस्थित तथाकथित सज्जन लोगों के चरित्र का उद्घाटन गजाधर ने किया तो फिर से उसमें वेश्याओं के प्रति घृणा भाव जागृत हो गया। उसमें धर्मनिष्ठा का उदय हुआ। प्रतिदिन गंगास्नान और रामायण का पाठ करना शुरू कर दिया।

सुमन रामनवमी के अवसर पर जन्मोत्सव देखने के लिए एक बड़े मन्दिर में सहेलियों के साथ गयी तो वहाँ नजारा ही दूसरा दिखाई दिया , "वहीं पड़ोसिन भोली बैठी गा रही है। सभा में एक से एक बड़े आदमी बैठे हुए थे, कोई वैष्णव तिलक लगाए, कोई भस्म लगाए, कोई गले में कंठी माला डाले और राम–राम की चादर ओढ़े, कोई भगुआ वस्त्र पहने। उनमें से कितनों को ही सुमन नित्य गंगा–स्नान करते देखती थी, उन्हें धर्मात्मा विद्वान समझती थी। भोली जिसकी ओर कटाक्षपूर्ण नेत्र से देख लेती थी, वह मुग्ध हो जाता था, मानो साक्षात् राधा–कृष्ण के दर्शन हो गए"

इस दृश्य से सुमन के विश्वास को एक गहरा धक्का लगा। वह सोचने लगी कि 'भोली के सामने केवल धन ही नहीं सिर झुकाता, धर्म भी उसका कृपाकांक्षी है।' उसे अनुभव हुआ कि ठाकुरजी के पवित्र निवास–स्थान की पवित्रता को चार–चाँद लगाने का कार्य भी भोली द्वारा ही सम्पन्न होता है। हाँ विस्तार से प्रेमचंद ने धार्मिक पाखण्ड का पर्दाफाश करते हुए सुमन के मन में आ रहे परिवर्तन पर एक अवरोध लगाया है। उसने गंगा–स्नान छोड़ दिया, रामायण पोथी बांध कर रख दी।

सुमन का इधर–उधर आना–जाना बंद हो गया। उसका स्वास्थ्य दिन–प्रतिदिन गिरने लगा। इससे गजाधर को चिंता हुई। उसने पुनः सैर और गंगा–स्नान के लिए सुमन को प्रेरित किया। उसके स्वास्थ्य में सुधारहोने लगा। एक दिन बेनीबाग के चिड़ियाघर की बेंच पर बैठने को लेकर उसके चौकीदार से सुमन की तकरार हो रही थी, उसी बीच वकील पद्मसिंह अपनी पत्नी सुभद्रा के साथ गाड़ी से पहुँचे। चौकीदार को डांट–फटकार के बाद जब सुमनसे सुभद्रा की बातचीत हुई तो सुभद्रा ने उसे एक भली औरत समझ कर अपनी गाड़ी से घर छोड़ा। तब से सुमनका सुभद्रा के यहाँ आना जाना शुरू हो गया। इसे लेकर गजाधर से कुछ कहा–सुनी होती रही। म्युनिसिपैलिटी का सदस्य चुने जाने पर अपने घर आयोजित आनन्दोत्सव में पद्मसिंह को विवश होकर भोली के मुजरे का भी आयोजन करन पड़ा। सुभद्रा के अनुरोध पर सुमन को भी वहाँ रुकना पड़ा। रात में बहुत देर से घर वापस आने पर गजाधर आपे से बाहर हो गया। लेकिन यहाँ प्रेमचन्द की सुमन अन्याय के सामने नहीं झुकती। गजाधर जब उसे घर से निकलने के लिए कहता है, तब भी उसका आत्मसम्मान उसे पति के समक्ष क्षमा की भीख नहीं माँगने देता। वह पति गृह का त्याग कर देती है।

पति द्वारा प्रताड़ित सुमन सुभद्रा की शरण में जाती है। वहाँ उसे शरण तो मिल जाती है, लेकिन सुमन को लेकर पद्मसिंह के संबंध में झूठी अफवाहें फैलायी जाती हैं। इससे विचलित होकर वे सुमन को अपने नौकर केमाध्यम से घर छोड़ने का आदेश देते हैं। सुमन के सामने भोली का द्वार खटखटाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीदिखायी देता। भोली के यहाँ वह इस उद्देश्य से गयी थी कि उसके माध्यम से एक छोटे से आवास की व्यवस्था हो तो वह सिलाई आदि करके स्वावलंबी बन जाएगी। लेकिन भोली द्वारा बहुत ऊँच–नीच समझाने के बाद वेश्यावृत्ति के लिए वह तैयार हो जाती है।

पद्मसिंह के यहाँ आयोजित मुजरे में भोली की स्थिति को देखकर उसकी स्वावलंबिता के प्रति सुमन के मन में ईर्ष्या होती है। उसे विश्वास है कि वह भोली से सुन्दर है और उसके गले की मिठास भी भोली से अधिक है। इससे वह इस परिणाम पर पहुँचती है कि "वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियाँ हैं। उसकी दूकान खुली है, इसलिए ग्राहकों की भीड़ है, मेरी दूकान बंद है, इसलिए कोई खड़ा नहीं होता। वह कुत्तों के भूँकने की परवाह नहीं करती मैं लोक–निन्दा से डरती हूँ। वह परदे के बाहर है, मैं परदे के अंदर हूँ। इसी लज्जा, इसी उपहास के भय ने मुझे दूसरों कीचेरी बना रखा है।" अपने इस परिवर्तित चिन्तन के कारण ही सुमन भोली की राय को स्वीकार कर वेश्या व्यवसाय की ओर उन्मुख होती है। यौन–कुकर्म से भिन्न वह इसे स्वावलंबन और अपनी मुक्ति का मार्ग समझती है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सुमन एक तरफ हिंदू मध्यवर्गीय विवाह प्रथा की कुसंगतियों की शिकार बनती है, तो दूसरी तरफ गृहस्थ जीवन की संकीर्णता और विधि निषेधों से ही प्रताड़ित नहीं होती, वरन्वकील पद्मसिंह की झूठी मान–सम्मान की चिन्ता भी उसे पतित व्यवसाय की ओर अग्रसर करती है। पति द्वारा प्रताड़ित कर घर से निकाले जाने में सुमन को उतनी पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ, जितनी कि पद्मसिंह द्वारा अपने घर से निकाले जाने पर। वहीं शान्ता एक आदर्श पत्नी के रूप में हमारे सामने आती है। सदन के बारात सहित वापिस चले जाने पर वह सदन को भूलती नहीं अपितु आत्महत्या का प्रयत्न भी करती है। उसके अनुसार कि उसने मन ही मन सदन को पति के रूप

में वरण कर लिया है। वह यह समझती है कि और किसी को पति के रूप में वह स्वीकार नहीं कर सकती अपितु उसके लिए यह पाप होगा। इसी तरह सुभद्रा भी बड़े घर के वकील पद्म सिंह की पत्नी है। वह एक पतिव्रता पत्नी के रूप में हमारे सामने आती हे। ज्यादा पढ़ी–लिखी न होकर भी वह दूरदर्शिता से काम लेती है। वह पति को सही सलाह देने वाली पत्नी है। पति द्वारा सुमन को घर से बाहर निकालने पर वह पति की कड़ी भर्त्सना भी करती है।

चिम्मनलाल, सेठ बलभद्रदास तथा पं. दीनानाथ भी अपनी तथाकथित शुभकामना से प्रेरित विधवाश्रम पहुँचने लगे। आश्रम के संचालक बिट्ठलदास के सामने समस्या खड़ी हो गयी। जहाँ कभी बेल बूटे की कढ़ाई का प्रस्ताव लेकर अबुलवफा और अब्दुलतीफ पहुँच जाते तो कभी मूर्ख सेठ चिम्मनलाल 'भर्तृहरि के उत्तम नाटक शकुंतला' के मंचन का प्रस्ताव लेकर और कभी सेठ विट्ठलदास आश्रम में फूल–पौधे भेजकर स्वयं बागवानी की व्यवस्था के लिए हाजिर होने लगे। बिट्ठलदास को बड़ी ही कठिनाई से इन लोगों के साथ निबटना पड़ा। सेठ बलभद्रदास तो विधवाश्रम को मिटाने की धमकी देकर वापस लौटे।

पद्मसिंह के यह पूछने पर कि सुमन आश्रम में कैसे रहती है, बिट्ठलदास बताते हैं, "ऐसी अच्छी तरह मानो वह सदा आश्रम में रही है, सब काम करने को तैयार और प्रसन्नचित्त। अन्य स्त्रियाँ सोती रहती हैं और वह उनके कमरे में झाड़ू लगा आती है कई विधवाओं को सीना सिखाती है कई उससे गाना सीखती हैं। इस चारदीवारी के भीतर अब उसी का राज्य है।" इस वास्तविकता के बावजूद सुमन की उपस्थिति आश्रम के लिए एक समस्या बन गई। अपनी बहन शान्ता के अभिशप्त जीवन के लिए वह स्वयं को उत्तरदायी मानती थी। जब शान्ता को भी आश्रम में रखने की सूचना उसे मिली तो वह आत्मग्लानि में डूब कर आत्महत्या का निश्चय कर लेती है। लेकिन गजानंद द्वारा सेवाधर्म की शिक्षा से वह आत्महत्या से विमुख होती है।

जब प्रभाकर राव ने अपने पत्र द्वारा सुमन के रहस्य का उद्घाटन कर दिया तो आश्रम में हड़बड़ी मच गयी। बहुत सी विधवाओं ने आश्रम छोड़ने का निर्णय कर लिया। ऐसी स्थिति में सुमन को आश्रम छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। शान्ता को लेकर अनिर्दिष्ट मार्ग पर निकल पड़ी। यहाँ स्पष्ट है कि अपने अटूट सेवाधर्म के बावजूद सुमन को वेश्या जीवन के अभिशाप के कारण विधवाश्रम में भी रहने की अनुमति नहीं मिल सकी। चाहे पति–गृह हो या पद्मसिंह–सुभद्रा का आश्रय, चाहे वेश्यालय हो या विधवा आश्रम, सर्वत्र सुमन को प्रताड़ित होना पड़ा। लेकिन आत्म–सम्मान की रक्षा और सेवा–धर्म भावना से उसने कभी मुख नहीं मोड़ा।

बहन के रूप में – विधवाश्रम से निकलकर अपने मामा उमानाथ के गाँव अमोला जाने के प्रयास में गंगा के किनारे अचानक अत्यन्त नाटकीय ढंग से सुमन और शान्ता का साक्षात्कार सदन सिंह से होता है। सदन सिंह आत्मनिर्भर बनकर शान्ता को पत्नी के रूप में ग्रहण करने के उद्देश्य से मल्लारी (घटवारी) का काम शुरू किए हुए है। घाट पर पहुँचकर कुशल–क्षेम के बाद सुमन गंगा पार जाने के लिए नौका ठीक करने की बात कहती है तो सदन उत्तर देता है, "अब तो तुम अपने घर पर पहुँच गई, अमोला क्यों जाओगी? तुम लोगों को कष्ट तो बहुत हुआ, पर इस समय तुम्हारे आने से मुझे जितना आनन्द हुआ, यह वर्णन नहीं कर सकता। मैं तुम्हारे पास आने का इरादा कर रहा था, लेकिन काम से छुट्टी नहीं मिलती। मैं तीन–चार महीने से मल्लार का काम करने लगा हूँ। यह तुम्हारा ही झोपड़ा है, चलो अन्दर चलो।"

सुमन शान्ता के साथ वहाँ रहने लगी। थोड़े ही दिनों के बाद सदन सिंह से शान्ता की शादी उसी झोंपड़े में हुई। सुमन ने वहीं जिन्दगी काट देने की सोची। घर–परिवार का पूरा कार्य–भार अपने ऊपर ले लिया। इसका जिक्र करते हुए प्रेमचंद ने लिखा है, "सुमन घर का सारा काम करती है और बाहर का भी। वह घड़ी रात रहे उठती है और स्नान पूजा के बाद सदन के लिए जलपान तैयार करती है। फिर नदी के किनारे जाकर नाव खुलवाती है। नौ बजे भोजन बनाने बैठ जाती है। ग्यारह बजे यहाँ से छुट्टी पाकर कोई–न–कोई काम करने लगती है। नौ बजे रात के बाद पढ़ने बैठ जाती है। शान्ता और सदन दोनों कहीं उसकी ओर से निश्चिन्त हैं, मानों वह घर लौंड़ी है और चक्की में जुते रहना ही उसका धर्म है।" धीरे–धीरे शान्ता और सदन की सुमन के प्रति उपेक्षा बढ़ती गई। पद्मसिंह के नौकर जीतन द्वारा मल्लाहों के सामने उसकी राम कहानी का पर्दा खोल दिया गया। मल्लाह और मल्लाहिनें भी, जो उस पर जान छिड़कती थीं, अब उससे कतराने लगीं। शान्ता और सदन की उपेक्षा खुलकर सुमन के सामने आ चुकी थी। शान्ता के वार्तालाप से सुमन को पूरा विश्वास हो गया कि अब उसका यहाँ रहना उचित नहीं है। अंत में सुमन और शान्ता से साफ–साफ पूछने पर शान्ता कहती है, "तुमने मेरे साथ जो उपकार किए हैं, वह मैं कभी न भूलूँगी। लेकिन बात यह है कि उनकी (सदन की) बदनामी हो रही है। लोग मनमानी बातें उड़ाया करते हैं। वह कहते थे कि सुभद्रा जी यहाँ आने को तैयार थीं, लेकिन तुम्हारे रहने की बात सुनकर यहाँ नहीं आई। (यह बिल्कुल झूठ था) और बहन, बुरा न मानना, जब संसार में यही प्रथा चल रही है, तो हम लोग क्या कर सकते हैं?" शान्ता की ये बातें प्रत्यक्ष रूप से सुमन के चले जाने की 'नोटिस' थी। शान्ता थोड़े ही समय में बच्चे की माँ बनने वाली थी। उसके कष्ट को ध्यान मे रखकर सुमन ने प्रसूति कर्म निपटाकर चले जाने का निश्चय किया।

शान्ता अपने प्रति किए गए सारे उपकारों को भुलाकर उस पर संदेह करने लगी थी। उसे भय था कि कहीं सदन सुमन के जाल में न फँस जाए। इसलिए वह उस पर हमेशा नजर रखना चाहती थी। लोरी गृह में बंद होकर सुमन पर नजर रखना मुश्किल था। इसलिए वह अपने प्रसव काल से पूर्व ही सुमन को वहाँ से टालना चाहती थी। प्रसव के बाद घटनाक्रम में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। छठी के दिन सदन के माँ–बाप उत्साह के अतिरेक में पद्मसिंह–सुभद्रा को लेकर सदन के आवास पर पहुँचे। सदन की माँ भामा की उल्टी–सीधी बातें सुन कर सुभद्रा ने उसे बहुत समझाया। सुमन स्नान करके वापस आई तो उनकी बातें कान लगाकर सुनती रही। सुभद्रा पर अविश्वास करते हुए जब भामा ने यह कहा कि "चलो बड़ी नेम–धरम से रहने वाली है। सात घाट का पानी पीके आज नेम वाली बनी है। देवता की मूरत टूटकर फिर से नहीं जुड़ती। अब वह देवी बन जाए तब भी मैं उस पर विश्वास नहीं करूँगी।" सुमन को इससे अधिक सुन सकने का धैर्य नहीं रहा। वह उसी समय अंधकार में निकल पड़ी।

यहाँ हम देखते हैं कि जीवन–यात्रा के प्रत्येक पड़ाव पर सुमन की स्थिति बद–से–बदतर होती गयी है। अपनी बाल्यावस्था में उसे मन–मर्जी करने की छूट थी। वह स्वभाव से ही आत्मसम्मान प्रिय और सगर्वा स्त्री रही है। पति गृह में सारे कष्ट झेल कर वहाँ की रानी थी। वेश्यालय में जब तक रही, उसने आत्मसम्मान को नहीं छोड़ा। आश्रम में भी उसी का सिक्का चलता था। अपमान की स्थिति देखकर वह कहीं टिकी नहीं। शान्ता और सदन के व्यवहार से तो वह आहत थी ही भामा की कटूक्तियों से तिलमिलाते हुए अंधकार में अनिर्दिष्ट लक्ष्य की दिशा में एक ओर निकल गई। इसे उसके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी कहा जा सकता है।

बड़े काँटे की चुभन की पीड़ा को महसूस करते हुए वह रात भर चिन्तन करती रही। प्रातःकाल में उसकी आंखे पल भर के लिए झपकीं। उसे दिखाई दिया कि स्वामी गजानन्द मृगचर्म धारण किए हुए उसके सामने खड़े हैं। उन्होंने आदेश दिया "जो लोग तुमसे भी दीन–दुखी, दलित हैं, उनकी शरण में जाओ और उन्हीं का आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा।" यहाँ प्रेमचंद ने एक अविश्वसनीय संयोग के माध्यम से सुमन को स्वामी गजानंद की कुटी के द्वार पर पहुँचा दिया है। उन्हीं के सदुपदेश से वह अनाथालय की संचालिका बनती है। सुमन के संघर्षपूर्ण जीवन की यह परिस्थिति स्वाभाविक और प्रभावशाली नहीं है। बावजूद इसके, उसी के माध्यम से प्रेमचंद ने सुमन को अनाश्रलय में पहुँचा कर अपने उद्देश्य की सिद्धि की है।

वेश्या के रूप में – सुमन के वेश्या–जीवन की तरफ जाने का दायित्व मध्यवर्गीय समुदाय की छद्म चेतना को ही है। विवाह–व्यवसाय, दहेज–प्रथा के साथ ही दारोगा कृष्णचंद्र, पं. उमानाथ से लेकर पं. पद्मसिंह तक व्याप्त है। अपनी जीवन–यात्रा की इस मंजिल पर पहुँचकर वह जीवन के विषय में कुछ सार्थक ढंग से सोच सकने में समर्थ होती है। पद्मसिंह को सुनाने के लिए वह यह जरूर कहती है कि "जितना आदर मेरा अब हो रहा है, उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मनलाल के ठाकुरद्वारे में झूला देखने गयी थी, सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने अंदर नहीं जाने दिया। लेकिन कल उसी ठाकुरद्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानो मेरेचरणों से वह मंदिर पवित्र हो गया।" लेकिन वास्तविकता यह है कि वह इसे अपने वेश्या जीवन की उपलब्धि नहीं मानती। जब विट्ठलदास के रूप में एक सच्चे समाज–सुधारक से उसकी भेंट होती है तो वह अपने आंतरिक आशय को खुलेरूप से उनके सामने इस प्रकार प्रस्तुत करती है, "आप सोचते होंगे कि भोग–विलास की लालसा से कुमार्ग में आई हूँ, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। मैं जानती हूँ कि मैंने निकृष्ट कर्म किया है। लेकिन मैं विवश थी, इसके सिवाय मेरे लिए कोई रास्ता नहीं था। मैं ऊँचे कुल की लड़की हूँ, पिता की नादानी से मेरा विवाह एक दरिद्र मूर्ख से हुआ। लेकिन दरिद्र होने पर भी मुझसे अपना अपमान न सहा जाता था। जिसका निरादर होना चाहिए उसका आदर होते देखकर मेरे हृदय में कुवासनाएँ उठने लगती थीं। संभव था कि कालांतर में यह अग्नि आप ही शांत हो जाती, पर पद्मसिंह के जलसे ने इस अग्नि को भड़का दिया। पद्मसिंह के घर से निकल कर मैं भोली बाई की शरण में गई। मैंने चाहा कि कपड़े सीकर अपना निर्वाह करूँ, पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तंग किया कि अंत में मुझे कुएँ में कूदना पड़ा। सुख न सही, वहाँ आदर तो है। मैं किसी की गुलाम तो नहीं हूँ।"

सुमन के चरित्र की विशेषताओं के साथ ही उसकी स्वाधीनता की भावना भी यहाँ व्यक्त हुई है। इसके संबंध में प्रेमचंद की आद्यंत मान्यता भी यहाँ उजागर हुई है। लगता है कि सुमन वेश्या–जीवन से भी मुक्त होने के लिए तत्पर है। वह विट्ठलदास से कहती है कि "मैं सुख और आदर दोनों को छोड़ सकती हूँ पर जीवन निर्वाह का कुछ उपाय तो करना ही पड़ेगा।" अंततः वह अपने गुजारे के लिए 50 रुपए मासिक राशि की शर्त को भी छोड़कर विधवाश्रम में रहना स्वीकार कर लेती है। दूसरी तरफ भोली नामक वेश्या है जो धूर्त एवं चालाक है। वह सुमन को इस पेशे में उतारने के लिए उकसाती भी है, ''तुम्हें तो रानी बनना चाहिए था। मगर पाले पड़ी एक खूसट के जो तुम्हारा पैर धोने के लायक भी नहीं है।" यही भोली सुमन की तबाही का कारण बनती है।

आदर्श सेविका के रूप में – प्रेमचंद ने 'सेवासदन' में विधवा समस्या को विषय नहीं बनाया है लेकिन एक सुव्यवस्थित विधवाश्रम की उपस्थिति के माध्यम से समस्या की ओर संकेत अवश्य किया है। विधवाश्रम गमन को सुमन अपने लिए पुनर्जन्म स्वीकार करती है। आश्रम की विधवाओं से विधवा बताकर सुमन को अत्यंत गोपनीय ढंग से वहाँ रखागया था। लेकिन अबुलवफा जैसे व्यक्तियों की वजह से यह बात गोपनीय नहीं रह सकी। सुमन जी जान से विधवाश्रम में विधवाओं की सेवा करती है परन्तु परिस्थितिवश उसे वहाँ से भी कूच करना पड़ता है।

आदर्श संचालिका के रूप में – स्वामी गजानंद 'सेवासदन' का भार सुमन पर छोड़कर उससे निश्चिन्त हो गए। अब वे निर्धन कन्याओं का उद्धार करने के लिए अधिकतर गाँवों में रहते हैं। शहर में कभी–कभार आते हैं। 'सेवासन' का पूरा कार्य व्यापार सुमन की देखरेख में चलने लगा। इसकी स्थापना पं. पद्मसिंह के प्रयास से हुई है, जिसमें वेश्या कन्याओं के पालन–पोषण और शिक्षा–दीक्षा का समुचित प्रबंध है। लेकिन सुमन के साक्षात्कार से वे लज्जावश कतराते रहे। पति के साथ गंगा स्नान से वापस आते हुए उनकी गाड़ी सेवासदन से होकर निकली। सुभद्रा वहाँ अकेले गयी। सुमन द्वरा 'सेवासदन' का निरीक्षण कराते हुए उसकी सफलता का परिचय पाठक को मिलता है।

"आश्रम में पहुँचने पर सुमन ने विह्वल भाव से सुभद्रा के चरणों पर सिर रख दिया। उसने पूछा कि 'शर्मा जी भी हैं या अकेली आयी हैं।" देर हो जाने के कारण शर्मा जी के न आने से उदास होकर सुमन ने कहा, 'देर तो क्या होती थी, वह यहाँ आना ही नहीं चाहते। मेरा अभाग्य दुख केवल यह है कि जिस आश्रम के वे स्वयं जन्मदाता है उससे मेरे कारण उन्हें इतनी घृणा है। मेरी हृदय से अभिलाषा थी कि एक बार आप और वह साथ आते। आधी तोआज पूरी हुई, शेष भी कभी–न–कभी पूरी होगी। वह मेरे उद्धार का दिन होगा।"

सुमन सुभद्रा को आश्रम दिखाने लगी। प्रभाकर राव के 'जगत' तथा अन्य पत्रों में छपी प्रशंसा भी आश्रम को देखकर सुभद्रा के लिए धूमिल पड़ गयी। पाँच कमरों के भवन में पहले कमरे में लगभग तीस बालिकाएँ पढ़ रही थीं, जिनकी आयु बारह से पन्द्रह वर्ष के बीच थी। इन्हें उच्च शिक्षा देने के लिए रुस्तम भाई बैरिस्टर की सुयोग्य पत्नी प्रतिदिन दो घंटे के लिए आती थी। दूसरे कमरे में भी लगभग उतनी ही बालिकाएँ थीं, जिनकी आयु आठसे बारह वर्ष के बीच थी। उन्हें कपड़े की कटाई–सिलाई की शिक्षा दी जा रही थी। यहाँ एक बूढ़ा दर्जी काम पर लगा था।तीसरे कमरे में पन्द्रह–बीस छोटी–छोटी बच्चियाँ थीं, जो गुड़ियों से खेलने और दीवारों पर लगी तस्वीरें देखने में तल्लीन थीं। इस कक्षा की अध्यापिका सुमन स्वयं थी। सुभद्रा ने सामने वाले बगीचे में लगाए गए फूलों को देखा। वहाँ कुछ लड़कियाँ आलू गोभी में पानी दे रही थीं। भोजनालय में बैठी लड़कियाँ भोजन कर रही थीं। उनके बनाए आचार–मुरब्बे भी सुमन ने दिखाए। सुभद्रा सारी व्यवस्था देखकर गद्गद हो गयी। जब सुभद्रा ने पूछा कि "इनकी माताएँ इन्हें देखने आती हैं या नहीं?" सुमन ने बताया कि "कभी–कभी आती है, पर मैं यथा संभव इस मेल मिलाप को रोकती हूँ।" सुभद्रा के पूछने पर कि विवाह कहाँ और कैसे होगा।" तो सुमन ने कहा कि "यह तो टेढ़ी खीर है। हमारा कर्तव्य यह है कि इन कन्याओं को चतुर गृहिणी बनने योग्य बना दें, उनका आदर समाज करेगा या नहीं, मैं नहीं कह सकती।"

वस्तुतः प्रेमचंद ने इस तथ्य को गहराई से महसूस किया था कि उस समय विधवाओं के लिए विधवाश्रम की व्यवस्था तो की गई थी, लेकिन वेश्याओं के लिए सुधार या उद्धार गृह की कोई व्यवस्था नहीं। 'सेवासदन' में वे वेश्या

कन्याओं की शिक्षा और उनके सुधार को लेकर चिन्तित हुए हैं। आगे चलकर "1956 ई. में अनैतिक व्यवसाय के दमन का कानून लागू करने के लिए तथा वेश्याओं के सुधार और उद्धार के लिए खोले गए और भविष्य में खोले जाने वाले 'रक्षा–गृह' की पूर्व कल्पना प्रेमचंद ने 40 वर्ष पूर्व कर ली थी, चाहे अधूरे रूप में ही सही।" (प्रेमचंद का नारी चित्रण : गीता लाल)

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट पता लग जाता है कि सुमन की जीवन–यात्रा का अंतिम पड़ाव ही उसकी वास्तविक पराधीनता से मुक्ति के साथ ही स्वावलंबन और सेवाधर्म के निर्विघ्न प्रतिपादन का वास्तविक काल है। यहाँ वह अपनी क्षमता का पूरा परिचय देती है।

7.5 सारांश

सुमन के एक अत्यन्त संक्षिप्त वेश्या जीवन काल को देखते हुए इसे वेश्या–समस्या की प्रमुखता वाला परम्परागत उपन्यास नहीं माना जा सकता। वस्तुतः 'सेवासदन' नारी जीवन की पराधीनता का दस्तावेज है। प्रेमचंद ने इसमें जहाँ एक ओर तमाम पुरानी और रूढ़ सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़ने का प्रयास किया है,वहीं अपने वर्तमान युग में सिर उठाते स्वार्थपरक और आडम्बर प्रिय मध्यवर्गीय छद्म का पर्दाफाश करने का सफल प्रयास किया है। सारे उपन्यास पर छायी हुई सुमन के माध्यम से उन्होंने यह कार्य सम्पन्न किया है। हमारे साहित्य में कितनी ही कविताएँ, कितने नाटक, कितने ही उपन्यास लिखे गए हैं, जिनमें नारी के बलिदान, त्याग, पति सेवा की गद्‌गद भाव से प्रशंसा की गई है। लेकिन बहुत कम लेखकों ने उसकी वास्तविक अस्मिता, उसकी निस्सहायता, उसकी पराधीनता को उजागर करते हुए उसे गँवार, शूद्र और पशु की कोटि में रखे जाने की विभिन्न स्थितियों एवं कार्य–कारण संबंधों पर प्रकाश डाला है। इस महत्वपूर्ण कार्य को प्रेमचंद ने ही पूरा किया है।

7.6 कठिन शब्द

1. हृदयंगम
2. कृपण
3. आनन्दप्रद
4. उद्वेलन
5. व्यग्र
6. रूप–लावण्य
7. गर्वीली
8. उत्कंठित
9. दुराग्रह
10. अग्राह्य

7.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास में चित्रित नारी के विविध रूपों का चित्रण कीजिए।

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास में नारी के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर टिप्पणी कीजिए।

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास में नारी के आदर्श रूप का चित्रण कीजिए।

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में नारी के वेश्या रूप का चित्रण कीजिए।

_____

_____

_____

_____

7.8 पठनीय पुस्तकें

1. सेवासदन – प्रेमचन्द
2. प्रेमचन्द का नारी चित्रण : डॉ. गीता लाल
3. प्रेमचन्द और उनका युग : डॉ. राम विलास शर्मा
4. प्रेमचनद के नारी पात्र : डॉ. ओम अवस्थी
5. कलम का सिपाही : अमृतराय
6. प्रेमचन्द : विरासत का सवाल : डॉ. शिवकुमार मिश्र

—— 0 ——

'सेवासदन' के प्रमुख पात्र

8.0 रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 सेवासदन के प्रमुख पात्र

8.3.1 सेवासदन के स्त्री पात्र

8.3.2 सेवासदन के पुरुष पात्र

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्द

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.7 पठनीय पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप :–

– उपन्यास के प्रमुख तत्व चरित्र चित्रण को समझकर उपन्यासों के पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकेंगे।

– चरित्र–चित्रण की दृष्टि से उपन्यास की समीक्षा कर सकेंगे।

– प्रेमचन्द के पात्र चयन की समीक्षा कर सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

प्रेमचन्द का कथन है कि 'उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा। उनका मानना है कि अपने विचार किसी पात्र के माध्यम से समाज तक पहुँचाए जा सकते हैं।

8.3 सेवासदन के प्रमुख पात्र

8.3.1 – सेवासदन के स्त्री पात्र

सुमन

सुमन सेवासदन उपन्यास की नायिका है। प्रेमचन्द ने अपनी आदर्शात्मक दृष्टि से उसका चरित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह हर परिस्थिति में अपनी यौन पवित्रता को बनाये रखती है। वह अपनी राम कहानी विट्ठलदास को सुनाती हुई कहती है कि "संसार में सबकी प्रकृति एक–सी नहीं होती। कोई अपना अपमान सह सकता है, कोई नहीं सह सकता। मैं एक ऊँचे कुल की लकड़ी हूँ पिता की नादानी से मेरा विवाह एक दरिद्र मूर्ख मनुष्य से हुआ, लेकिन दरिद्र होने पर भी मुझसे अपना अपमान न सहा जाता था। जिसका निरादर होना चाहिए, उसका आदर होते देखकर मेरे हृदय में कुवासनाएँ उठने लगती थी। मगर मैं इस आग से मन–ही–मन जलती थी। कभी अपने भावों को प्रकट नहीं किया। संभव था कि कालांतर में यह अग्नि आप ही आप शांत हो जाती, पर पद्मसिंह के जलसे ने इस अमि को भड़का दिया। इसके बाद मेरी जो दुर्गति हुई, वह आप जानते ही हैं। पद्मसिहं के घर से निकल कर मैं भोली बाई की शरण में गई। मगर उस दशा में भी मैं इस कुमार्ग से भागती रही। मैंने चाहा कि कपड़े सी कर अपना निर्वाह करूँ। पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तंग किया कि अंत में मुझे इस कुएं में कूदना पड़ा। यद्यपि इस काजल की कोठरी मेंआकर पवित्र रहना कठिन है, पर मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करूँगी, गाऊंगी, नाचूँगी, पर अपने को भ्रष्ट न होने दूंगी।" सुमन की यह राम कहानी अपनी जुबानी है जिससे स्पष्ट होता है कि वेश्यालय में पहुँच कर भी वह कुलीनता और मर्यादा को नहीं भूल पाती है, इस स्थान पर आने का एक मात्र कारण आदर और सुख प्राप्त करना है। विट्ठदास के समझाने का एक असर सुमन पर यह पड़ता है कि वह जीवन के उद्देश्य के बारे में सोचने के लिए मजबूर हो जाती है।

जीवन की इस नई विचारधारा पर वह खूब सोचती है और निर्णय करती है। विट्ठलदास से उसने स्पष्ट कहा – और कष्टों से शरीर को दुःख होता है, इस कष्ट से आत्मा का संहार हो जाता है। वह उनके साथ विधवाश्रम के लिए चल देती है। उस समय की छवि का वर्णन उपन्यासकार करता है –

"वह केवल एक उजली साड़ी पहले थी, हाथों में चूड़ियाँ तक न थी। उसका मुख उदास था, लेकिन इसलिए नहीं कि यह भोग–विलास अब उससे छूट रहा है, वरन् इसलिए कि वह अग्नि कुंड में गिरी क्यों थी, उस उदासीनता में मलिनता न थी, एक प्रकार का सयंम था। वह किसी मदिरा–सेवी के मुख पर छाने वाली उदासी नहीं थी, बल्कि उसमें त्याग और विचार आभासित हो रहा था।"

सात्विक रूप–सुमन के सात्विक और संयमी जीवन का ही प्रभाव था कि साधु बन गया उसका पति गजानन्द उसके चरणों में गिर अपने अपराधों की क्षमा माँगता है। उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि – ''अपने अत्याचार का भीषण परिणाम देखकर मुझे विदित हो रहा है कि उसका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।'' गजाधर को इस आत्मवेदना तथा पश्चाताप की अग्नि में जला हुआ देखकर ही वह बोली – ''ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारे अपराधों को क्षमा करे।'' गजाधर के समझाने पर कि अब तक तुम अपने लिए जीती थी, अब दूसरों के लिए जियो। वह मान जाती है और अपने जीवन का उत्सर्ग दूसरों की सेवा के लिए ही कर देती है।

सुमन के इस सात्विक रूप का ही प्रभाव था कि वह सदन को स्पष्ट शब्दों में कह सकी – ''मैं पूछती हूँ भला यह कहाँ की नीति है कि एक भाई चोरी करे और दूसरा पकड़ा जाए। अब तुससे कोई छिपी नहीं है, अपने खोटे नसीब से, दिनों के फेर से, पुनर्जन्म के पापों से मुझ अभागिनी ने धर्म का मार्ग छोड़ दिया। उसका दंड मुझे मिलना चाहिए था और वह मिला। लेकिन इस बेचारी ने क्या अपराध किया था कि इस बेचारी को तुम ने त्याग दिया ? इसका उत्तर तुम्हें देना पड़ेगा।''

सदन यद्यपि उस समय तो कोई ठोस उत्तर न दे पाया किन्तु शांता को अपने जीवन में लाने के लिए स्वावलम्बी बना और उसे उठाकर जब झोंपड़े में लाया तो शांता को बेहोश देखा तो सुमन तिरस्कारपूर्ण नेत्रों सेदेखकर बोली – ''तुमने उसके साथ अत्याचार इसलिए किया कि मैं उसकी बहन हूँ। जिसके तलुवे तुमने बरसों सहलाये है, जिसके कुटिल प्रेम में तुम महीनों मतवाले हुए रहते थे। उस समय भी तो तुम अपने माँ बाप के आज्ञाकरी पुत्र थे याकोई और थे ? उस समय भी तो तुम वही उच्च कुल के ब्राह्मण थे या कोई और थे ? तब तुम्हारे दुष्कर्मों से तुम्हारे खानदान की नाक न कटती थी? आज तुम आकाश के देवता बने फिरते हो। अंधेरे में जूठा खाने पर तैयार, पर उजाले मेंनिमंत्रण भी स्वीकार नहीं। यह निरी धूर्तता है, दगाबाज़ी है। जैसा तुमने इस दुखिया के साथ किया है, उसका फल तुम्हें ईश्वर देंगे।'' सुमन की इस बेलाग बात को सदन सुनता ही रह जाता है और कोई उत्तर नहीं दे पाता।

लोकोपवाद के कारण शांता और सुमन विधवाश्रम को त्याग कर सदन के झोंपड़े में ही रहने लगती हैं। यहाँ पर रहते सुमन ज़रा भी ऐसी कोई हरकत नहीं करती जिससे सदन को उसकी ओर बढ़ने का प्रोत्साहन मिले। उसी के प्रोत्साहन से वह शांता से विवाह की अन्य रस्में पूरी करके रहने लगता है। झोंपड़े में रहते हुए प्रेमचन्द ने उनकी दिनचर्या के बारे में लिखा है –

सुमन घर का सारा काम भी करती है और बाहर का भी। वह घड़ी रात रहे उठती है और स्नान पूजा के बाद सदन के लिए जलपान बनाती है। फिर नदी के किनारे आकर नाव खुलवाती है। नौ बजे भोजन बनाने बैठ जाती है। ग्यारह बजे यहां से छुट्टी पाकर वह कोई न कोई काम करने लगती है। नौ बजे रात को जब लोग सोने चले जाते है, तो वह पढ़ने बैठ जाती है ... वह बहुधा धर्मिक ग्रंथ भी पढ़ती है, लेकिन ज्ञान की अपेक्षा भक्ति मेंउसे अधिक शांति मिलती है। सुमन की इस सेवा भावना का शांता और सदन की आंखों में कोई मूल्य न था। सदन इस प्रकार सुमन से बचता था जैसे हम कुष्ठ रोगी से बचते है और शांता उसके रूप–लावण्य से डरती थी, और उस पर अविश्वास करती

थी। सुमन इस उपेक्षा भावना को सहन करती रहती थी, क्योंकि संसार में बिना किसी सहारे के रहने का विचार करके उसका कलेजा कांपने लगता था। साथ ही वह सोचती थी कि मेरे चले जाने से गर्भवती शांता को कष्ट होगा। कुछ दिन और रह लूं, जहां इतने दिन कटे हैं, महीने दो महीने और सही। मेरे ही कारण से इस विपत्ति में फंसे हैं। ऐसी अवस्था में इन्हें छोड़कर जाना मेरा धर्म नहीं है।''

सुमन के इन उद्‌गारों से स्पष्ट है कि वह सात्विक प्रवृत्ति की हो चली है। वह अपनी बहन शांता से स्पष्ट शब्दों में पूछती है – ''मैं दो वर्षों से तुम्हारे साथ हूँ, इतने दिनों में तुम्हे मेरे चरित्र का परिचय अच्छी तरह हो गया होगा।'' शांता के पुत्र हो जाने के बाद जब सदन की माता आई तो उनके साथ सुभद्रा भी आई। दोनों बाते करने लगीं –

भामा –हो चाहे न हो, लेकिन यहां सोने न दूँगी। वैसी स्त्री का क्या विश्वास ?

सुभद्रा– नहीं दीदी, वह अब वैसी नहीं है। वह नेम धरम में रहती है।

भामा–चलो, वह बड़ी नेम धरम से रहने वाली है सात घाट का पानी पीके आज यह नेम वाली बनी है देवता की मूरत टूटकर फिर नहीं जुड़ती। वह अब देवी बन जाए तब भी उस का विश्वास न करूँ।''

भामा की यह बात सुनने के बाद उसकी हताशा का कोई वार–पार नहीं रहता है और वह उल्टे पावं अंधेरे में ही एक ओर चल पड़ती है। लज्जा और परिताप में जलते हुए सुमन के अन्तर्मन से बार–बार यही ध्वनि निकलने लगती है – ''हाय, इसी सुंदरता ने मेरी मिट्‌टी खराब की। मेरे सौंदर्य के अभिमान ने मुझे यह दिन दिखाया। सुंदरता रूपी आग में आत्मा को डालकर चमकाना चाहते हैं । पर हां! अज्ञानवश हमें कुछ नहीं सूझता, यह आग हमें जला डालती है, वह बाधा हमें विचलित कर देती है।'' सुमन बहुत देर तक इसी प्रकार के विचारों में खोई रही।

परमात्मा के प्रति आस्था – वह अपने विपत्ति के क्षणों में परमात्मा से प्रार्थना करती है –''भगवान! मुझे ज्ञान दो। तुम्हीं अब मेरा उद्धार कर सकते हो। मैंने भूल की कि विधवाश्रम में गयी। सदन के साथ रहकर भी मैंने भूल की। मनुष्यों से अपने उद्धार की आशा रखना व्यर्थ है। ये आप ही मेरी तरह अज्ञानता में पड़े हुए है। ये मेरा उद्धर क्या करेंगे ? मैं उसी की शरण में जाऊँगी। लेकिन कैसे जाऊँ ? कौन सा मार्ग है, दो साल से धर्म–ग्रथों को पढ़ती हूँ पर कुछ समझ में नही आता, ईश्वर तुम्हें कैसे पाऊँ।''

सुमन इन्हीं सब बातों पर विचार करती–करती सहसा सो–सी गई। उसे स्वप्न में स्वामी गजानन्द दिखाई पड़ने लगे। उन्होंने सुमन को उपदेश दिया – ''सतयुग' में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी, त्रेता में सत्य, द्वापर में भक्ति से, कलियुग में इसका केवल एक ही मार्ग है और वह है सेवा। इसी मार्ग पर चलो और तुम्हारा उद्धार होगा। जो लोग तुमसे भी दीन, दुःखी, दलित हैं उनकी शरण में जाओ और उन का आर्शीवाद तुम्हारा उद्धार करेगा।' इसी प्रकार वह नींद में चलती हुई रात्रि में ही गजानन्द की कुटिया तक पहुंचती है।

प्रेम और पवित्रता–सुमन ने गजानंद की कुटिया में पहुँचकर उनके चेहरे पर एक विमल ज्योति का प्रकाश देखा। वह गजानंद से कहने लगी –

"महाराज आप मेरे लिए एक ईश्वर रूप है। आपके ही द्वारा मेरा उद्धार हो सकता है। मैं अपना तन मन आपकी सेवा में अर्पण करती हूँ यही प्रतिज्ञा एक बार मैंने की थी पर अज्ञानता वश उसका पालन न कर सकी। पर वह प्रतिज्ञा मेरे हृदय से न निकली थी, आज मैं सच्चे मन से यह प्रतिज्ञा करती हूँ। आपने मेरी बाँ पकड़ी थी, अब यद्यपि मैं पतित हो गई हूँ, पर आप ही अपनी उदारता से मुझे क्षमादान दीजिए और मुझे सन्मार्ग पर ले जाइए।"

सुमन के इन उद्‌गारों से गजानन्द के प्रति प्रेम और आदर का भाव टपकता है। यहां पर पहुँच कर लगने लगता है कि प्रेमचन्द का मंतव्य था भारतीय नारी की उच्चता की उद्‌घोषणा करना। उन्होंने पति और पत्नी के संबंध की पवित्रता को श्रेष्ठ माना। सुमन वह भरतीय नारी है, जो आरम्भ में अपने पति का तिरस्कार करती है, किन्तु उसके द्वारा क्षमा याचना करने पर वह उस पर सहज विश्वास कर लेती है। गजानन्द के उपदेश और परामर्श को मानकर वह अनाथालय का सेवा–भार सम्भाल लेती है इस अनाथालय में वह वेश्याओं की पुत्रियों को पढ़ाई–लिखाई, कढ़ाई, सिलाई आदि सिखाती है। उसके उद्योग से अनाथालय की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती चली जाती है। जब सुमन उससे मिलने आती है तो वह सुमन के तपस्विनी वेष को देखकर अत्याधिक प्रभावित होती है।

यथा –

"सुभद्रा ने सुमन को आते देखा। वह उस केशहीन, आभूषण–विहिन सुमन को देखकर चकित रह गई। उसमें न वह कोमलता थी, न वह चपलता, न वह मुस्कराती हुई आँखें, न हसंते हुए होंठ। रूप लावण्य की जगह पवित्रता की ज्योति झलक रही थी।"

इससे स्पष्ट है कि सुमन का चरित्र कीचड़ में रहते हुए भी कमल की भाँति था। उस पर कीचड़ का प्रभाव न था।

नायिका – सुमन सेवासदन की नायिका है। नायिका प्रायः हम उस प्रत्येक नारी पात्र को कहते हैं जिससे कथा आरम्भ हो और उसी के साथ वह समाप्त भी हो या कथा में प्रायः प्रत्येक पात्र उसके चारों ओर ही घूमते दिखाई पड़ें या उसके लिए कार्य करते दिखलाई पड़ें। इस कसौटी पर देखें तो सेवासदन उपन्यास की कथा सुमन से ही आरम्भ होती है। उसके पिता चिन्तित हैं। सुमन के विवाह के लिए दहेज जुटाने की समस्या से कथा का अन्त भी उसके द्वारा कहे गए अन्तिम वाक्य – "परमात्मा आप लोंगो का सदैव कल्याण करें" से होता है। उपन्यासकार का यह वाक्य प्राचीन नाटकों में आये भरत वाक्य के सदृश ही प्रतीत होता है।

सुमन का चरित्र कथा के केन्द्र में है और कथा में आये प्रायः सभी पात्र उसके चारों ओर घूमते दिखाई पड़ते हैं। या उसके बारे में सोचते हैं अथवा उससे किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित हैं। सेवासदन उपन्यास की मूल समस्या वेश्यावृति और उससे उद्धार की कथा कहना है और वह कथा सुमन को आधार बनाकर ही कही गई। अतः इस रूप में उपन्यासकार सेवा भावना में डूबती सुमन को जब तक सेवासदन में पहुंचाकर उसका कार्य–भार उससे नहीं संभलवा देता तब तक कथा को बढ़ाता जाता है अतः इस रूप में हम कह सकते हैं कि सुमन ही इस उपन्यास में फल की भोक्ता है। अस्तु इसमें कोई संशय नहीं रह जाता कि सुमन के अतिरिक्त अन्य कोई स्त्री पात्र इस उपन्यास की नायिका हो

सकती है। सुमन के रूप में प्रेमचन्द ने आरम्भ से ही एक नारी का चित्रण किया है जिससे सत्–असत् का निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष में असत् की क्षणिक विजय हो जाती है परन्तु संघर्ष जारी रहता है औरअन्त में सत् की विजय हो जाती है। सुमन के इस चारित्रिक मोड़ को समझने के लिए हमें उसके जीवन पर दृष्टिपात करना पड़ेगा।

लाड़–प्यार से पली पुत्री–सुमन दरोगा कृष्णचन्द्र की दोनों लड़कियों से बड़ी है। उसका कोई भाई नहीं है इसलिए वह अपने माता–पिता के लाड़–प्यार का केन्द्र बन जाती है। प्रेमचन्द ने लिखा है– 'दोनों लड़कियाँ कमल के समान खिलती जाती थी। बड़ी लड़की सुमन सुन्दर, चंचल और अभिमानिनी थी। छोटी लड़की शांता भोली, गंभीर और सुशील थी। सुमन दूसरों से बढ़कर रहना चाहती थी। यदि बाजार से दोनों बहनों के लिए एक ही प्रकार की सड़ियाँ आती तो सुमन मुँह फूला लेती थी।''

सुमन का यह अभिमान बढ़ता जाता है। अक्सर पिता की लाड़ली पुत्री होने के कारण वह गृह–कार्यो पर ध्यान नहीं देती है। कदाचित् सुमन मन के किसी कोने से सोचती रही हो कि उसका विवाह तो ऐसे घर में होगा जहाँ नौकर–चाकर और दास–दासियाँ होंगे। अतः गृह–कार्य को सीखकर या उसमें मन लगाकर क्या होगा। सुमन की धारणा गलत निकली। जब वह ससुराल आई तो यहाँ की अवस्था उससे भी बुरी पायी, जिसकी उसने कल्पना की थी। पतिगृह में जब वह काम करने लगी तो बर्तन माँजती जाती थी और रोती जाती थी, पर थोड़े ही दिनों में उसे घर का काम करने की आदत पड़ गई उसे अपने जीवन में आनन्द–सा अनुभव होने लगा।

गृह प्रबन्ध में अकुशल – सुमन को गृह–प्रबन्ध की कोई शिक्षा नहीं मिली थी, इसलिए उसे आवश्यक और अनावश्यक खर्च का ज्ञान न था। उसने गृहिणी बनने की नहीं, इन्द्रियों के आनन्द भोग की शिक्षा पाई थी। सुमन की आशा–अकांक्षा के विपरीत उसका विवाह 15 रुपये मासिक पाने वाले गजाधर से हो जाता है। कुछ समय तक गजाधरकी बुआ गृहकार्य करती रहती है पर ऐसे में जब उसकी मृत्यु हो जाती है तो समस्या उत्पन्न होती है। चौका बर्तनकरने के लिए महरी 3 रुपया से कम पर राजी नहीं होती है। इसीलिए घर में दो दिन चुल्हा नहीं जला। तीसरे दिन गजाधर घड़ी रात रहे उठा और सारे बर्तन माँज डाले, चौका लगा दिया, नल से पानी भर लाया। सुमन जब सोकर उठी तो वह कौतुक देखकर दंग रह गई, अस्तु उसे लज्जा के कारण ये काम स्वयं ही संभालने पड़े। वह अपने मित्रों सेकहने लगा कि इतने बड़े घर की लड़की, घर का छोटा सा काम भी अपने हाथ से करती है। महीने की पगार जब बीस दिन में समाप्त हो जाती है तो दोनों में तना–तनी आरम्भ हो जाती है और फलस्वरूप गजाधर के मन में प्रेम के स्थान पर शक, संदेह जन्म ले लेता है वह सोचने लगता है कि सुमन का हृदय मेरी ओर से शिथिल होता जाता है। उसे यह न मालूम था कि सुमन उसकी प्रेम–रस पूर्ण बातों से मिठाई के दोनों को अधिक आनन्दप्रद समझती है।

प्रदर्शन प्रिय – मध्यवर्गीय समाज की इस दुष्प्रवृत्ति से वह ग्रसित है और यही कारण है वह दूसरों के सामने अपने को बढ़ा–चढ़कार दिखाना चाहती है। जब उसकी पड़ोसिनें उसके यहाँ जाने लगीं तो वह रेशमी धोती पहनकर बैठती और रेशमी जाकट खूँटी पर लटका देती। उन पर इस प्रदर्शन का प्रभाव सुमन की बातचीत से अधिक होता था। वे वस्त्राभूषण के सम्बन्ध में उसकी सम्मत्ति को बड़ा बहत्त्व देती। नये गहने बनवाती तो सुमन से सलाह लेती,साड़ियाँ लातीं, तो सुमन को अवश्य दिखा जाती।

धीरे–धीरे उसकी रेशमी साड़ियाँ और जाकटें फटती चली गई। जिन वस्त्रों को पहनकर वह अपनी शान दिखाती थी और स्वयं को ऊंचा सिद्ध करती थी। अब उसके मन में असंतोष पनपने लगा। अन्य स्त्रियों के लिए नये–नये वस्त्राभूषण आते रहते थे, जबकि मेरे लिए नये वस्त्राभूषण आने का तो कहना ही क्या पति के कम वेतन के कारण गुज़ारा तक कठिनता से होता है। वह अपने पति को जली कटी सुनाने लगी, क्योंकि वह जिन महिलाओं के साथ उठती बैठती थी, वे अपने पति के इन्द्रिय सुख का मन्त्र समझती थी। पति चाहे जैसे हो, अपनी स्त्री को सुन्दर आभूषणों से उत्तम वस्त्रों से सजावे, उसे स्वादिष्ट पदार्थ खिलावे। यदि उसमें वह सामर्थ्य नहीं है तो वह निखट्टू है, अपाहिज है, उसे विवाह करने का कोई अधिकार नहीं, वह आदर और प्रेम के योग्य नहीं।

उद्दंड पत्नी – गजाधर के प्रति सुमन के मन में असंतोष की भावना पनपने लगी और वह एक उद्दंड पत्नी बन गई। गजाधर के साथ उसका बर्ताव पहले से कहीं रुखा हो गया। वही उसी को अपनी इस दशा का उत्तरदात्ता समझती थी। वह देर से सोकर उठती, कई दिन घर में झाड़ू नहीं देती, कभी–कभी गजाधर को बिना भोजन किए काम पर जाना पड़ता। उसकी समझ में न आता कि यह क्या मामला है, यह काया पलट क्यों हो गई है। सुमन को अपना घर अच्छा न लगता। चित हर घड़ी उचटा रहता। दिन–दिन भर पड़ोसिनों के घर बैठी रहती।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व – चंचल और अभिमानी सुमन को अपने घर के सामने रहने वाली भोली नाम की वेश्या से ईर्ष्या होने लगती है। गजाधर के समझाने पर वह मान गई कि भोली से मेल–जोल अच्छा नहीं। सुमन को इसविचार से बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। उसे विश्वास हो गया कि वे लोग प्रकृति से विषय–वासना वाले मनुष्य थे। उसे अपनी दशा अब इतनी दुखदायी न मालूम होती थी। उसे भोली से अपने को ऊँचा समझने का एक आधार मिल गया था।

सुमन का गर्व शीघ्र ही खंडित हो गया। रामनवमी के दिन सुमन एक बड़े मन्दिर में जन्मोत्सव देखने गई। सुमन ने खिड़की में से आँगन में झाँका तो क्या देखा कि वही उसकी पड़ोसिन भोली बैठी गा रही है। सभा में एक से एक बड़े आदमी बैठे हुए थे कोई वैष्णवी तिलक लगाए, कोई भस्म रमाए, कोई गले में कंठी माला डाले और कोई रामनाम की चादर ओड़े। इस घटना का बीस वर्षीय सुमन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उसने साक्षात् अनुभव किया कि भोली के सामने केवल धर्म सिर ही नहीं झुकाता, धर्म उसका कृपाकांक्षी भी है। धर्मात्मा लोग भी उसका आदर करते है। एक दिन सुमन कई पड़ोसिनों के साथ गंगा नहाने के लिए गई। रास्ते में वह बेनी पार्क में एक बैंच पर बैठ गई। तभी उसके कानों में आवाज आई अरे! यह कौन औरत बैंच पर बैठी है ? उठ वहाँ से क्या सरकार ने तेरे ही लिए बैंचरख दी है ? यह सुनकर सुमन ने मुहं फेरा तो बाग का रक्षक उसे डाँट रहा था थोड़ी देर में उसने देखा की भोली किसी अन्य के साथ वहाँ पर आई। बाग के रक्षक ने उनकी गाड़ी का द्वार खोला और उनके पीछे–पीछे सेवकों के समान चलने लगा। थोड़ी देर में वे उसी बैंच पर आकर बैठ गई जहाँ से रक्षक ने सुमन को हटा दिया था। यह दशा देखकर सुमन की आँखों में से क्रोध के मारे चिगारियाँ निकलने लगीं। उसके एक–एक रोम से पसीना निकल आया। देह तृणके समान काँपने लगी। हृदय में अग्नि की एक प्रचंड ज्वाला दहक उठी। इस घटना के बाद वकील साहब पद्मसिंह के घर हुए जलसे का प्रभाव तो उस पर अमिट रूप में पड़ा। उसने देखा कि भोली की दृष्टि जिस पर पड़ जाती थी, वह गद्गद् हो जाता था और जिससे हसँ–हँसकर वह एक दो बात कर लेती उसे तो मानो कुबेर का धन मिल जाता। उस भाग्यशाली

पुरुष पर सारी सभा की सम्मान दृष्टि पड़ने लगती। उसके सभा में एक से एक विद्वान, एक–से–एक रूपवान सज्जन उपस्थित थे, किन्तु सबके सब इस वेश्या के हाव–भाव पर मिट जाते थे। सुमन सोचने लगी इस स्त्री में कौन साजादू है। वह भोली के सौन्दर्य की तुलना करने लगती है और धीरे–धीरे इस निष्कर्ष पर पहुँचती है –

''सौन्दर्य ? हाँ, हाँ वह रूपवती है, इसमें संदेह नहीं। मगर मैं भी तो ऐसी बुरी नहीं हूँ। वह साँवली है मैं गोरी हूँ। वह मोटी है, मैं दुबली हूँ। ... क्या लोग उसके स्वर लालित्य पर इतने मुग्ध हो रहे हैं ? उसके गले में लोच नहीं मेरी आवाज उससे बहुत अच्छी है अगर कोई महीने भर भी सिखा दे तो मैं उससे अच्छा गाने लगूँ। मैं भी वक्र नेत्रों से देख सकती हूँ। मुझे भी लज्जा से आँखें नीची करके मुस्कराना आता है।''

समाज में नीच समझी जाने वाली भोली का ऐसा सम्मान देखकर सुमन के मन में अन्तर्द्वन्द्व का होना स्वाभाविक ही था। भोली का सर्वत्र सम्मान देखकर उसका ब्राह्मणत्व, उच्चता, कुल संस्कार और यहाँ तक कि उसकी आत्मा भी हिल उठी। पति के निर्मल व्यवहार ने उसकी भावनाओं को कुचल दिया। अपने सम्माननीय पति के घर, वकील पद्मसिंह के घर से जब उसको निकाल दिया गया, तब समाज में आदर और सम्मान प्राप्त हुआ भोली वेश्या के यहाँ। इस कारण यदि वहाँ की होकर रह गई तो इसमें आश्चर्य क्या? उसका मानसिक अन्तर्द्वन्द्व वास्तव में भोली के यहाँ पहुँचने पर ही कुछ समय के लिए शांत हो पाया।

सुमन का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व इस समाज में आने के बाद फिर सुगबुगा उठा। इस प्रकार से वह छः महीने में ही रूप के इस हाट से उकताने लगी, तभी विट्ठलदास जैसे समाज–सुधारक के संपर्क में आने पर वह उनकी बात भी मानने लगती है। यहाँ आकर उसे मालूम होता है कि निर्लज्जता ही सब कष्टों से अधिक दुस्सह है। इससे आत्मा का संहार हो जाता है। वह अपने जीवन का आधार सेवावृत्ति बना लेती है और वेश्यावृत्ति का परित्याग कर देती है।

इस प्रकार सुमन के सम्पूर्ण जीवन चरित्र के अध्ययन करने के बाद हमें ज्ञात होता है कि वह अपने चरित्र की पवित्रता के विषय में बहुत सजग रहती है। परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप उसका मनसिक अन्तर्द्वन्द्व बढ़ जाता है पर वह शीघ्र ही अपनी भावनाओं पर काबू पा लेती है और शीघ्र ही सहज सामान्य होकर अपने आपको नई परिस्थिति में ढालने लगती है। इसीलिए हम उसके बारे में कह सकते हैं कि वह कीचड़ में कहीं नहीं फँसती बल्कि कीचड़ में कमल की भाँति निस्पृह रहती हुई पवित्रता को सुरक्षित रखने में सफल रहती है।

शांता

सुमन की छोटी बहन शांता उसी की तरह सुन्दर रूपवती है, गुणशीलवान है परंतु बचपन से ही शांता का स्वभाव सुमन से भिन्न है। शांता सुमन की तरह चंचल, अल्हड़ नहीं है, वह अपने नाम को सार्थक करने वाली शांत स्वभाव की गंभीर लड़की है। पिता के जेल जाने के बाद वह माँ के साथ मामा–मामी के घर आती है। मामा, उमानाथ तो भले आदमी हैं, बहन और भाँजी को प्रेम से रखना चाहते हैं। मामी – जान्हवी झगड़ालू, दुष्ट स्त्री है। चिंता, शोक और निराशा के कारण शांता की माँ बीमार पड़ जाती है और बिना दवाई, उपचार के उसकी अकाल मृत्यु हो जाती है। शांता का

एकमात्र अवलंबन भी नष्ट होता है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति शांता को ढ़ीठ बना देती है। मामी की जली–कटी बातों का बहुदा वह उत्तर भी देती है।

मामा उसके लिए अच्छा वर ढूँढ लाते हैं। सदनसिंह जैसे उच्च, धनी खानदान की सुन्दर युवक से उसकी शादी तय होती है किंतु दुर्भाग्य उसका पीछा नहीं छोड़ता। उसकी बड़ी बहन सुमन की दुर्गति की खबर ससुराल वालों को लगती है और वे बड़ी निर्ममता से बारात वापस ले जाते हैं। ऐसी कठिन परिस्थिति में भी शांता धीरज नहीं खोती। उसके पति के चाचा, वकील पद्मसिंह को पत्र लिखकर उसे वहाँ से ले जाने के लिए प्रार्थना करती है। पत्र में पद्मसिंह को 'धर्म–पिता' संबोधित करती है, जिसे पढ़कर वह वशीभूत हो जाते हैं। अतः वे तुरंत विठ्ठलदास कोसाथ लेकर शांता को काशी ले आते हैं। प्रेमचंद जी नहीं चाहते थे कि स्त्री मोम की गुड़िया बनी रहे। उसमें अपनी उन्नति का प्रगति का मार्ग ढूँढने की इच्छा होनी चाहिए। उसमें भले–बुरे को पहचानने की शक्ति होनी चाहिए। यही विशेषताएँ हम शांता में भी पाते हैं। शांता अपने निर्णयों पर अडिग होती है। उसके मामा जब उसका विवाह दूसरी जगह तय कराना चाहते हैं, तब वह उस प्रस्ताव का विरोध करती है। भले ही विवाहविधि पूर्ण न हुई हो, मगर वह सदन को ही अपना पति मानती है। अनेक बाधाओं को पार करते हुए उसे अंत में पा लेती है।

कठिनाइयों से गुजरते वक्त मनुष्य के गुण उभरकर सामने आते हैं, अपनी अच्छाइयों से वह लोगों को और परिस्थिति को भी जीत लेता है। मगर सुख में, आराम में वह अपने सद्गुण भूलता नज़र आता है। प्रेमचंद जी ने शांता के चरित्र से यह बातें हमारे सामने रखी हैं। सदन और शांता की गृहस्थी के आरंभ में उन्हें सुमन की जरूरत होती है, उस वक्त तो उसे घर में बेझिझक रखा जाता है, पर जैसे शांता का ससुराल वालों से मेल–मिलाप हो जाता है उसे सुमन की अब कोई आवश्यकता नहीं रहती। फिर सुमन की पिछली जिंदगी का पता लगकर आसपास के लोगों में कहीं हम बदनाम ना हो जाएं, इस आशंका से उसे सुमन का उनके साथ रहना खलने लगता है। सगी बहन होकर शांता सुमन से ऐसा व्यवहार करती है कि विवश होकर सुमन उसका घर छोड़कर चली जाती है। प्रेमचंद जी का यह नारी पात्र गुण–अवगुणों से युक्त होने के कारण ही सजीव बना है, प्रभावी है।

सुभद्रा

उस समय की बड़े घर की, कुलवान स्त्री का यह प्रतिनिधिक स्त्री–पात्र है। वकील पद्मसिंह की पत्नी सुभद्रा है। सुभद्रा और पद्मसिंह का दाम्पत्य जीवन सुख और प्रेम का है, आदर्श है। गृहस्वामिनी का पूरा अधिकार सुभद्रा नेपाया है। अपने आपको इस अधिकार के लिए सुभद्रा ने सिद्ध भी किया है। किफायती से घर चलाकर वह पति की आमदनी से बचत भी होशियारी से करती है। तथा इस धन का उपयोग वह खुद के लिए नहीं करती, अपने पति को आवश्यकता पड़ने पर वह तुरन्त पैसे निकालकर देती है। सदन के लिए घोड़ा खरीदना केवल सुभद्रा के कारण ही संभव होता है। सुभद्रा अपना सुख अपने पति के सुख में ही देखती है। इसलिए सन्तानहीन होकर भी वह घर में योग्य मान पाती है।

ज्यादा पढ़ीलिखी ना होते हुए भी उसकी समझ–बूझ अच्छी है। जब अपने पत्र में संपादक प्रभाकर राव लेखमाला छापते हैं और पद्मसिंह पर मार्मिक चोट करते हैं, पद्मसिंह तिलमिला उठते हैं। लेख का उत्तर लिखने बैठ

जाते हैं। उस वक्त सुभद्रा उन्हें योग्य मशवरा देती है। वह कहती है, "यह लेख नहीं, खुली हुई गालियाँ हैं और गालियों का उत्तर गाली से मूर्ख देते हैं। अतः गालियों का सही उत्तर मौन है।" अपनी विचारशीलता से वह पति के मन में स्थान निर्माण करती है।

सुभद्रा सुमन की सहेली है और हितेच्छु भी। इसीलिए अपने पति का नौकर के द्वारा सुमन के घर से बाहर निकलना उसे बहुत बुरा लगता है। इस बात पर वह पति को कड़े शब्दों में उलाहना देती है, पद्मसिंह भी चुपचाप सिर झुकाए सुन लेते हैं। क्योंकि सुभद्रा का उन पर अधिकार होता है।

उपन्यास के अंत में सुभद्रा बड़ी उत्सुक्ता से सुमन का 'सेवासदन' आश्रम देखने जाती है। उसे सुमन से पहले स्नेह होता है, पर आश्रम देखकर उसके मन में उसके प्रति भक्ति उत्पन्न होती है। आश्रम का उत्तम प्रबंध हर जगह की उत्तम सफाई और लड़कियों के खिले हुए चेहरे देखकर सुभद्रा दंग रह जाती है।

भोली

भोली एक वेश्या है, जो सुमन के घर के सामने ही रहती है। वेश्या के लिए आवश्यक सभी विशेषताएँ उसमें हैं। दिखने में सुंदर है, जो कुछ कसर है वह बनाव शिंगार से पूरी करती है। गायनकला में पारंगत है। अपनी कला तथा सौंदर्य के बल पर उसने शहर के बड़े धनी लोगों को अपने वश में रखा है। सिर्फ पुरुषों को ही नहीं स्त्रियों से भी घुलमिल कर अपने प्रति अच्छा मत बनवाने में निपुण है।

पहले पहल सुमन उसकी तरफ घृणा से देखती है। मगर भोली खुद आकर उससे बातचीत करती है, मौलूद के वक्त उसके घर मिठाई भिजवाती है। सुमन भी देखती है कि कितने बड़े–बड़े लोग, सभ्य लोग भोलीबाई के समारोह में शामिल होने आये। इतना ही नहीं, सुमन का पति भी समारोह में शामिल होता है। इस तरह भोलीबाई सुमन का मन जीतने में सफल होती है। सुमन जब घर से पति द्वारा निकाली जाती है, तब भोली के सहारे चली जाती है, इतना विश्वास भोली उसके मन में पैदा करती है। भोली बड़ी चतुरता से सुमन की तारीफ करती है, "तुम्हें तो रानी बनना चाहिए था। मगर पाले पड़ी एक खूसट के जो तुम्हारा पैर धोने के लायक भी नहीं।" बाद में अपना बखान करती है कि किस तरह शहर के लोग उसकी इज्जत करते हैं, यहाँ तक कि मंदिर के महंत जी भी एक बुलावा भेजते ही दोड़े चले आते हैं, वगैरह। भोले–भाले स्वभाव की सुमन उसके झाँसे में आ जाती है। उसे रेशमी साड़ी से सजाकर, सँवारकर वह अपनी महरी से किसी सेठ को पंजे में लाने की बात बड़ी दुष्टता से करती है। इस प्रकार 'भोली' नाम की चालाक वेश्या का चित्रण प्रेमचंद जी करते हैं। उपन्यास में हमें वह थोड़े समय के लिए मिलती है, परंतु सुमन की और परिणामस्वरूप सुमन के परिवार की तबाही का कारण बन जाती है।

8.3.2 'सेवासदन' के पुरुष पात्र

सदन

सदन सेवासदन उपन्यास का नायक है। वह पंडित मदनसिंह और भामा का इकलौता लड़का है। अतः उसका

लालन–पालन बड़े चाव से हुआ है। इसी कारण उसकी आदत बिगड़ जाती है। उपन्यासकार के शब्दों में –

''माँ–बाप का इकलौता लड़का बड़ा भाग्यशाली होता है। उसे मीठे पदार्थ खूब खाने को मिलते हैं, किन्तु कड़वी ताड़ना कभी नहीं मिलती। सदन बाल्य काल में ढीठ, हठी और लड़ाका था। वयस्क होने पर वह आलसी, क्रोधीऔर बड़ा उद्दंड हो गया। माँ–बाप को यह सब मंजूर था वह चाहे जितना भी बिगड़ जाए पर आँख के सामने से न टले।उससे एक दिन का बिछोह भी न सह सकते थे। पद्मसिंह ने कितनी बार अनुरोध किया कि इसे मेरे साथ जाने दीजिए, मैं इसका नाम किसी अंग्रेजी मदरसे में लिखवा दूँगा किन्तु माँ–बाप ने कभी स्वीकार नहीं किया। सदन ने अपने कस्बे ही के मदरसे में उर्दू और हिन्दी पढ़ी थी। भामा के विचार में उसे इससे अधिक विद्या की ज़रूरत नहीं है।''

अपने माता–पिता की इन्हीं भावनाओं के कारण सुविधाएँ होते हुए भी सदन अधिक पढ़ न सका। धीरे–धीरे वह उद्दंड और आलसी होता चला गया। उसका मन अपने चाचा पद्मसिंह के पास जाने को बहुत करता था। उनके साबुन, तौलिये, जुते, स्लीपर, घड़ी और कालर को देखकर उसका जी बहुत लहराता। घर में सब कुछ था पर वह फैशन की सामग्री कहाँ ?

शौकीन तबीयत – सदन अपनी उक्त मानसिकता के कारण शौकीन तबीयत होता चला गया। एक बार जबकि पद्मसिंह को घर आना था और वह नहीं आये तो सदन ने अपने चाचा के पास जाने की ज़िद्द की। उसने मन मेंनिश्चय कर लिया कि चाचा के पास भाग चलना चाहिए, क्योंकि अब उसे रेशमी अचकन और वार्निश के जूते पाने की आशा न थी। निश्चय करके वह रात में सब के सो जाने पर भाग खड़ा हुआ। शहर में पहुँच कर उसकी शौकीन मिजाज़ी और बढ़ गई शहर में हवाखोरी के बहाने से रईसजादों की तरह सैर करने निकला करता। ''शाम को शर्माजी उसके लिए टिफिन तैयार करवा देते। तब सदन गर्व से अपना सूट पहनकर घूमने निकलता। ... वह कभी दालमण्डी की तरफ जाता, कभी चौक की तरफ। उसके रूप–रंग, ठाट–बाट पर बूढ़े, जवान सब की आँख उठ जाती। युवक उसे ईर्ष्या से देखते बूढ़े स्नेह से। लोग राह चलते–चलते उसे एक आँख देखने को ठिठक जाते दुकानदार समझते कि यह किसी रईस का लड़का है। इन दुकानों के ऊपर सौंदर्य का बाजार था। सदन को देखते ही उस बाजार में एक प्रकार की हलचल मच जाती। वेश्याएँ छज्जों पर आकर खड़ी हो जाती और प्रेम कटाक्ष के बाण उस पर चलाती। देखें वह बहका हुआ कबूतर किस छतरी पर उतरता है।''

हृष्ट–पुष्ट युवक– सदन एक हृष्ट–पुष्ट और सुन्दर युवक था। उसे व्यायाम का शौक़ था। इस कारण उसकी देह–दृष्टि निखरती चली गई। प्रेमचन्द ने लिखा है –

''हाँ प्रातः काल थोड़ी सी कसरत ज़रूर कर लिया करता था। उसका उसे व्यसन था। अपने गाँव में उसने एक छोटा सा अखाड़ा बनवा रखा था। यहाँ अखाड़ा तो न था। कमरे में ही डंड कर लेता। ... वह अत्यन्त रूपवान, सुगठित, बलिष्ठ युवक था, देहात में रहा, न पढ़ना, न लिखना, न मास्टर का भय, न परीक्षा की चिंता, सेरों दूध पीता था। घर की भैंस थी–घी के लौंदें के लौंदें उठा खा जाता। उस पर कसरत का शौक। शरीर बहुत सुडौल निकल आया था। छाती चौड़ी गर्दन तनी हुई, ऐसा जान पड़ता था मानों देह में ईंगुर भरा हुआ है। उसके चेहरे परवह गंभीरता और

कोमलता न थी, जो शिक्षा से उत्पन्न होती है उसके मुख से वीरता और उद्दंडता ढलकती थी। आँखें मतवाली सतेज और चंचल थीं।''

विलासोन्मुख – सदन को शहर में आकर शहर की हवा लग गई। उसके चाचा पद्मसिंह ने उसके लिए एक मास्टर रखा, किन्तु सदन की उस ओर रूचि नहीं थी। सदन अपने को रसिया दिखाना चाहता था, प्रेम से अधिक बदनामी का आकांक्षी था। इस समय यदि उसका कोई अभिन्न मित्र होता तो सदन अपने कल्पित दुष्प्रेम की विस्तृत कथाएं वर्णन करता। धीरे–धीरे उसके चित्त की चंचलता यहाँ तक बढ़ी कि उसका पढ़ना लिखना छूट गया। मास्टर आते और पढ़ाकर चले जाते। सदन को उनका आना बहुत बुरा मालूम होता। उसका मन हर घड़ी बाजार की ओर लगा रहता, वही दृश्य आँखों में फिरा करते, रमणियों के हाव–भाव और मृदु मुस्कान के स्मरण में मग्न रहता।

धीरे–धीरे दो–तीन मास में ही सदन का संपूर्ण संकोच उड़ गया और फिटिन पर सवार दोनों आदमी उसे यमदूत की भाँति दिखाई देने लगे। उनकी उपस्थिति में उसकी वृत्तियाँ खुलकर नहीं खेल सकती थीं। अतः उनसे छुटकारा पाने का उसने उपाय सोचा। उसने अपने चाचा से आग्रह किया कि उसके लिए वे एक घोड़ा ले दें। वह इस तथ्य से सर्वथा अनभिज्ञ था कि सुमन के चले जाने के बाद पद्मसिंह का मन काम–काज में कम लगता था और उसके खर्चे को लेकर भी चाचा–चाची में चख–चख होती रहती है पद्मसिंह के इस प्रस्ताव पर कि इसी घोड़े पर ज़ीन खिंचवा लो–सदन सहमत नहीं होता है। वह बहुत दुर्बल है, सवारी में न ठहरेगा। कोई चाल भी तो नहीं, न कदम न सरपट। कचहरी से थका–माँदा आयेगा तो क्या चलेगा।

सदन का मन रखने के लिए पद्मसिंह को डिगवी साहब का घोड़ा चार सौ रूपये में खरीदना पड़ा। इस घोड़े के आ जाने पर वह अपनी बाँकी ? सज–धज के साथ चारों ओर घूमा करता। अब वह इतना निःशंक हो गया था कि दालमण्डी में घोड़े से उतर कर तम्बोलियों की दुकानों पर पान खाने बैठ जाता। वह समझते, यह कोई बिगड़ा हुआ रईसज़ादा है। उससे रूप हाठ की नई–नई घटनाओं का वर्णन करते। पद्मसिंह ने भी उसे कई बार देखा पर लज्जावश कुछ न कह पाते थे।

सदन सुमन के छज्जे के सामने किसी न किसी बहाने से अवश्य ठहर जाता। उसके रूप लावण्य में एक मनोहारी सरलता थी जो सदन को बार–बार अपनी ओर आकर्षित करती थी। उसके मन में इस सरल सौंदर्य मूर्ति को अपना प्रेम अर्पण करने की प्रबल लालसा जाग उठी। एक दिन सुमन का मुजरा समाप्त हुआ ही था कि सदन उसके कमरे में पहुँच गया। सुमन ने देखा –

''उसका चेहरा पद्मसिंह से मिलता हुआ मालूम होता था। हाँ, गंभीरता की जगह एक उद्दंडता झलकती थी। वह काँइयापन व क्षुद्रता जो इस मायानगर के प्रेमियों का मुख्य लक्षण है, वहाँ नाम को भी न थी। वह सीधा–सादा, सहज स्वभाव, सरल नवयुवक मालूम होता था।... सुमन उठी और मुस्कराकर सदन की ओर हाथ बढ़ाया।सदन का मुख लज्जा से अस्वर्ण हो गया। आँखे झुक गयीं। उस पर एक रौब–सा छा गया। मुख से एक शब्द भी न निकला।

सुमन सदन पर मोहित हो उठी, किन्तु पद्मसिंह और सभुद्रा की दृष्टि में और नीचे न गिरने के कारण इस प्रेम को छिपाती थी। सदन उसके भावों से अनभिज्ञ होने के कारण उसकी प्रेम शिथिला को अपनी धनहीनता पर अवलंबित समझता था। उसका निष्कपट मन प्रगाढ़ प्रेम में मग्न हो गया था। सुमन उसके जीवन का आधार बन गई थी। मगर विचित्रता यह थी कि प्रेम लालसा में इतना प्रबल होते हुए भी वह अपनी कुवासनाओं को दबाता था। उसका अक्खपड़न लुप्त हो गया था।.. पर सुमन की अनिच्छा दिनों–दिन बढ़ती देखकर उसने अपने मन में यह निर्धारित किया कि पवित्र प्रेम की क़दर यहाँ नहीं हो सकती, यहाँ के देवता उपासना से नहीं, भेंट से प्रसन्न होता है।

सदन के मन में यह भावना अधिक से अधिक पनपने लगी। कीमती उपहारों को प्राप्त करने की लालसा में माता–पिता और अपने चाचा से छल करने लगा। उसने अपने पिता को एक पत्र लिखा कि यहाँ मेरे भोजन का अच्छा प्रबन्ध नहीं है, लज्जावश चाचा साहब से कुछ कहा नहीं जा सकता, मुझे कुछ रूपये भेज दीजिये। वह अपनी बुद्धि से यह नहीं सोच पाया कि इस प्रकार का पत्र उनके माता–पिता और चाचा में कलह का कारण बन सकता है।

घर पर पत्र पहुँचते ही भामा ने पति को ताने देने शुरू किये, ''इसी भाई का तुम्हें इतना भरोसा था, घमंड से धरती पर पावँ नहीं रखते थे। अब घमंड टूटा कि नहीं ? वह भी चाचा पर फूला हुआ था, अब आँखें खुलीं मदनसिंह को संदेह हुआ कि सदन ने यह पाखंड रचा है। भाई पर उन्हें अखंड विश्वास था लेकिन जब भामा ने रूपये भेजने पर ज़ोर दिय, तो भेजने पड़े। रूपये पाकर वह सुमन को एक साड़ी भेंट करता है, किन्तु इस बात का भी वांछित प्रभाव न देखकर वह मौका पाकर अपनी चाची का एक कंगन चुराकर उसे भेंटे करता है। सुमन उस कंगन को पहचान गई उसके हृदय पर एक बोझ–सा पड़ा। उसने कहा – ''मेरे लिए सबसे अमूल्य चीज आपकी कृपा है वही मेरे ऊपर बनी रहे। इस कंगन को आप मेरी ओर से नई रानी साहिबा को दे दीजियेगा। मालूम होता है कि अभी आप मुझे बाज़ारूऔरत समझे हुए हैं आप ही एक ऐसे पुरूष हैं जिस पर मैंने अपना प्रेम, अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, लेकिन आप ने अभी तक उसका कुछ मूल्य न समझा।''

सुमन की बात का सदन पर वांछित प्रभाव नहीं पड़ता है वह समझता है कि सुमन को इससे भी अनेक मूल्यवान उपहार मिलते रहते हैं इसलिए वह इसे उपेक्षा की दृष्टि से देख रही है और उसके दिए उपहार को लौटाना चाहती है। उपन्यासकार सदन की मानसिक दशा का चित्रण बड़े नपे–तुले शब्दों में करता है –

''सदन की आँखें भर आयीं। उसने मन में सोचा, यथार्थ में मेरा ही दोष है। मैं उनके प्रेम जैसी अमूल्यवस्तु को इन तुच्छ उपहारों का इच्छुक समझता हूँ। मैं हथेली पर सरसों जमाने की चेष्टा में इस रमणी के साथ अन्याय करता हूँ । आज इस नगर में ऐसा कौन है जो उसके प्रेम कटाक्ष पर अपना सर्वस्व न लुटा दे ? बड़े–बड़े ऐश्वर्यबान मनुष्य आते हैं और वह किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती, पर मैं ऐसा भावशून्य नीच हूँ कि इस प्रेम–रत्न को कोड़ियों के भाव खरीदना चाहता हूँ।''

सदन का विवाह पक्का हो जाता है और उसे गाँव बुला लिया जाता है। वह गाँव की ओर चल देता है और उसकी विलास आकांक्षा अतृप्त रह जाती है। उसके बाद सदन का विवाह तय होता है। पिता द्वारा मान–मार्यादा की

रक्षा के लिए उसके विवाह की रस्में पूरी नहीं हो पाती। पुनः सुमन की प्रेरणा से वह शांता के साथ विवाह की रस्में पूरी करता है, किन्तु सुमन की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखता। शांता के प्रसव काल में उसकी विलास आकांक्षा उभरती है और वह दालमण्डी जा पहुँचता है प्रेमचन्द ने इस समय की उस दशा के बारे में लिखा है –

''उसकी विलास–तृष्णा ने मन को फिर चंचल करना शुरू किया, कुवासनाएँ उठने लगीं। वह युवती मल्लाहिनों से हँसी करता, गंगातट पर जाता तो गंगास्नान करने वाली स्त्रियों को कुदृष्टि से देखता। यहाँ तक कि एक दिन इस वासना से विहल होकर वह दालमण्डी की ओर चला।''

अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित – सेवासदन उपन्यास में सदन सबसे अधिक अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित पात्र है। संभवतः उसके अन्तर्द्वन्द्व का कारण है समस्याओं के बारे में दो टूक फैसला न कर पाना। उसके बारे में उपन्यासकार ने लिखा है – ''विचारों की स्वतंत्रता विद्या, संगति और अनुभव पर निर्भर होती है। सदन इन सभी गुणें से रहित था। यह उसके जीवन का वह समय था जब हमको अपने धार्मिक विचारों पर अपनी सामाजिक रीतियों पर एक अभिमान सा होता है।'' सदन सामाजिक रीतियों और व्यक्तिगत एशणाओं में पिसता दिखाई पड़ता है। यथा –

''निःसंदेह सुमनबाई पर जान देता था, लेकिन उसके लौकिक शास्त्र में यह प्रेम उतना असभ्य न था, जितना सुमन की परछाई का उसके घर में आ जाना। उसने अब तक सुमन के यहाँ पान ना खाया था। अपनी कुल–मर्यादा और समाजिक प्रथा को अपनी आत्मा से कहीं बढ़कर महत्त्व की वस्तु समझता था। उस अपमान और निंदा की कल्पना ही उसके लिए असह्य थी, जो कुलटा स्त्री से सम्बन्ध हो जाने के कारण उसके कुल पर आच्छादित हो जाती। वह जनवासे में पंडित पद्मसिंह की बाते सुन–सुनकर अधीर हो रहा था। वह डरता कि कहीं पिताजी उनकी बातों मे न आ जाए।''

विवाह के असफल हो जाने पर सदन का मन पुनः सुमन की ओर झुकने लगा–किन्तु यहाँ आकर वह पुनः बड़ी दुविधा में पड़ गया। उसे संशय होने लगा कि कहीं सुमनबाई को ये सब समाचार मालूम न हो गये हों... यदि ऐसा होगा तो कदाचित् वह मुझसे सीधे मुँह बात भी न करेगी सम्भव है वह मेरा तिरस्कार करे। लेकिन संध्या होते ही उसने कपड़े बदले, घोड़ा कसवाया और दालमण्डी की ओर चला। लेकिन वहाँ पहुंचकर उसने सुमन के मकान पर ताला देखा पर किसी से पूछा नहीं। रात्रि काट आया। दूसरे दिन वह पुनः चला। उसका मन कुछ आश्वस्त–सा हो चला था। वह सोचने लगा –

''सुमन मुझसे कभी नाराज नहीं हो सकती और जो नाराज़ भी हो तो क्या मैं उसे मना नहीं सकता ? मैं उसके सामने हाथ जोड़ूँगा, उसके पैर पड़ूँगा और अपने आँसुओं से उसके मन का मैल धो दूँगा। वह मुझसे कितनी ही रूठे, लेकिन मेरे प्रेम का चिन्ह अपने हृदय से नहीं मिटा सकती। आह! वह अगर अपने कमल नेत्रों में आँसू भरे हुए मेरी ओर देखेगी तो मैं उसके लिए क्या न कर डालूँगा ? यदि उसे कोई चिन्ता हो तो मैं उस चिन्ता को दूर करने के लिए अपने प्राण तक समर्पण कर दूँगा।''

सदन के भाव–विचारों से ज्ञात होता है कि वह अपनी मानसिक भावना की अन्तर्द्वन्द्व अवस्था में कभी तो सुमन की बहन की परछाई से भागता है और कभी सुमन के पैरों में पड़कर अपने अपराध क्षमा करवा लेना चाहता है उसकी यह दुविधा उसका पीछा अन्त तक नहीं छोड़ती।

दालमण्डी के सामने पहुँचने पर उसने सोचा, कहीं वह मुझे देखे और अपने मन में कहें ''वह जा रहे हैं कुँवर साहब, मानों सचमुच किसी रियासत के मालिक हैं कैसे कपटीधूर्त हैं'' यह सोचते ही उसके पाँव बंध गये और वह आगे न जा सका।

सदन की अपनी कोई स्वतंत्र विचार शक्ति तो है नहीं! इसी कारण वह भावनाओं के जंगल में भटकता रहता है। एक संध्या प्रोफ़ेसर रमेशदत्त का व्याख्यान सुनकर उसने सोचा, ''मैं बहुत बचा, नहीं तो कहीं का न रहता। इन्हें अवश्य शहर से बाहर निकाल देना चाहिए। यदि ये बाजार में न होती तो मैं सुमनबाई के जाल में कभी न फँसता।'' उस पर वेश्या विरोधी भाषणों का प्रभाव धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है। इसी का प्रभाव था कि वह किसी वेश्या को पार्क में, फिटन पर टहलती या बैठी देख लेता तो उसे ऐसा क्रोध आता कि उसे जाकर उठा दे। उसका वश चलता तो इस समय वह दालमण्डी की ईंट से ईंट बजा देता। इस समय नाच कराने वाले, देखने वाले दोनों ही उसकी दृष्टि में संसार के सबसे पतित प्राणी थे। वह उन्हें कहीं अकेले पा जाता, तो कदाचित् उनके साथ कुछ असभ्यता से पेश आता।सदन के मन की इस अवस्था के बारे में उपन्यासकार का विचार है कि ''सदन इस समय आत्म सुधार की लहर में बह रहा था। रास्ते में अगर उसकी दृष्टि किसी युवती पर पड़ जाती तो तुरन्त ही अपने को तिरस्कृत करता और अपने मन को समझाता कि इस क्षण भर के नेत्र सुख के लिए तू अपने भविष्य जीवन का सर्वनाश किए डालता है। इस चेतावनी से उसके मन को शांति होती थी।''

सदन का मन अत्यधिक डाँवाडोल था। उसके निश्चयों में किसी प्रकार की दृढ़ता न थी। एक दिन गंगास्नान के लिए जाते हुए चौक में वेश्याओं का एक जलूस दिखाई दिया। सौंदर्य, स्वर्ण और सौरभ का ऐसा चमत्कार उसने कभी न देखा था। रेशमी रंग और रमणीयता का ऐसा अनुपम दृश्य शृंगार और जगमगाहट की ऐसी अद्‌भुत छटा उसके लिए बिल्कुल नयी थी, मन को बहुत रोका, पर रोक न सका, किन्तु जलूस के चले जाने के बाद वह अपने आपको धिक्कारने लगा। तथा –

''वाह! मैंने अपनी आत्मा का कितना पतन कर दिया ? मुझमें कितनी निर्बलता है ? लेकिन अंत में उसने अपने को समझाया कि केवल इन्हें देखने से मैं पाप का भागी थोड़े ही हो सकता हूँ ? मैंने इन्हें पाप की दृष्टि से नहीं देखा। मेरा हृदय कुवासनाओं से पवित्र है। परमात्मा की सौंदर्य सृष्टि से पवित्र आनन्द उठाना हमारा कर्तव्य है ''सदन की यह विचार शृंखला आगे बढ़ती है और वह पुनः सोचने लगता है –

''सौंदर्य भी कैसी वस्तु है, लोग कहते हैं कि अधर्म से मुख की शोभा जाती रहती है पर इन रमणियों का अधर्म उनकी शोभा को और भी बढ़ाता है। कहते हैं मुख हृदय का दर्पण है। पर यह बात भी मिथ्या जान पड़ती है।''

ऐसे तर्क–वितर्क में झूलता हुआ सदन गंगातट की ओर चल दिया और वहां सुमन का रूपान्तर देखकर ठिठक गया। सदन ने देखा–उसके पैर कांप रहे थे, वह उस जगह से निकला, कोई इशारा भी न किया। सुमन के दूर निकल जाने पर वह अपने को छिपाता हुआ उसके पीछे चला। वह देखना चाहता था कि सुमन कहाँ जाती है। इससे स्पष्ट है कि सदन का अन्तर्द्वन्द्व वास्तव में भाव तरंगों के उतार–चढ़ाव के साथ–साथ पेंगे बढ़ाता हुआ कभी कम होजाता है और कभी बहुत आगे बढ़ जाता है। इसका प्रमुख कारण यही है कि सदन का अपने मन, भाव और विचारों पर कोई नियंत्रण नहीं है।

शांता के विधवाश्रम में आ जाने से सुमन की विचारधारा में परिवर्तन आया। उसने मन में सोच लिया कि वह सदन से न बोलेगी, किन्तु बिना बोले शांता की समस्या सुलझती दिखाई नहीं देती थी। इस कारण जब सदन उसे दिखाई देता है तो वह उससे स्पष्ट रूप से कहती है "भला यह कहां की नीति है कि एक भाई चोरी करे और दूसरा पकड़ा जाए। अतः तुमसे कोई बात छिपी नहीं है, अपने खोटे नसीब से, दिनों के फेर से, पूर्वजन्म के पापोंसे मुझ अभागिनी ने धर्म का मार्ग छोड़ दिया। उसका दण्ड मुझे मिलना चाहिए था और वह मिला। लेकिन इस बेचारी ने क्या अपराध किया था कि जिसके लिए तुम लोगों ने इसे त्याग दिया? इसका उत्तर तुम्हें देना पड़ेगा। देखो, अपने बड़ोंकी आड़ मत लेना यह कायर मनुष्य की चाल है। सच्चे हृदय से बताओ, यह अन्याय था या नहीं और तुमने कैसे घोर अन्याय होने दिया? क्यों तुम्हें एक अबला बालिका का जीवन नष्ट करते हुए तनिक भी दया न आयी।" सुमन की इस बात का सदन कोई उत्तर नहीं दे पाता है।

कर्मठ – सुमन के प्रबोध करने पर सदन में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है। अपने प्रति शांता की निष्ठा देखकर उसमें प्रेमाभिलाषा ही नहीं जगती बल्कि उसमें कर्मठता भी जाग जाती है। प्रेमचन्द ने स्पष्ट किया है कि शांता का परित्याग करने के लिए सदन को तीन भयों ने प्रेरित किया था। (1) लोक–निन्दा का भय (2) माता–पिता के दुःखित होने तथा रूष्ट होने का भय।

लोकनिंदा का भय – सदन ने लोकनिंदा के भय पर विचार किया है। मुझे संसार का इतना भय क्यों है ? संसार मुझें क्या दे देता है ? क्या केवल झूठी बदनामी के भय से मैं उस रत्न को त्याग दूँ, जो मालूम नहीं मेरे पूर्वजन्म की कितनी ही तपस्याओं का फल है ? अगर अपने धर्म का पालन करने के लिए मेरे बधुंगण मुझे छोड़ दे तो क्या हानि है ? लोकनिंदा का भय इसलिए है कि वह हमें बुरे कामों से बचाती है अगर वह कर्तव्य–मार्ग में बाधक हो, तो उससे डरना कायरता है। नहीं, लोकनिंदा का भय मुझसे यह अधर्म नहीं करा सकता, मैं उसे मझधार में न डूबने दूंग। संसार जो चाहे कहे, मुझसे यह अन्याय न होगा।" इस प्रकार पश्चाताप करके सदन लोकनिंदा के भय पर विजय प्राप्त करता है।

माता–पिता के रूष्ट होने का भय – सदन के मन में यह भावना घर कर जाती है कि यदि वह अपने माता–पिता की इच्छा के विरूद्ध कार्य करेगा, तो उसके माता–पिता उससे रूष्ट हो जायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि घर में उसे घुसने नहीं दिया जायेगा या उसे घर की सम्पत्ति से हटा दिया जायेगा या उसे आर्थिक कठिनाइयों का

सामना करना पड़ेगा। इसलिए आवश्यक यह है कि उसे अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। उक्त सब बातों को सोचने समझने के बाद वह अपनी मोहन माला बेच कर नाव खरीदता है और उसे चलवाकर पैसा कमाना आरम्भ कर देता है, उपन्यासकार के शब्दों में :–

''रूपयें की चाट बुरी होती है। सदन अतः उड़ाऊ–लुटाऊ युवक नहीं रहा। उसके सिर पर अब चिन्ताओं का बोझ है, कर्तव्य का ऋण है वह इससे मुक्त होना चाहता है। उसकी निगाह एक–एक पैसे पर रहती है उसे अतः रूपये कमाने और घर बनवाने की धुन है।''

स्वावलम्बी बनने की दिशा में वह अपने क़दम आगे बढ़ा देता है दो माह तक लगातार काम करने के बाद उसे अच्छा लाभ हुआ। उस ने दो मल्लाहों को नौकर रख लिया। सदन मल्लाहों का नेता हो गया। उस का झोपड़ा तैयार हो गया। भीतर एक तख्ता था, दो पलंग, दो लैम्प, कुछ मामूली बर्तन भी। एक कमरा बैठने का था, एक खाना पकाने का, एक सोने का। द्वार पर ईंटों का चबूतरा था। उस के इर्द–गिर्द गमले रखे हुए थे। दो गमलों में लताएं लगाई हुई थीं जो झोपड़ों के ऊपर जाती थीं।

इस प्रकार सदन का अपना मकान भी बन गया और उसने अपनी कल्पना के अनुरूप उसको सुन्दर भी बना दिया । परिश्रम के कारण वह दिन–दुनी रात–चौगुनी उन्नति करता चला गया। मल्लाहों की उसने बेगार समाप्त कर दी। मल्लाहों को वह सूद पर रूपया भी देने लगा। अब उसके मन में विचार आता था कि शांता को अपने घर ले आये पर इस कार्य में अपने चाचा पद्मसिंह की सहायता चाहता है।

सुमन के साथ जब रात में शांता आ गई तो वह बिना किसी से पूछे उसे अपने घर में रख लेता है और साहस का प्रदर्शन करता हुआ विवाह की शेष रस्मों को पूरा कर लेता है। मदनसिंह को जब यह समाचार मिलता है तो वे बहुत बिगड़ते हैं और अपनी सम्पत्ति में से कुछ भी नहीं देना चाहते। पर उसके पुत्र हो जाने के बाद वे आते हैं और पुत्र व पुत्र–वधु और उसके बेटे को अपना लेते हैं। इस बीच सदन अपनी कर्मठता के कारण नावों को चलवाने के साथ साथ चूने की कल भी खरीद लेता है इस प्रकार सदन की उद्योगशीलता पर सभी बहुत प्रसन्न होते हैं। सदन आरंभ में चाहे कैसा भी उद्दंड और किशोर अवस्था में भटका हुआ रहा हो पर अंत में वह अपने उत्तरदायित्व को समझने लगता है और उस बोझ में दबता हुआ अपने जीवन की बदली हुई परिस्थितियों को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। कहना न होगा कि हठी, उच्छृंखल, क्रोधी, उद्दंदड सदन अन्त में अत्यन्त सरल, कोमल, विनीत, संयमी और उदात्तवृत्ति वाला हो जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कैशोर्य और यौवन की संधिबेला में भटका हुआ सदन अंततः संभल जाता है।

गजाधर

गजाधर सेवासदन उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है। वह पन्द्रह रूपये कमाने वाला दुहाजू है। उपन्यास के आरंभ में गंगाजली और उमानाथ के वार्तालाप के माध्यम से उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है यथा –

गंगाजली – भला किसी तरह तुम्हारी दौड़धूप तो ठिकाने लगी। लड़का पढ़ता है। ना?

उमानाथ – पढ़ता नहीं, नौकर है। एक कारखाने मे? 15 रुपये का बाबू है।

गंगा – घर द्वार है न ?

उमा – शहर में किसका घर होता है सब किराये के घर में रहते हैं।

गंगा – भाई – बन्द माँ–बाप हैं।

उमा – माँ–बाप दोनों मर चुके हैं और भाई –बन्द शहर में किसके होते हैं ?

गंगा – उमर क्या है ?

उमा – यही, कोई तीस साल ही होगी।

गंगा – देखने सुनने से कैसा है ?

उमा – सौ में एक । शहर में कोई कुरूप तो होता ही नहीं। सुन्दर बाल, उजले कपड़े सभी के होते हैं। और गुण, शील बातचीत का तो पूछना ही क्या। बात करते मुहँ से फूल झड़ते हैं। नाम गजाधर प्रसाद है।

गंगा – तो दुहाजू होगा ?

उमा – है तो दुहाजू, पर इससे क्या ? शहर में कोई बुड्ढा तो होता ही नहीं, जवान लड़के होते हैं और बुड्ढे जवान, उनकी जवानी सदाहबार होती है वही हँसी दिल्लगी वही तेल–फुलेल का शौक। लोग जवान ही होते हैं और जवान ही मर जाते हैं। ''

इससे स्पष्ट है कि उमानाथ के अनुसार गजाधर 15 रूपये मासिक कमाने वाला तीस वर्षीय दुहाजू है। जहाँ तक उसके व्यक्तित्व का प्रश्न है, उस पर शहरी सभ्यता का पूरा प्रभाव पड़ा हुआ है किन्तु इस सब के बावजूद जब गंगाजली उसे देखती है तो वह बहुत रोती है और उसे ऐसा दुःख होता है मानो किसी ने सुमन को कुएँमें डाल दिया।

इसी प्रकार जब सुमन ससुराल आती है तो वहाँ की अवस्था उसकी कल्पना से भी अधिक बुरी थी। मकान में केवल दो कोठरियाँ थीं और एक सायबान। दीवारों में चारों ओर लोनी लगी थीं। बाहर से नालियोंकी दुर्गन्ध आती रहती थी। धूप और प्रकाश का कहीं गुजर नहीं। इस घर का किराया 3 रुपये महीना था।

सुमन के सौन्दर्य पर मुग्ध गजाधर किसी भी प्रकार से सुमन को प्रसन्न रखना चाहता है उसकी बुआ हैज़े में चल बसती है और महरी चौका बर्तन करने के वास्ते तीन रूपया महीने से कम पर राज़ी नहीं होती है तो वहतीसरे दिन घड़ी रात रहे उठा और सारे बर्तन माँज डाले, चौका लगा दिया, नल से पानी भर दिया। सुमन जब सोकर उठी तो यह कौतुक देख कर दंग रह गई इस प्रकार आत्महीनता की भावना से ग्रस्त गजाधर स्वयं सभी कार्य कर सुमन

की नज़रों में उठना चाहता है।

गजाधर की यह चाल सफल हो जाती है और सुमन स्वयं ही कार्य करने लगती है थोड़े दिनों में उसे काम करने की आदत पड़ जाती है उसे अपने जीवन में आनन्द सा आने लगा। गजाधर उसकी प्रशंसा करने लगा उपन्यासकार के शब्दों में –

''गजाधर को ऐसा मालूम होता था मानो जग जीत लिया है अपने मित्रों से सुमन की प्रशंसा करता फिरता। इतने बड़े घर की लड़की घर का छोटे से छोटा काम भी अपने हाथ से करती है भोजन तो ऐसा बनाती है कि दाल रोटी में पकवान का स्वाद आ जाता है।

कृपणता – गजाधर और सुमन के स्वभाव में बहुत अन्तर है गजाधर अपनी आर्थिक स्थिति को अच्छी तरह जानता है, इसलिए वह अपनी हैसियत में ही रहना चाहता है। जबकि सुमन ने अब तक पिता के घर अच्छा खाया और पहना है दूसरी बात यह कि अभी अल्हड़ युवती है जिसने अभी दुनिया देखी नहीं जो जैसा कहता है उसे ठीक मानती चलती है द्वार पर खोमचे वालों की आवाज़ सुनकर उससे रहा न जाता था। अब तक वह गजाधर के साथ खाती थी पैसों पर झगड़ा होने के बाद अकेली खाने लगी। उपन्यासकर गजाधर की कृपणता के बारे में लिखता है –

''गजाधर ने सुमन को गृहस्वामिनी बना तो दिया था, पर वह स्वभाव से कृपण था। जलपान की जलेबियाँ उसे विषपान के सामान लगती थी। दाल में घी देखकर उसके हृदय में शूल होने लगता था। वह भोजन करता तो बटुली की ओर देखता कि कहीं अधिक तो नहीं बना है दरवाज़े पर दाल चावल फेंका हुआ देखकर शरीर में ज्वाला –सी लग जाती थी।''

सुमन ने अपने सहज स्वाभाविक तरीके से मासिक वेतन रूपये पाकर खर्च करने आरम्भ कर दिए और जब वे बीस दिन में खर्च हो गए तो गजाधर के सिर पर पहाड़ सा टूट पड़ा। उसने खर्च चलाने के लिए इधर–उधर से पैसे उधार माँगे पर न मिले तो निराश हो सुमन से झगड़ा करने लगा। उसने सुमन से कहा–उड़ाए नहीं, पर यह तो तुम्हें मालमू था कि इसी में महीने भर चलाना है उसी हिसाब से खर्च करना था।

सुमन–इतने रूपये में बरकत थोड़े ही हो जायेगी।

बातों ही बातों में जब झगड़ा बढ़ गया तो सुमन ने अपनी हँसुली गिरवी रखने को दी और गजाधर को उसे रखकर आना पड़ा।

गजाधार ने घर की हालत सुधारने के लिए कारखाने से लौटकर एक दुकान पर हिसाब–किताब लिखने का काम कर लिया। इसलिए वह अब रात को आठ बजे लौटता था। इस काम के लिए उसे पाँच रूपये और मिलते थे। पर उसे अपनी आर्थिक दशा में कोई अन्तर न दिखाई देता था। उसकी सारी कमाई खाने पीने में उड़ जातीथी। उसका संचयशील हृदय इस खा–पीकर बराबर की दशा से बहुत दुःखी रहता था। उस पर सुमन उसके सामने अपने फूटे कर्म का रोना रो–रोकर उसे और भी हताश कर देती थी।

गजाधर और उसकी पत्नी के मध्य कटुता धीरे–धीरे बढ़ती जाती है। अब उसे स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि सुमन का हृदय उसकी ओर से शिथिल होता जा रहा है और वह प्रेम रसपूर्ण बातो की अपेक्षा मिठाई के दोनों को अधिक आनन्दप्रद समझती है। अब वह अपने प्रेम और परिश्रम से फल न पाकर सुमन को अपने शासनाधिकार में लाने के लिए अपने शासन अधिकार का प्रयोग करने लगा और इस प्रकार दोनों में तनातनी बढ़ती चली गई।

आत्माभिमानी – गजाधर निर्धन हैं प्रत्येक पैसे को प्राप्त करने के लिए उसे कठोर परिश्रम करना पड़ता है किन्तु इतना होने पर भी उसका आत्माभिमान समाप्त नहीं होता। सुमन का भोली नामक वेश्या से हेल–मेल बढ़ता देखकर उसके तन–बदन में आग–सी लग जाती है और वह सुमन को डाँटता है।

सुमन ने दीनभाव से उत्तर दिया–उसने कई बार बुलाया तो चली गई। कपड़े उतारो अभी खाना तैयार हुआ जाता है। आज तुम और दिनों से जल्दी आ गये हो।

गजाधर – खाना पीछे बनाना, मैं ऐसा भूखा नहीं हूँ। पहले यह बताओ कि तुम वहाँ मुझसे बिना पुछे गयी क्यों ? क्या तुमने मुझे बिल्कुल मिट्टी का लौंदा ही समझ लिया है ?

सुमन–सारे दिन अकेले इस कुप्पी में बैठा भी तो नहीं जाता।

गजाधर – तो इसलिए अब वेश्याओं से मेल–जोल करोगी। तुम्हें अपनी इज्ज़त आबरू का भी कुछ विचार है ?

सुमन – क्यों भोली के घर जाने में कोई हानि है ? उनके घर तो बड़े बड़े लोग आते हैं, मेरी क्या गिनती हैं।

गजाधर – बड़े–बड़े लोग भले ही आवें, लेकिन तुम्हारा वहाँ जाना बड़ी लज्जा की बात है। मैं अपनी स्त्री को वेश्या से मेल–जोल करते नहीं देख सकता। तुम क्या जानती हो कि जो बड़े–बड़े लोग उसके घर आते हैं, वह कौन लोग हैं ? केवल धन से कोई बड़ा थोड़े ही हो जाता है, धर्म का महत्त्व धन से कही बढ़कर है। तुम उस मौलूद के दिन जमाव देखकर धोखे में आ गई होगी, पर यह समझ लो कि उसमें से एक भी सज्जन पुरूष नहीं था। मेरे सेठजी लाख धनी हो, पर उन्हें अपनी चौखट न लांघने दूंगा। यह लोग धन के घमंड में धर्म की परवाह नहीं करते उनके आने से भाजी पवित्र नहीं हो गई है। मैं तुम्हे सचेत कर देता हूँ कि आज से फिर कभी उधर मत जाना, नहीं तो अच्छा न होगा।

शंकाशील व्यक्ति – गजाधर जितना पतित्व के अभिमान में अल्हड़ सुमन को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न करता जाता है उतनी ही बात बिगड़ती जाती है। धीरे–धीरे अनेक शंकाएं उसके मन को घेरती चली जाती हैं। प्रेमचन्द ने उसके मन की अवस्था का चित्रण करते हुए लिखा है –

''गजाधर प्रसाद की दशा उस मनुष्य की सी थी, जो चोरों के बीच में अशर्फियों की थैली लिए बैठा हो। सुमन का वह मुख कमल जिस पर वह कभी भौरें की भांति मंडराया करता था, अब उसकी आँखों में जलती हुई आग के समान था।

वह उससे दूर–दूर रहता। उसे भय था कि वह मुझे जला न दे। स्त्रियों का सौंदर्य उसका पति–प्रेम है। इसके बिना उनकी सुदरता इंद्रायण का फल है, विषमय और दग्ध करने वाला।'' गजाधर ने सुमन को प्रसन्न करने के लिए सब कुछ करके देख लिया, पर स्त्री के लिए आकाश के तारे तोड़ कर लाना उसकी सामर्थ्य के बाहर था।

तर्कशील – गजाधर की मानसिक दशा परिवर्तनशील रहती है। सुमन को तो पास–पड़ोस की स्त्रियों और भोली से दूर रखने में सफल हो जाता है पर जब भोली उसके घर आने जाने लगी तो गजाधर की स्थिति और विकट हो गई। चलते समय भोली ने उससे कहा–''अगर मुझे मालूम होता कि आप सेठ जी के यहाँ नौकर हैं तो अब तक कभी की आपकी तरक्की हो गई होती।'' इन शब्दों ने गजाधर के आत्माभिमान पर चोट की। वह सोचने लगा यह मुझे इतना नीच समझती है कि मैं इसकी सिफारिश से अपनी तरक्की कराऊँगा। ऐसी तरक्की पर लात मारता हूँ। उसने भोली को उसकी बात का कोई जवाब न दिया। भोली के बाद उसने सुमन को आड़े हाथों लिया और उसे डाँटते हुए समझाया भी। जिसमें उसकी तर्क–शीलता उभर कर आती है।

सुमन – उसमें कोई छूत तो नहीं लगी है। शीतल स्वभाव में वह किसी से घटकर नहीं, मान मर्यादा में किसी से कम नहीं, फिर बातचीत करने में मेरी क्या ऐठी हुई जाती है ? वह चाहे तो हम जैसों को नौकर रख ले।

गजाधर – फिर तुमने बे सिर पैर की बात की। मान–मर्यादा धन से नहीं होती।

सुमन – पर धर्म से तो होती है।

गजाधर– तो वह बड़ी धर्मात्मा है ?

सुमन –यह भगवान जाने, पर धर्मात्मा लोग उसका आदर करते हैं। अभी राम नवमी के उत्सव में मैंने उसे बड़े–बड़े पंडितों और धर्मात्माओं की मंडली में गाते देखा। कोई उससे घृणा नहीं करता।

गजाधर – तो तुमने उन लोगों के बड़े–बड़े तिलक छापे देखकर ही उन्हें धर्मात्मा समझ लिया ? आजकल धर्म तो धूर्तो का अड्डा बना हुआ है। इस निर्मल सागर में एक से एक मगरमच्छ पड़े हुए। भोले–भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है। लम्बी–लम्बी जटाएँ, लम्बे–लम्बे छापे–तिलक और लम्बी–लम्बी दाढ़ियाँ देखकर लोग धोखे में आ जाते हैं। पर वह सब के सब महापांखडी, भोगविलास करने वाले पापी हैं। भोली का आदर सम्मान उनके यहाँ न होगा तो किसके यहाँ होगा ?

गजाधर के इस तर्क का सुमन के ऊपर वांछित प्रभाव पड़ा और सुमन का व्यवहार बदल गया। जिस प्रकार वह अपनी पत्नी को रखना चाहता था वह रहने लगी। सारे दिन वह अपनी कोठरी में पड़ी रहती। कभी कुछ पढ़ती कभी सोती। इससे उसका स्वास्थ्य बिगड़ चला।

गजाधर को चिंता होने लगी। कभी वह सुमन पर झुंझलाता। पर शीघ्र ही उसे सुमन पर दया आ जाती। अपनी स्वार्थपरता पर लज्जित होता। उसे धीरे–धीरे ज्ञान होने लगा कि सुमन के सारे रोग अपवित्र वायु के कारण हैं। कहाँ

तो उसे चिक के पास खड़े होने से मना किया करता था, मेलों में जाने और गंगास्नान करने के लिए ताकीद करता। उसके आग्रह से सुमन कई दिन लगातार स्नान करने गई तो अनुभव हुआ कि उसका जी हल्का हुआ। मुरझाया हुआ पौधा पानी पाकर फिर लहलहाने लगा।

क्रोधी – गजाधर ने अपनी विवेक शक्ति का प्रयोग कर सुमन को आनेजाने की छूट तो दे दी पर उसका शंकाशील हृदय न बदला था। वकील पद्मसिंह की पत्नी से सुमन का मेल–जोल बढ़ चला। सुभद्रा के पास जाना होता तो वह गजाधर से कुछ भी नहीं कहती थी। इससे गजाधर के मन की दुःश्चिन्ता बढ़ती जाती थी। एक रात गजाधर नियामनुसार नौ बजे घर आया। किवाड़ बन्द थे चकराया कि इस समय सुमन कहाँ गयी ? पड़ोस में एक दर्जिन रहती थी, जाकर उससे पूछा। मालूम हुआ कि सुभद्रा के घर किसी काम से गयी है। कुंजी मिल गई, आकर किवाड़ खोले, खाना तैयार था। वह द्वार पर बैठ कर सुमन की राह देखने लगा। जब दस बज गये तो उसने खाना परोसा, लेकिन क्रोध में कुछ खाया न गया। उसने सारी रसोई उठकार बाहर फेंक दी और भीतर से किवाड़ बन्द करके सोया रहा। मन में यह निश्चय कर लिया कि आज कितना ही सिर पटके, किवाड़ न खोलूंगा, देखे कहाँ जाती किन्तु उसे बहुत देर नींद न आई जरा आहट होती तो डंडा लिए किवाड़ के पास आ जाता। उस समय यदि सुमन उसे मिल जाती, तो उसकी कुशल न थी।

रात को एक बजे जब सुमन ने कृत्रिम क्रोध के स्वर में कहा–वाह रे सोने वाले। घोड़े बेचकर सोये हो क्या ? दो घड़ी से चिल्ला रही हूँ, मिनकते ही नहीं। ठंड के मारे हाथ–पांव अकड़ गए।

गजाधर निशंक होकर बोला–मुझसे अड़ो मत। बताओ सारी रात कहां रहीं?

इसी प्रकार वाद – विवाद बढ़ता गया और सुमन के झूठे तर्कों और कठोर बातों से गजाधर क्रोधोन्मत्त होकर बोला –

''क्या तू चाहती है कि जो कुछ तेरा जी चाहे किया करे और मैं चू न करूँ। तू रात न जाने कहाँ रही, अब मैं पूछता हूँ तो कहती है, मुझे तुम्हारी परवाह नहीं है, तुम मुझे क्या कर देते हो ? मुझे मालूम हो गया है कि शहर का पानी तुझे भी लगा, तूने भी अपनी सहेलियों का रंग पकड़ा। बस अब मेरे साथ तेरा निर्वाह न होगा। कितना समझाता रहा कि इन चुड़ैलों के साथ न बैठ, मेले ठेले मत जा, लेकिन तूने सुना–न–सुना। मुझे जब तक बता न देगी कितू सारी रात कहाँ रही तब तक मैं तुझे घर में न बैठने दूंगा न बताएगी तो समझ ले कि आज से तू मेरी कोई नहीं, तेरा जहाँ जी चाहे जा, जो मन में आये, कर।''

गजाधर को इस समय सुमन की प्रत्येक बात झूठी लगी। उसने यही समझा की सुमन इस समय केवल उसका क्रोध शांत करना चाहती है इस लिए नम्रता दिखा रही है ऐसी अवस्था में सुमन के तर्क विफल हो गये और गजाधर ने उसे अंत में निकाल कर ही दम लिया।

पश्चाताप – गजाधर सुमन को घर से निकाल देता है और जब उसे यह पता चलता है कि सुमन वकील साहब के

यहाँ गई है तो विट्ठलदास की बात को सत्य मानकर पदम्सिंह की खूब बदनामी करता है पद्मसिंह से मिलने पर उसे अपनी भूल ज्ञात होती है और वह पश्चाताप की अग्नि में जलने लगता है। अब घर उसे काटने को दौड़ने लगता है और वह गृहस्थी को त्याग कर साधु हो जाता है। कृष्णचन्द्र से मिलने पर जब वह उन्हें अपनी कथा सुनाता है तो उससे पश्चाताप ही प्रकट होता है।

"यह सब मेरी निर्दयता और अमानुषीय व्यवहार का फल है वह सर्वगुण सम्पन्न थी, वह इस योग्य थी कि किसी बड़े घर की स्वामिनी बनती। मुझ जैसा दुष्ट, दुराचारी मनुष्य उसके योग्य न था जो उस समय मेरी स्थूल दृष्टि उसके गुणों को न देख सकी। ऐसा कोई कष्ट न था जो उस देवी को मेरे साथ न झेलना पड़ा हो। पर उसने कभी मन मैला न किया। वह मेरा आदर करती थी पर उसका यह व्यवहार देखकर मुझे सब पर संदेह होता था कि वह मेरे साथ कोई कौशल कर रही है। उसका संतोष, उसकी भक्ति, उसकी गंभीरता मेरे लिए दुर्बोध थी। मैं समझता था, वह मुझसे कोई चाल चल रही है। अगर वह मुझ से छोटी–छोटी वस्तुओं के लिए झगड़ा करती, कोसती, ताने देती तो उस पर मुझे विश्वास होता। उसका ऊँचा आदर्श मेरे अविश्वास का कारण हुआ। मैं उसके सतीत्व पर संदेह करने लगा। अन्त में यह दशा हो गई कि एक दिन रात को एक सहेली के घर पर केवल जरा विलम्ब हो जाने के कारण मैंने उसे घर से निकाल दिया।"

इसी प्रकार जब एक रात सुमन डूबने जा रही थी, तो गजाधर अकस्मात् उसकी ओर चला गया और सुमन के पैरों में गिर कर रूद्र कंठ से बोला मेरे अपराध क्षमा करो।

सुमन के यह कहने पर कि यह सब मेरे कर्मों का फल है तो गजाधर कहता है नहीं सुमन ऐसा मत कहो सब मेरी मूर्खता और अज्ञानता का फल है। मैंने सोचा था कि उसका प्रायश्चित कर सकूँगा, पर अपने अत्याचार का भीषण परिणाम देखकर मुझे विदित हो रहा है कि उसका प्रायश्चित नहीं हो सकता।

उमानाथ चुनार गढ़ के निकट गंगा के तट पर खड़े नाव की बाट जोह रहे थे तभी उन्होंने एक साधु को अपनी ओर आते देखा सिर पर जटा, गले मे रूद्राक्ष की माला, एक हाथ में सुलफे की लम्बी चिलम, दूसरे हाथ में लोहे की छड़ी पीठ पर मृगछाला लपटे हुए आ कर नदी के तट पर खड़ा हो गया।

उसने स्पष्ट शब्दों में कहा –

"मेरी असज्जनता और निर्दयता, सुमन की चंचलता और विलास लालसा दोनों ने मिलकर हम दोनों का सर्वनाश कर दिया है। मैं उस समय की बातों को सोचता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि एक बड़े घर की बेटी से ब्याह करने में मैंने बड़ी भूल की और इससे बड़ी भूल यह थी कि ब्याह हो जाने पर उसका उचित आदर सम्मान नहीं किया। निर्धन था इसलिए आवश्यक था कि मैं धन के अभाव को अपने प्रेम और भक्ति से पूरा करता। मैंने इसके विपरीत उससे निर्दयता का व्यवहार किया। अब मुझे मालूम होता है कि मैं उसे घर से निकालने का कारण हुआ, मैं उसकी सुन्दरता का मान न कर सका, इसलिए सुमन को भी प्रेम न हो सका। लेकिन वह मुझ पर भक्ति अवश्य करती थी, पर उस समय मैं अन्धा हो रहा था। कंगाल मनुष्य धन पाकर जिस प्रकार फूल उठता है उसी तरह सुन्दर स्त्री पाकर वह संशय और

भ्रम में आसक्त हो जाता है। ... मैंने उसके साथ जो आत्याचार किए हैं उन्हें स्मरण करके आज मुझे अपनी क्रूरता पर इतना दुःख होता है कि जी चाहता है कि विष खा लूँ। उसी अत्याचार का प्रायश्चित कर रहा हूँ। उस के चले जाने के बाद दो–चार दिन तक तो मुझ पर नशा रहा, पर जब नशा ठंडा हुआ तो मुझे वह घर काटने लगा। मैं फिर उस घर में न गया। ... अब गाँव–गाँव घूमता हूँ और अपने से जहाँ तक हो सकता है दूसरों का कल्याण करता हूँ।''

सेवावृत्ति – उमानाथ के बताने पर वह कहता है – '' आप विवाह तय कर दीजिए। एक हज़ार रूपये का प्रबन्ध ईश्वर चाहेंगे तो मैं कर दूंगा। यह भेष धारण करके अब लोगों को आसानी से ठग सकता हूँ। दो–चार दिन में आपके ही घर पर आप से मिलूँगा।'' गजाधर अब गजानन्द बन चुका है। वह शांता के विवाह के लिए उमानाथ को पन्द्रह सौ रुपये देता है और एक हजार और एकत्रित करता है। इस प्रकार शांता के संपूर्ण विवाह का खर्च वह स्वयं ही जुटा कर देता है।

इस सेवावृत्ति भावना के कारण ही वह वेश्या सुधार के काम में भी जुट जाता है। सुमन को स्वप्न में गजानन्द का उपदेश सुनाई पड़ता है –

''सतयुग में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी, त्रेता में सत्य से, द्वापर में भक्ति से पर इस कलियुग में इसका केवल एक ही मार्ग है और वह है सेवा। इसी मार्ग पर चलो और तुम्हारा उद्धार होगा, जो लोग तुमसे भी दीन-दुःखी दलित है, उनकी शरण में जाओं और उनका आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा। कलियुग में परमात्मा इसी दुःख सागर में वास करते हैं।

''मैं स्वप्न में देख रहा था और तुम्हें सेवाधर्म का उपदेश कर रहा था। सुमन तुम मुझे भली–भाँति जानती हो। तुमने मेरे हाथों बहुत कष्ट उठाए हैं, कष्ट सहे हैं । तुम जानती हो मैं कितनी नीच प्रकृति का अधम जीव हूँ। अब अपनी उन नीचताओं का स्मरण करता हूँ तो मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है। तुम आदर के योग्य थी मैंने तुम्हारा निरादर किया है यह हमारी दुरावस्था का, हमारे दुःखो का मूल कारण है। मैंने अपने बन्धुओं की सेवा करने का निश्चय किया। यही मार्ग मेरे लिए सबसे सरल था। तब से मैं यथाशाक्ति इसी मार्ग पर चल रहा हूँ और अब मुझे अनुभव हो रहा है कि आत्मोद्धार के मार्गों में केवल नाम का अन्तर है। मुझे इस मार्ग पर चलकर शांति मिली है और तुम्हारे लिए भी यही मार्ग उत्तम समझता हूँ।''

गजानन्द के मुख पर एक विमल ज्योति का प्रकाश देखकर सुमन के मन में उसके प्रति भक्ति की भावना उदित होती है और वह सोचने लगती है हाय ! मैंने ऐसे नवरत्न का तिरस्कार किया। इनकी सेवा में रहती तो मेरा जीवन सफल हो गया होता। वह कहती है आज मैं सच्चे मन से यह प्रतिज्ञा करती हूँ । आप ने मेरी बाँह पकड़ी थी, अब यद्यपि मैं पतित हो गई हूँ पर आप ही अपनी उदारता से मुझे क्षमादान कीजिए और मुझे सन्मार्ग पर ले जाइए।

सुमन की इस बात का वांछित प्रभाव गजानन्द पर भी होता है। सुमन के चेहरे पर प्रेम और पवित्रता की छटा देखकर वह व्याकुल हो जाता है उसके मन में बरसों से दबे भाव पुनः जागृत होने लगते हैं। उन्हें स्वयं शंका होने लगी

कि यदि मेरे मन में यह विचार ठहर गए तो मेरा संयम, वैराग्य और सेवाव्रत इसके प्रवाह में तृण के समान बहजायेगा, इसलिए वह अपनी भावनाओं पर अंकुश लगाकर तत्काल बोल उठा– ''तुम्हें मालूम है, यहाँ एक अनाथालय खोला गया है। इस अनाथालय के लिए एक पवित्र आत्मा की आवश्यकता है और तुम्हीं वह आत्मा हो।'' कहकर उसे अनाथालय का सेवाभार उठाने के लिए राज़ी कर लेता है और सुमन उसके आग्रह को नहीं टाल पाती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्वामी गजानन्द कोई आलौकिक महापुरुष नहीं है। प्रेमचन्द ने उसके रूप में एक ऐसे साधु का चित्रण किया है, जो अपने रिश्तेदारों की भलाई और अपनी पत्नी के उद्धार के लिए प्रयत्नशील रहता है। घूमते–फिरते वह अपने स्वजनों के सुख–दुख की टोह रखता है और उनके संकट में उनकी सहायता केलिए जा पहुँचता है उसका माया–मोह अन्त तक नहीं छूटता। इसलिए हम कह सकते हैं कि वह साधु की अपेक्षा मानव के रूप में बहुत ऊँचा उठ जाता है। उसकी उच्च मानवता और उसका साधु रूप प्रेमचन्द की एक अद्‌भुत कल्पना है।

पद्‌मसिंह

पंडित पद्‌मसिंह शहर के एक अच्छे वकील हैं। उनके बड़े भाई मदनसिंह जमींदार हैं। उन्होंने पद्‌मसिंह को वकालत पढ़ाई थी। अतः वह अपने बड़े भाई की बहुत इज्जत करते हैं। पद्‌मसिंह की वकालत पढ़ने से पहले एक शादी हुई थी, उसके एक बच्चा भी हुआ था किंतु छः महीने में ही बच्चा और पत्नी दोनों चल बसे। वकालत पास होने पर उनका दूसरा विवाह सुभद्रा से हुआ। अब इस विवाह को हुए सात साल हो चुके हैं पर उनकी कोई संतान नहीं है। इस एक त्रुटि को छोड़कर उनकी गृहस्थी बड़े सुख से, आराम से चल रही है। पद्‌मसिंह स्वयं एक भले आदमी हैं तथा उनकी पत्नी, सुभद्रा भी सुशील और समझदार औरत है।

पद्‌मसिंह किसी पर अन्याय होते हुए नहीं देख सकते। एक बार घोड़ागाड़ी में घर जाते हुए रास्ते में एक मुस्लिम घर की स्त्री के साथ बगीचे का रक्षक हाथापाई करते नजर आता है, वह तुरंत गाड़ी से उतर कर रक्षक को डाँटते हैं और इस औरत को घर पहुँचा देते हैं।

पति के घर से निकाल देने पर सुमन पद्‌मसिंह और सुभद्रा के घर आश्रय के लिए आती है। पर गजाधर उनकी बदनामी करने लगता है तब पहली बार म्युन्सिपाल्टी के मेंबर बने पद्‌मसिंह अपने बदनामी से डर जाते हैं और सुमन को घर से निकाल देते हैं। इसी कारण सुमन भोलीबाई से आश्रय लेती है और अपनी दुर्गति कर लेतीहै। पद्‌मसिंह सुमन की दुर्गति के लिए खुद को जिम्मेदार मानते हैं और बहुत ही पछताते हैं। संयोगवश उनके भतीजे कीशादी सुमन की बहन से तय होती है और सुमन की असलियत का पता लगने पर पद्‌मसिंह के बड़े भाई, भरी बारात बिना शादी किए वापस ले जाते हैं। उस वक्त भी पद्‌मसिंह अपनी तरफ से अपने बड़े भाई को समझाने की बहुत कोशिश करते हैं इस हादसे से शांता के पिता आत्महत्या कर लेते हैं। अंततः शांता मदद के लिए पद्‌मसिंह को धर्मपिता मानकर पत्र लिखती है। बड़े भाई के क्रोध से डर होते हुए भी वे तुरंत उसकी मदद करने निकलते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पेशे से वकील होते हुए भी पद्‌मसिंह जी बहुत ही सीधे और सच्चे इन्सान हैं। सुमन को वेश्याव्यवसाय से बाहर निकालने

के लिए वह बड़ा त्याग करते हैं। हैसियत ना होते हुए भी महीना पचास रुपए उसे देना तय करते हैं। वेश्या व्यवसाय, भरे बाज़ार से हटाने के लिए वह जी तोड़ मेहनत करते हैं और म्युन्सिपालिटी में प्रस्ताव संमत कराते हैं।

बड़े भाई के किये हुए उपकारों का स्मरण रखकर वह अपने भतीजे मदनसिंह को भी पढ़ाना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। उसके कपड़े, बूट यहाँ तक कि उसके शौक को पूरा करने के लिए साढ़े चार सौ रुपयों का घोड़ा भी खरीदते हैं। उसकी शादी, उसने शुरू किया नया कारोबार, हरवक्त वह मदनसिंह के साथ रहते हैं। मदन और शांता केबेटा होने पर बड़े आनन्द से गाँव जाकर अपने बड़े भाई और भाभी को पोता दिखाने के लिए शहर ले जाते हैं। पद्मसिंह अपनी पत्नी सुभद्रा से अत्याधिक प्रेम करते हैं, उसे बड़े मान से रखते हैं। महत्त्वपूर्ण मसलों पर उसकी राय लेतेहैं, और राय मानते भी हैं। सुमन की दुर्गति के लिए खुद को दोषी मानने के कारण वह अंत तक सुमन से मिलने नहीं जाता।

उस समय का पढ़ा–लिखा, समझदार और सही मायनों में सुधारक वृत्ति का पुरुष प्रेमचंदजी पद्मसिंह के रूप में हमारे सामने रखते हैं।

विट्ठलदास

विट्ठलदास एक समाजसेवक हैं। सार्वजनिक संस्थाओं में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। अनाथालयों के लिए चंदा जमा करना, दीन विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति का प्रबंध कराना ये उनके नित्य कार्य हैं। और जब कभीकहीं अकाल पड़े या बाढ़ आए तो मद्द के लिए दौड़ पड़ते हैं। हैजे और प्लेग के दिन में उनका आत्मसमर्पण और विलक्षण त्याग देखकर लोग दंग रह जाते हैं पर उनमें दोष यह है कि उनके विचारों में प्रौढ़ता और दूरदर्शिता का अभाव है। पद्मसिंह जी ने अपने घर होली के दिन भोलीबाई का गाना रखा यह बात उनको अखरी और इसका बदला लेने के लिए उन्होंने गजाधर के कान पद्मसिंह के खिलाफ फूँके। जिसका परिणाम यह निकला कि पद्मसिंह ने सुमन को अपने घर पर आश्रय देने से इनकार किया। इस तरह सुमन की दुर्गति के जिम्मेदार गजाधर पद्मसिंह के साथ विठ्ठलदास भी हैं लेकिन यह बात जब उन्हें पता चली तब पछतावा करने के बजाय अब इस पर क्या हो सकता है, इसकी सोच में भी वह लग गये। सुमन से मिलकर पहले उन्होंने उसे यह राह छोड़ने का आग्रह किया। उसका हृदयपरिवर्तन करने के लिए उन्होंने नीति–अनिति को, धर्म–अधर्म की बहुत सारी बातें सुनायीं – जो आज तक सुमन से किसी ने नहीं कही थीं। सुमन भी उनकी बातें सुनकर यह कुमार्ग छोड़ने के लिए तैयार हो गयी। पर उसने महीना पचास रुपए अपने खर्चे के लिए किसी से प्रबंध करने के लिए कहा। विठ्ठलदास ने उसकी यह शर्त भी मंजूर कर ली और पैसे जुटाने के लिए कई लोगों से मिले। पद्मसिंह के सिवाय पैसा देने के लिए कोई तैयार नहीं था।

सुमन की तरह शांता की मदद करने के लिए भी विठ्ठलदास ने बहुत दौड़–धूप की। उसे उमानाथ के घर से शहर ले आये तथा सदन उसको स्वीकार करने के लिए तैयार होने तक उसके रहने का प्रबंध अपने विधवाश्रम में किया।

इस प्रकार अपनी घर गृहस्थी की चिंता किए बिना समाज के दीन–दुखियारों की फिक्र में रहने वाला यह व्यक्ति है। अंत में पद्मसिंह जी विट्ठलदास की काम की लगन और काबिलियत देखकर म्युन्सिपालिटी में कोई

अधिकार का पद देने की सोचते हैं परंतु विट्ठलदास राजी नहीं होते और अपने निःस्वार्थ कर्म की प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ना चाहते। विधवाश्रम के काम के साथ अब वह कृषकों की सहायता के लिए एक कोष स्थापित करने का उद्योग करते हैं।

प्रेमचंद जी विट्ठलदास द्वारा उनकी कल्पनाओं में स्थित एक निःस्वार्थ समाज सेवक का चित्र हमें प्रस्तुत करते हैं।

पंडित उमानाथ

पंडित उमानाथ गंगाजली के सगे भाई तथा सुमन के मामा हैं। प्रेमचंद जी ने यह बड़ा ही रोचक पात्र निर्माण किया है। इस महाशय में ऐसी विशेषताएँ हैं, जो देखते बनती हैं। उसके गाँव के लोग समझते थे कि पं उमानाथ का इकबाल है, तो कोई समझता था, महावीर का इष्ट है, लेकिन प्रेमचंद जी के विचार में यह उनके मानव–स्वभाव के ज्ञान का फल था। वह जानते थे कि कहाँ झुकना और कहाँ तनना चाहिए। गाँववालों से तनने में उनका काम सिद्ध होत था, तो अधिकारियों से झुकने में ठाने और तहसील कार्यालय के चपरासी से लेकर तहसीलदार तक सभी उन पर कृपादृष्टि रखते थे। तहसीलदार साहब के लिए वह वर्ष फल बनाते, तो डिप्टीसाहब को भावी उन्नति की सूचना देते। सामने वाले की श्रद्धा तथा माँग देखकर किसी को पूजा के लिए यंत्र देते तो किसी को भगवत्गीता सुनाते। और जिन लोगों की इन बातों पर श्रद्धा ना हो उन्हें मीठे आचार और नवरत्न चटनी जैसी लुभावनी चीजें देकर प्रसन्न रखते थे। जो काम थानेदार से भी नहीं बनता वह अपने तरकीबों से कराते थे। सारांश अपना लाभ बनाकर भी सामने वाले को खुश करने की तिकड़म लड़ाना जानते थे।

इतनी होशियारी होते हुए भी उमानाथ अपनी भांजी सुमन के लिए कोई अच्छा रिश्ता नहीं ला सके। उन्होंने कोशिश तो बहुत की पर बिना पैसे के कहीं भी बात नहीं बना सके। अतः गजाधर जैसे दुहाजु गरीब अधेड़ से शादी करा दी जो आगे चलकर सुमन के सर्वनाश की कारण बनी। उमानाथ की दूसरी भांजी शांता के लिए दौड़–धूप करने लगते हैं। इस प्रकार गजाधर से पैसों का बंदोबस्त होता है, और वह शांता के लिए अच्छा वर ढूँढने में सफल होते हैं।

पंडित उमानाथ अपनी बहन गंगाजली और दोनों भाँजियों को अपने घर प्रेम से रखना चाहते हैं, पर उनकी पत्नी जान्हवी के सामने उनकी एक नहीं चलती। शांता से जान्हवी का कुटिल व्यवहार चुपचाप देखने के सिवाय वह कुछ नहीं कर सकते। इस प्रकार बाहर कई हिकमतें लड़ाने वाला पुरुष अपनी स्त्री के सामने बिलकुल परास्त हो जात है। इतना चालाक आदमी सुमन की दुर्गति की बात अपनी पत्नी से कह देता है और शांता की बन रही किस्मत अपने हाथों से बिखेर देता है। टूटी हुई शादी में भी अपनी तिकड़में चलाता है। दहेज का पैसा वापस पाने के लिए, फिर से वर ढूँढने के लिए निकल पड़ता है। इस प्रकार सामने आयी हुई हर स्थिति में अपनी राह खोजने वाला, मानवी स्वभाव का एक अनोखा पहलू प्रेमचंद जी यहाँ चित्रित करते हैं।

8.4 सारांश

इस अध्याय में आपने 'सेवासदन' के पात्रों को पढ़ा तथा समझा। कहा जाए तो उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक होती है। मुख्य पात्रों के साथ गौण पात्र भी अपनी विशेष भूमिका निभाते हैं। सेवासदन उपन्यासमें सुमन उपन्यास की नायिका है तो उपन्यास की शान्ता, भोली और सुभद्रा का भी महत्व कम नहीं है। गजाधर के साथ सदन, ब्रिठ्ठलदास, उमानाथ जैसे पात्रों का चित्रण लेखक को उपन्यास को गति देते हुए उसके लक्ष्य की पूर्ति में सहायता करता है।

8.5 कठिन शब्द

1. किफायत
2. विलक्षण
3. दूरदर्शिता
4. कुटिल
5. मलिनता
6. सात्विक
7. स्वावलम्बी
8. लोकोपवाद
9. कृपणता
10. निस्पृह

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास पर आधारित 'सुमन' का चरित्र–चित्रण कीजिए।

प्रश्न : 'सेवासदन' के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण कीजिए।

प्रश्न : 'गजाधर' का चरित्र–चित्रण कीजिए।

प्रश्न : उपन्यास में गौण पात्रों की भी विशेष भूमिका रही है, स्पष्ट कीजिए।

8.7 पठनीय पुस्तकें

1. सेवासदन – प्रेमचन्द
2. प्रेमचन्द, जीवन, कला और कृतित्व – हंसराज 'रहबर'
3. प्रेमचन्द – सं. सत्येन्द्र

——— 0 ———

'निर्मला' उपन्यास का कथानक

9.0 रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 'निर्मला' उपन्यास का कथानक

9.4 सारांश

9.5 कठिन शब्द

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप–

– भारतीय समाज में व्याप्त विकृतियों से अवगत होंगे।

– दहेज प्रथा और अनमेल विवाह के कारण नरकीय होती नारी की जिन्दगी को जान सकेंगे।

– सामाजिक कुरीतियाँ एवं रूढ़ियाँ किस प्रकार खुशहाल परिवार को तोड़ने में सहायक होती हैं इस सत्य से भी अवगत हो सकेंगे।

– प्रेमचन्द की सुधारवादी मानसिकता को जान पाएंगे।

9.2 प्रस्तावना

'निर्मला' उपन्यास सन् 1926 में 'चाँद' पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होने के उपरान्त जनवरी 1927 ई. में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है। यह प्रेमचंद द्वारा लिखा गया सामाजिक उपन्यास है जिसमें दहेज–प्रथा और अनमेल–विवाह की समस्या को कथानक का विषय चुना गया है। प्रेमचन्द द्वारा इन समस्याओं के दुष्परिणामों का विस्तारपूर्वक चित्रण होने के कारण ही यह उपन्यास समाज में अत्यंत लोकप्रिय हुआ है। उपन्यास के अन्त में प्रेमचन्द इन समस्याओं के समाधान हेतु किसी आश्रम या संस्था की स्थापना न करते हुए इन सामाजिक असंगतियों का गहण विश्लेषण करते हैं ताकि पाठक इनके प्रति सजग हो सके। ऐसा करने से रचना कलात्मक एवं मर्मस्पर्शीय बन गई है।

9.3 'निर्मला' उपन्यास का कथानक

प्रेमचन्द द्वारा रचित 'निर्मला' उपन्यास में दहेज प्रथा और अनमेल विवाह जैसी दो सामाजिक समस्याओं को तीन अलग–अलग मध्यवर्गीय परिवारों की कथा के माध्यम से वर्णित किया गया है। उपन्यास में एक परिवार बाबू उदयभानु लाल का है जो पेशे से वकील हैं, दूसरा परिवारभालचन्द्र सिन्हा का है जो दहेज–लोभी समाज का प्रतिनिधित्व करता है। तीसरा परिवार बाबू तोताराम का है जो वकालत करते हैं और अधेड़ उम्र एवं दुहाजू होने पर भी युवती से विवाह कर दाम्पत्य जीवन का सुख भोगने की लालसा रखते हैं और बाद में अनमेल विवाह के परिणामों को भी सहते हैं। उदयभानु की दो लड़कियाँ– निर्मला और कृष्णा तथा एक लड़का चन्द्रभानु सिन्हा (चन्दर) है। निर्मला पन्द्रह साल की है और कृष्णा दस साल की, दोनों के स्वभाव में अधिक अन्तर नहीं है, दोनों चंचल और सैर–तमाशे पर जान देती हैं लेकिन निर्मला का रिश्ता पक्का होने से अचानक बड़ी और छोटी में अन्तर हो गया। कृष्णा तो वैसी ही रही किन्तु निर्मला गम्भीर, एकान्तप्रिय और लज्जाशील हो गई। महीनों से रिश्ता ढूंढ रहे उदयभानु की मेहनत भालचन्द्र सिन्हा के बड़े बेटे भुवनमोहन सिन्हा के साथ रिश्ता पक्का होने से रंग लाई। भालचन्द्र सिन्हा आबकारी विभाग में एक बड़े अफसर हैं जो पांच सो वेतन लेते हैं और ठेकेदारों से भी खूब रिश्वत लेते हैं। उनके बेटे ने डॉक्टरी की है जिसे निर्मला के लिए चुना गया है। सिन्हा के परिवार को उदयभानु से खूब दहेज मिलने की आशा है किन्तु उदयभानु वकील तो है,पर आर्थिक रूप से इतने सम्पन्न नहीं कि दहेज देने में समर्थ होते। पैसों को लेकर उदयभानु और उनकी पत्नी कल्याणी के मध्य झगड़ा होता है तो वह क्रोध में आकर घर से बाहर चला जाता है। रास्ते में उसे मतई नामक बदमाश मिलता है जिसे उसने सरकार की ओर से पैरवी करते हुए तीन साल की सज़ा दिलाई थी। उस दिन उदयभानु को अकेला पाकर मतई हमला कर उसकी हत्या करके अपना बदला ले लेता है। इस घटना के घटने से निर्मला की सगाई टूट जाती है क्योंकि उदयभानु की मृत्यु हो जाने से भालचन्द्र को अब इतना दहेज नहीं मिल सकता था जितना पहले मिल सकता था।

आर्थिक अभाव का सामना करती कल्याणी के सामने अब केवल एक ही समस्या थी कि वह निर्मला का विवाह कैसे करे क्योंकि बिना दहेज के किसी अच्छे शिक्षित युवक का मिलना तो संभव नहीं था । इसलिए आर्थिक अभाव के कारण कल्याणी मजबूर होकर निर्मला का विवाह तोताराम नामक ऐसे वृद्ध से कर देती है जिसके पहली पत्नी से तीन बेटे होते हैं– मंसाराम, जियाराम और सियाराम। निर्मला का विवाह तो हो जाता है लेकिन वह तोताराम को पति रूप में स्वीकार नहीं कर पाती क्योंकि, ''अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर,

देह चुराकर निकलती थी। अब उसी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी हंसी–खुशी उड़ जाती थी।" तोताराम के घर में तीन बेटों के अतिरिक्त एक विधवा बहन रुक्मिणी भी रहती है। रुक्मिणी बच्चों को निर्मला के पास जाने से रोकतीहै लेकिन निर्मला को बच्चों से मेल–मिलाप करना अच्छा लगता है। निर्मला यदि बच्चों की माँगे पूरी करती या उनकी गलती पर उन्हें टोकती तो रुक्मिणी दोनों स्थितियों में निर्मला को सौतेली माँ होने का ताना देती। यदि वह पति से इस बारे में बातचीत करती तो रुक्मिणी घर में कलह उत्पन्न कर देती है। पति और ननंद से उकताकर निर्मला तीनों बच्चों से ही अपना मन बहलाती है। बड़ा बेटा मंसाराम, निर्मला का हमउम्र है इसलिए वह उसके साथ अधिक खुश रहती। वह निर्मला को अंग्रेजी भी पढ़ाता है लेकिन तोतराम को पत्नी का बच्चों के साथ अधिक मेल–मिलाप रखना अच्छा नहीं लगता।वह मंसाराम और निर्मला के रिश्ते को लेकर संदेह भी करता है। जबकि दोनों के मन में ऐसा कुछ नहीं था दोनों अपने रिश्ते की मर्यादा को जानते थे।

तोताराम चाहता है कि उसकी युवा पत्नी उससे प्रेम करे जिसके लिए वह हर सम्भव प्रयास करता है। पत्नी और विधवा बहन रूक्मिणी के मध्य झगड़े में भी वह निर्मला की तरफदारी ही करता है। जब इस पर भी प्रेम नहीं मिलता तो वह मित्रों के परामर्श से स्वयं को युवा दिखाने का प्रयास करता है और निर्मला को अपनी वीरता की कहानियाँ भी सुनाता है किन्तु तोताराम के इस व्यवहार से निर्मला की पति के प्रति उपेक्षा कम नहीं होती बल्कि और बढ़ जाती है। निर्मला की बढ़ती उपेक्षा को देखकर तोताराम अपने बेटे मंसाराम को बोर्डिंग में भेज देता है ताकि वह निर्मला से दूर रहे और फिर पत्नी का प्रेम उसे मिले। वह मंसाराम को अपने मध्य बाधा मान रहा था। तोताराम इस सत्य से अनभिज्ञ था कि उसका निर्मला के प्रति इतना झुकाव और संतान के प्रति उपेक्षा उसे एक दिन अकेला कर देगी। वहीं पिता की शंका और परिवार से दूर रहना मंसाराम को भीतर–ही–भीतर गहरा आघात पहुँचाता है और शीघ्र ही वह बीमार होने से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मृत्यु से पूर्व वह निर्मला के पैरों पर गिरकर कहता है कि "मैं आपका स्नेहकभी भी न भुलूंगा। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकूं ईश्वर जानता है मैं आपको अपनी माता समझता रहा।" मंसाराम के ये वाक्य उसके निर्दोश होने के परिचायक हैं। निर्मला पर भी इस घटना का बहुत प्रभाव पड़ा। वह स्वयं को दोषी मानती हुई हमेशा बुझी–बुझी सी रहने लगी। मंझले बेटे जियाराम के मन में भी यह बात घर कर गई कि उसके भाई के साथ अन्याय करके उसे मारा गया है। वह तोताराम से घृणा करने लगता है और व्यवहार में इतना उद्दंड हो जाता है कि एक दिन पिता–पुत्र में हाथापाई की नौबत आ जाती है।समझाने के बावजूद वह बिगड़ता ही जाता है। इतना ही नहीं वह घर में चोरी भी करता है और सत्य सामने आने पर आत्महत्या कर लेता है।

दूसरी तरफ जिस लड़के से निर्मला के पिता ने उसकी सगाई की थी, वह अब डॉक्टर बन गया था। वही मंसाराम का इलाज कर रहा था इसलिए तोताराम की उससे पहचान हो जाती है। दोनों परिवार एक–दूसरे के घर आने जाने लगते हैं और उसकी पत्नी सुधा निर्मला की सहेली बन जाती है। निर्मला डॉक्टर की सच्चाई को अभी तक नहीं जानती थी किन्तु सुधा यह बात जान चुकी थी कि निर्मला को ठुकराने वाला कोई और नहीं स्वयं उसका पति ही है। वह इस सत्य

से पति को भी अवगत करवाती है। डॉक्टर को यह सत्य जानकर आत्मग्लानि होती है और वह पश्चाताप हेतु निर्मल की छोटी बहन कृष्णा का विवाह अपने छोटे भाई से बिना दहेज लिए करवाता है और निर्मला की माँ की आर्थिक सहायता भी करता है। विवाह के समय निर्मला को भी डॉक्टर की सच्चाई का बोध होता है। पहले तो वह डॉक्टर पर क्रोधित होती है किन्तु डॉक्टर को अपनी गलती का एहसास है यह जानकर निर्मला का गुस्सा भी शांत हो जाता है।

निर्मला और तोताराम की एक बेटी भी होती है जिसके आने से तोताराम को यह अनुभव होता है कि मंसाराम ही बेटी के रूप में पूणः उनके जीवन में वापिस आ गया है लेकिन तोताराम के घर में निर्मला से विवाह करने के उपरान्त ही जो कलेश उत्पन्न हुआ उसे मंसाराम और जियाराम की मृत्यु ने और बढ़ा दिया। उसके घर के हालात और भी खराब हो गए। तोताराम मानसिक रूप से इतना परेशान रहने लगा कि अपनी वकालत भी ठीक से नहीं कर पा रहा था जिस कारण उसकी आर्थिक स्थिति भी बिगड़ने लगती है। निर्मला बहुत कुशलतापूर्वक ग्रहस्थी को चलाने का प्रयास करती है लेकिन छोटे–छोटे खर्चों में भी पैसों की बचत करना परिवार में कलह पैदा कर देता है। सबसे छोटा बेटा सियाराम भी परिवारिक अलगाव के चलते एक साधु के बहकावे में आकर घर छोड़कर उसके साथ चला जाता है।

तीनों बेटों को खोकर तोताराम निर्मला को दोषी ठहराते हुए घर छोड़कर बेटे की तलाश में निकल जाता है। जब तोताराम एक महीने तक घर लौटकर नहीं आता तो इस बीच निर्मला को अपनी बेटी के भविष्य की चिंता अधिक सताने लगती है। तभी उसके जीवन में एक घटना और घटती है। एक दिन वह अपनी सहेली सुधा से मिलने उसके घर जाती है तो सुधा घर पर नहीं मिलती लेकिन डॉक्टर मिलता है और वह निर्मला के प्रति अपना प्रेम भी जताता है। निर्मला को डॉक्टर का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता और वह उसी समय वहाँ से चली जाती है। जब सुधा को डॉक्टर की इस हरकत का बोध होता है तो वह भी पति को बहुत बुरा–भला कहती है। परिणामस्वरूप डॉक्टर आत्महत्या कर लेता है। निर्मला भी अंततः बीमारी के चलते अपनी बेटी, ननद को सौंपकर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। तोताराम भी ठीक उसी समय घर पहुँचता है जब उसे पत्नी को मुख्याग्नि देनी होती है। इसी के साथ कथा समाप्त हो जाती है लेकिन मृत्यु के समय अपनी बेटी ननद को देते हुए निर्मला के मुख से निकले अंतिम वाक्य– ''चाहे क्वांरी रखिएगा, चाहे जहर देकर मार डालिएगा, पर बेमेल के गले न मंढ़िएगा, इतनी ही आपसे मेरी विनती है।'' समाज के इस कड़वे सच को सामने लाते हैं कि बेमेल विवाह से व्यक्ति का जीवन नरकीय बन जाता है। धन की कमी के चलते यदि कोई माता–पिता अपनी बेटी की शादी अधेड़ या दुहाजू से करते हैं तो इससे अच्छा है कि वह बेटी को क्वांरी ही रखें और यदि वह समाज के डर से बेटी क्वांरी नहीं रख सकते तो उसे मार दे लेकिन बेमेल विवाह करके उसे जीते जी मरने के लिए विवशन करें।

9.4 सारांश

अंततः कहा जा सकता है कि निर्मला उपन्सास एक यथार्थवादी रचना है, जिसमें समाज की विकृतियों का ऐसा सारगर्भित और मार्मिक चित्र खींचा है कि पाठक उपन्यास को पढ़ते ही यह अनुभव करने लगता है कि समाजमें ऐसा ही होता है। इस उपन्यास की एक विशेषता यह भी है कि प्रेमचन्द ने इसमें समस्या के हल हेतु किसी संस्था को जन्म नहीं दिया। देखा जाए तो कोई भी संस्था किसी समाज को तब तक नहीं बदल सकती जब तक समाज स्वयं

बदलना न चाहे। इसलिए प्रेमचन्द ने निर्मला को प्रतीक बनाकर ऐसी अबला नारियों का करुणा पूर्ण चित्र अंकित किया है जिससे द्रवीभूत होकर समाज स्वयं ही बदलने का प्रयास करे। निर्मला की मृत्यु से जो हृदयस्पर्शी संवेदना प्रफुटित होती है, उसे मूक क्रान्ति का संदेश कह सकते हैं। कथा–शिल्प की दृष्टि से भी यह रचना उत्कृष्ट दृष्टिगत होती है क्योंकि उपन्यास की कथा अत्यन्त तीव्र गति से घटित होती है और इसमें पाठक का ध्यान आकर्षित करने तथा मर्मस्पर्शी करुणा का संचार करने की अपूर्व क्षमता विद्यमान है।

9.5 कठिन शब्द

1. मर्मस्पर्शी
2. पैरवी
3. अनभिज्ञ
4. उद्दंड
5. दुहाजू
6. सारगर्भित
7. द्रवीभूत
8. प्रफुटित
9. हृदयस्पर्शी

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'निर्मला' उपन्यास के कथानक पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्रश्न. भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में 'निर्मला' उपन्यास के कथानक को स्पष्ट करें।

_____

_____

_____

9.7 पठनीय पुस्तकें

– निर्मला–प्रेमचन्द।

– प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास–कला– डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय।

– प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व– हंसराज 'रहबर'।

– प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यंग्य' बोध – उर्मिला सिन्हा।

—— 0 ——

'निर्मला' उपन्यास की प्रमुख समस्याएँ

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 'निर्मला' उपन्यास की प्रमुख समस्याएँ

10.4 सारांश

10.5 कठिन शब्द

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.7 पठनीय पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप–

– नारी जीवन की समस्याओं को जान पाएंगे।

– दहेज प्रथा और अनमेल विवाह के दुष्परिणामों से अवगत होंगे।

– आर्थिक पराधीनता के कारण नारी जीवन में आई जटिलताओं को समझ सकेंगे।

– विधवा नारी के जीवन की समस्याओं से भी अवगत होंगे।

10.2 प्रस्तावना

हिंदी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द युग ऐसा युग था जब देश अनेक समस्याओं का सामना कर रहा था। उस समय समाज की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति असंतोषजनक थी। उस समय की भयावह परिस्थितियों से व्याकुल होकर ही प्रेमचंद ने तत्कालीन जीवन और युग का चित्रण अपने साहित्य में किया है। अपने युग की प्रत्येक समस्या को उन्होंने अपने साहित्य में उभारा है। इसीलिए उनके उपन्यास अधिक लोकप्रिय हुए हैं।

1927 ई. में प्रकाशित 'निर्मला' उपन्यास प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों की तुलना में सबसे छोटा उपन्यास है। समस्या–उद्‌घाटन और प्रभाव की दृष्टि से भी यह प्रेमचन्द का पहला दुखान्त उपन्यास है। इस उपन्यास में मुख्यरूप से नारी जीवन की समस्याओं को आधार बनाया गया है जिनका केन्द्र दहेज प्रथा और आर्थिक व्यवस्था है। यह उपन्यास यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास है किन्तु इसमें समस्या का कोई समाधान नहीं सुझाया गया है।

10.3 'निर्मला' उपन्यास की प्रमुख समस्याएँ

'निर्मला' उपन्यास में मुख्य रूप से नारी जीवन की समस्याओं को लिया गया है जिसके चार पहलु हैं– दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, विवाहिता नारी की समस्या और विधवा की समस्या। इन सभी नारी समस्याओं का केन्द्र दहेज प्रथा और आर्थिक व्यवस्था है जिसका गहरा संबंध नारी की आर्थिक पराधीनता से है।

दहेज प्रथा की समस्या

प्रेमचन्द ने हमारी वैवाहिक पद्धति के दोषों को अपनी रचनाओं में खूब प्रकट किया है। विवाह हमारे यहाँ एक डकोसला बन गया है। रुपयों की थैलियों से सौदे तय किए जाते हैं। लड़के–लड़की के स्वभाव, आकृति–प्रकृति, वय आदि का कोई मिलान जरूरी नहीं है। उपन्यास के आरम्भिक भाग में ही लेखक ने दहेज–कुप्रथा की ओर संकेत करते हुए कथा का विकास किया है। निर्मला की शादी एक अच्छे परिवार के युवक से तय हो जाती है, किन्तु लड़केवालों को वकील साहब से आशा से अधिक दहेज मिलने की उम्मीद होती है। वकील साहब अधिक दहेज तो दे नहीं सकते थे फिर भी अपनी तरफ से शादी की तैयारी के लिए धन का इंतजाम कर रहे थे। इतने में उनकी अचानक बदमाश द्वारा हत्या कर दी जाती है। जिस कारण सिन्हा परिवार निर्मला के साथ हुए रिश्ते को तोड़ देता है क्योंकि अब उन्हें उतना दहेज मिलने की आशा नहीं रही, जीतना वकील साहब के होते मिल सकता था। जब वकील साहब की पत्नी, पण्डित को सिन्हा के घर जाकर शादी स्थिर रखने के लिए भेजती है तब सिन्हा स्पष्ट शब्दों में पण्डित से कहता है– "पण्डित जी, हलफ से कहता हूं, मुझे उस लड़की से जितना प्रेम है, उतना अपनी लड़की से भी नहीं है, लेकिन जब ईश्वर को मंजूर नहीं है, तो मेरा क्या बस है? वह मृत्यु एक प्रकार की अमंगल सूचना है, जो भगवान की ओर से हमें मिली है। यह किसी आने वाली मुसीबत की आकाशवाणी है। भगवान साफ–साफ कह रहा है कि यह विवाह सुखदायी न होगा। ऐसी दशा में आप ही सोचिए, यह संयोग कहां तक उचित है। समधिन साहब को समझाकर कह दीजिएगा, मैं उनकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूं, लेकिन इसका परिणाम अच्छा न होगा। स्वार्थ के वश में होकर मैं अपने परम मित्र की सन्तान के साथ यह अन्याय नहीं कर सकता।" सिन्हा के ये शब्द मात्र दिखावा था क्योंकि रिश्ता तोड़ने का कारण

अमंगल की चिंता नहीं बल्कि दहेज था जो अब नहीं मिल सकता था। जिसका पर्दाफाश उपन्यास में उसकी ही पत्नी रंगीलीबाई ने इस प्रकार किया है– ''जब वकील साहब जीते थे, तो तुमने सोचा था कि ठहराव की जरूरत ही क्या है, वह खुद ही जितना उचित समझेंगे देंगे बल्कि बिना ठहराव के और भी ज़्यादा मिलने की उम्मीद होगी। अब तो वकील साहब का इन्तकाल हो गया, तो तरह–तरह के हीले–हवाले करने लगे।'' इतना ही नहीं भुवनमोहन जो एक पढ़ा–लिखा युवक है वह भी निर्मल के साथ शादी करने को मना कर देता है। यदि भुवनमोहन स्वार्थ के चलते शादी के लिए इंकार न करता तो सिन्हा भी ऐसा कठोर निर्णय न ले पाते। जब रंगीलीबाई बेटे से शादी के विषय में बात करती है तो वह साफ–साफ कह देता है कि ''किसी धन्ना सेठ की लड़की से शादी हो जाती, तो चैन से कटती। मैं ज़्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख नकद हो या फिर कोई ऐसी जायदाद वाली बेवा मिले, जिसके एक ही लड़की हो।'' यहाँ भुवनमोहन का स्वार्थ सामने आता है जो समाज के इस घिनौने सत्य को सामने लाता है कि दहेज के कारण निर्धन अपनी गुणी लड़की की शादी अच्छे घर में नहीं करवा सकता क्योंकि दहेज लोभी समाज स्वार्थ के साथ अवगुणी लड़की को तो शादी के लिए चुन सकता है लेकिन बिना दहेज की सर्वगुण सम्पन्न लड़की उन्हें स्वीकार नहीं होती।

समाज में दहेज की प्रथा से अनर्थ हो रहा है। इसी के कारण एक पन्द्रह वर्षीय कलिका– निर्मला का विवाह उसकी विधवा माता को एक चालीस से भी अधिक वय के कुरुप, तोन्दू, दूहाजू किन्तु सम्पन्न वकील तोताराम से करना पड़ता है। जो निर्मला के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी साबित होता है। इस सामाजिक समस्या के कारण पारिवारिक जीवन की अनेक विषमताएँ उत्पन्न होती हैं। तोताराम के तीन बच्चों की विमाता के रूप में निर्मला को बच्चों से पूरा स्नेह होने पर भी लांछित किया जाता है। उसे वृद्धा ननद की कोप दृष्टि और ईर्ष्या का शिकार बनना पड़ता है। अंततः वृद्ध पति के संशय और विषम परिस्थितियों से घर तबाह हो जाता है।

विधवा नारी की समस्या

उदयभानु की मृत्यु के पश्चात विधवा कल्याणी के जीवन में जो पहली समस्या उत्पन्न होती है वह थी युवा बेटी निर्मला के विवाह की। धन के अभाव में एक रिश्ता तो उसका टूट चुका था और किसी अन्य अच्छे रिश्ते का मिलना भी मुश्किल था क्योंकि कल्याणी के पास धन जुटाने का कोई साधन नहीं था। ''अब अच्छे घर की जरूरत न थी। अच्छे वर की जरूरत न थी। अभागिनी को अच्छा घर–वर कहाँ मिलता? अब तो किसी तरह सिर का बोझा उतारना था, किसी तरह लड़की को पार लगाना था, उसे कुएं में झोंकना था। यह रूपवती है, गुणशीला है, चतुर है, कुलीन है,तो हुआ करे, दहेज नहीं तो उसके सारे गुण दोष हैं, दहेज हो तो सारे दोष गुण हैं। इन्सान की कोई कीमत नहीं,केवल दहेज की कीमत है। कितनी विषम भाग्यलीला है?'' ऐसे में समय रहते बेटी की शादी करना उसके लिए सबसे बड़ी समस्या थी। इसलिए मजबूरीवश कल्याणी को निर्मला की शादी अधेड़ दुहाजू तोताराम से करनी पड़ती है। तोताराम का यह दूसरा विवाह था और पहली पत्नी से उसके तीन बेटे भी थे। इसलिए तोताराम कल्याणी से किसी पैसे या दहेज की उम्मीद नहीं रखता और कल्याणी भी अपनी बेटी की शादी उससे इसलिए करवाती है कि तोताराम को दहेज नहीं देना पड़ेगा। वह पण्डित मोटेराम को कहती है– ''सन्तान किसको प्यारी नहीं होती? कौन उसे सुखी नहीं देखना चाहता? पर जब अपना काबू भी हो। आप भगवान का नाम लेकर वकील साहब को टीका कर आइए। उम्र कुछ ज्यादा है, लेकिन

मरना–जीना विधि के हाथ है। पैंतीस साल का आदमी बुड़ढा नहीं कहलाता। अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना बदा है, तो जहाँ जायेगी सुखी रहेगी, दुःख भोगना है, तो जहाँ जायेगी दुःख ही झेलेगी।'' एक विधवा माँ जिसके पास आय का कोई साधन नहीं है उसका भाग्यवादी होना अनुचित नहीं क्योंकि जब व्यक्ति के पास धन नहीं होता और वह अपनी इच्छाओं को मारने पर मजबूर हो, तब उसके पास भाग्य पर सब छोड़ देने के सिवा कोई रास्ता नहीं होता।यदि कल्याणी आर्थिक रूप से सबल होती तो अपनी बेटी के जीवन को भाग्य पर कभी नहीं छोड़ती। जो नारियाँ आर्थिक रूप से अपने पति पर ही निर्भर होती हैं वे पति की मृत्यु के पश्चात् कल्याणी की भांति ही आर्थिक अभाव के चलते अनेक समस्याओं का सामना करती हैं।

अनमेल विवाह की समस्या

विवाह पूर्ण मेल से किया जाए तभी दाम्पत्य सम्बन्ध मधुर रहता है अपितु अनमेल विवाह पति–पत्नी में अलगाव, शंका एवं संकोच को उत्पन्न कर दाम्पत्य संबंध की मधुरता को समाप्त कर निरसता को जन्म देता है जिससे धीरे–धीरे यह संबंध दोनों के जीवन की त्रासदी बन, उनके जीवन को समाप्त कर देता है। अगर विचार किया जाए कि अनमेल विवाह होते क्यों हैं तो सबसे पहला कारण दहेज प्रथा सामने आता है क्योंकि धन की कमी से गरीबमाता–पिता दहेज नहीं दे पाते। बिना दहेज अच्छे रिश्ते का मिलना भी संभव नहीं। ऐसे में माता–पिता के सामने एक ही समस्या होती है कि वह बेटी का समय रहते विवाह कैसे करें। क्योंकि भारतीय समाज में माता–पिता के लिए बेटी का विवाह करना उनका परम दायित्व है जिसे वह शीघ्रता से पूर्ण कर कर्त्तव्य मुक्त होना चाहते हैं। ऐसे में यदि उनकेपास धन नहीं है तो बेटी के जीवन को भाग्य पर छोड़कर उसका अनमेल विवाह कर देते हैं। ऐसी ही स्थिति का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। उदयभानु की मृत्यु के पश्चात विधवा कल्याणी के पास धन का कोई साधन नहीं होता और वह विवश होकर निर्मला का विवाह अधेड़ उम्र के वकील तोताराम से कर देती है। तोताराम सांवले रंग के मोटे–ताज़े आदमी थे। उम्र तो लगभग चालीस साल के करीब थी लेकिन वकालत के कठिन परिश्रम ने उनके बाल पका दिए थे। व्यस्त रहने के कारण व्यायाम भी नहीं कर पाते जिस कारण उनकी तोंद भी निकली थी। एसीडिटी और बवासीर से उनका स्थायी संबंध बन गया था। इन्हीं कारणों से निर्मला, तोताराम से कभी प्रेम न कर सकी। निर्मला का तोताराम से संकोच करने का एक कारण यह भी है कि अभी तक ऐसा ही व्यक्ति उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर निकलती थी और उनका सम्मान करती थी। अब उसी उम्र का व्यक्ति उसका पति बन गया तो ऐसी स्थिति में निर्मला का पति से कटे–कटे रहना या पति के रूप में तोताराम को स्वीकार न करना अनुचित नहीं बल्कि स्वाभविक है।

इस अनमेल विवाह से निर्मला और तोताराम का जीवन कष्टपूर्ण हो जाता है। स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि तोताराम का पूरा परिवार ही नष्ट हो जाता है। मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हमउम्र के सथ ही आनन्द का अनुभव करता है। ऐसे में निर्मला जब अपने सौंदर्य को देखती है तो उसके मन में विचार रूपी तूफान उमड़ता है जो निर्मला में माँ तथा तोताराम के प्रति क्रोध उत्पन्न करता है। माँ के प्रति इसलिए है कि उन्होंने अपनी विवशता के कारण बेटी के जीवन को आग में झोंक दिया और तोताराम पर क्रोध का कारण उसका बुढ़ापे मे रंगीन

तबियत होने की सनक का सवार होना है। क्योंकि तोताराम ही बुढ़ापे में शादी की नहीं सोचता तो निर्मला को इस संबंध न बंधना पड़ता। निर्मला अपने जीवन की विषमताओं को भुलाकर तोताराम के बच्चों से मन बहलाती है तो ननद रुक्मिणि बच्चों को उससे दूर रखने का प्रयास करती है। निर्मला इस अनमेल विवाह के पश्चात् अपनी परिस्थितियों को जितना अनुकूल बनाने का प्रयास करती है, तोताराम अपनी शंका और रुक्मिणि अपनी इर्ष्या से उन्हें उतना ही प्रतिकूल कर देते हैं।

तोताराम को भी निर्मला के सौन्दर्य और स्वयं के मध्य अन्तर का एहसास होता है। इसलिए वह नवयौवना कमसिन प्रेमासि को प्रसन्न करने के अनेक स्वाँग रचता है किन्तु फिर भी वास्तविकता छिप नहीं पाती। निर्मला का सौंदर्य तोताराम के हृदय का शूल बन जाता है और उन्हें पत्नी के चरित्र पर भी शंका होने लगती है क्योंकि निर्मला उनके बड़े बेटे मंसाराम के साथ सहज थी। इस सहजता का कारण दोनों का हमउम्र होना था किन्तु दोनों के मध्य कुछ भी अनुचित नहीं था। उनके मध्य पवित्र संबंध था जिस पर तोताराम ने शंका करके अपने ही बेटे से हाथ धो लिया। मृत्यु से पूर्व मंसाराम द्वारा निर्मला के पैरों पर गिरकर, रोते हुए बोले गए शब्द– ''अम्माजी इस अभागे के लिए आपको व्यर्थ इतना कष्ट हुआ। मैं आपका स्नेह कभी न भूलंगा। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकूं। ईश्वर जानता है, मैंने आपको विमाता नहीं समझा। मैं आपको अपनी माता समझता रहा। आपकी उम्र मुझसे बहुत ज्यादा न हो, लेकिन आप, मेरी माता के स्थान पर थीं और मैंने आपको सदैव इसी दृष्टि से देखा।'' मंसाराम के मन की निछलता को स्पष्ट करते हैं जो बाद में तोताराम के पश्चाताप का कारण भी बने। निर्मला पर भी मंसाराम की मृत्यु का प्रभाव पड़ा और वह स्वयं को इसका दोषी मानते हुए उदास रहने लगी। मंसाराम के बाद जियाराम की मृत्यु और सियाराम का घर छोड़कर चले जाना, यहाँ तोताराम के लिए दुखक घटनाएँ थी, वहीं दाम्पत्य संबंध में अलगाव भी तोताराम के जीवन को अधिक दुखद बना देता है।

अनमेल विवाह से न तो निर्मला का जीवन सुखद रहा, न ही तोताराम का। तोताराम का तो पूरा परिवार ही समाप्त हो गया। इस अनमेल विवाह के कारण तोताराम के परिवार की समाप्ति को दिखाकर प्रेमचन्द समाज को सचेत करते हैं कि दहेज की कमी के कारण नारी का जीवन नष्ट हो रहा है, सभी पुत्री वाले हैं इसलिए सबको उनके भविष्य के बारे में सोचना चाहिए। अन्यथा निर्मला के समान ही उनका जीवन नष्ट हो जाएगा और पुरुष तोताराम की भांति बुढ़ापे में विवाह करके पछताते रहेंगे। अपनी बेटी को ननद रुक्मिणि की गोद में देते हुए निर्मला के मुख से जो अंतिम शब्द निकले हैं वह भी अनमेल विवाह के विरोध में ही कहे गए हैं– ''मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी,केवल जन्म देने–भर की अपराधिनी हूं। चाहे क्वांरी रखिएगा, चाहे जहर देकर मार डालिएगा, पर बेमेल के गले न मंढ़िएगा, इतनी ही आपसे मेरी विनती है।'' अर्थात् प्रेमचन्द निर्मला के माध्यम से बताना चाहते हैं कि बेटी को मार डालना अनमेल विवाह से कहीं उत्तम है।

विवाहिता नारी की समस्या

विवाह पश्चात् नए घर में सहज होना लड़की के लिए मुश्किल होता है। ऐसे में पति ही वह सहारा है जिसके प्रेम, विश्वास एवं सहयोग से प्रत्येक लड़की ससुराल में सहज हो पाती है। नवविवाहिता के मन में नई उमंगें, आशाएँ

एवं सपने होते हैं किन्तु इच्छित वर न मिलने से सब समाप्त हो जाता है। ऐसा ही हुआ है उपन्यास की नायिकानिर्मला के साथ। आर्थिक अभाव के चलते उसका अनमेल विवाह किया गया जो उसकी सारी आशाओं एवं सपनों पर पानीफेर देता है। ससुराल में लाख कोशिश करने पर भी उसे प्रत्येक पथ पर बाधाओं का सामना करना पड़ा। तोताराम ने समझा कि मेरा बड़ा बेटा मेरी कमजोरी का लाभ उठा रहा है, ननद ने समझा निर्मला मेरे अधिकारों पर डाका डाल रही है और सौतेले बेटों ने समझा विमाता के कारण हम पिता के प्रेम से वंचित होते जा रहे हैं। इस प्रकार निर्मला निर्दोष होते हुए भी सभी परिवारवालों के नेत्रों में सूल की भांति चुभने लगी। परिणामस्वरूप वह चाहे–अनचाहे जिस कार्य को करती, सभी सदस्य उसे ताने देते हुए तिरस्कृत ही करते। इस दुहरी मार से वह नवयौवना कुसुम कुम्हलाने लगी।

अंधविश्वास

प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में अंधविश्वास के दुष्परिणाम को दिखाकर इस समस्या की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया है। प्रेमचन्द का जादू–टोने या तन्त्र–मन्त्र में कोई विश्वास नहीं है। विज्ञान के युग में उन्हें इनका महत्वही समझ नहीं आता। इसी जादू–टोने के चक्कर में पड़ने से सुधा को अपने पुत्र से हाथ धोना पड़ता है, "सवेरा हुआ तो सोहन की दशा और भी खराब हो गयी। निर्मला की भी राय हुई कि डॉक्टर साहब को बुलाया जाये, लेकिन उसकी बूढ़ी माता ने कहा– डॉक्टर हकीम का यहाँ कुछ काम नहीं। साफ तो देख रही हूँ कि बच्चे को नज़र लग गयी है। भला डॉक्टर आकर क्या करेंगे?" अंधविश्वास में पड़कर सुधा के बेटे को डॉक्टर के पास नहीं ले जाया गया। परिणामस्वरूप सुधा के बेटे की ठीक समय पर इलाज न होने के कारण मृत्यु हो गई। यदि निर्मला की माता अंधविश्वासी न होती तथा सुधा और निर्मला उनकी बात न मानती तो सुधा को अपना बेटा न खोना पड़ता। उपन्यास में इस घटना का उल्लेख लेखक ने अंधविश्वास के दुष्परिणाम को दिखाने के लिए भी किया है जो समाज को अंधविश्वासी होने से सचेत करता है।

10.4 सारांश

यह उपन्यास दहेज और अनमेल विवाह की समस्या को लेकर लिखा गया है। हमारे समाज का मध्यवर्ग बुरे रिवाज़ों और कुप्रथाओं के कारण दुःख और विषाद में डूबा हुआ है, उपन्यास में इस बात का अच्छा उल्लेख है। अनमेल विवाह, निर्मूल आशंका और ननद–भावज के झगड़ों के कारण एक सुखी गृहस्थी को कलह का अखाड़ा बनते दिखाया गया है। फिर यह सुख कभी लौटकर नहीं आता, बल्कि कलह बढ़ती रहती है और इतनी बढ़ती है कि वह घर बिल्कुल उजड़ जाता है। हमारे रूढ़िगत समाज के मध्यवर्ग में ऐसी ट्रेजेडियाँ प्रायः होती रहती हैं। यह एक स्वाभाविक समस्या है और उपन्यास के अन्त में यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह सड़ी–गली सामाजिक व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल सकती। इन कुप्रथाओं के कारण इस उपन्यास की प्रधान पात्रा निर्मला के जीवन की जो करुणात्मक परिणति होती है, वह प्रबुद्ध पाठक को चिन्तनशील बना देती है। निर्मला के अंतिम शब्द भी वैवाहिक विडंबनाओं को रोकने के लिए चेतावनी की भांति हैं। डॉ. सिन्हा जैसे नवयुवक भी जब एक लाख दहेज की माँग इस युग में करते हैंऔर दहेज न मिलने पर निर्मला जैसी सुशील कन्या का जीवन नष्ट होने के लिए छोड़ देते हैं, तब पाठक विक्षुब्ध हो उठता है। लेखक ने इस कथा के माध्यम से संकेत दिया है कि जब तक हमारे समाज के नवयुवक स्वयं आगे बढ़कर इस

प्रकार की परम्परागत कुप्रथाओं के निर्मूलन हेतु कटिबद्ध नहीं होंगे तब तक निर्मला जैसी असंख्य किशोरियों का आत्मबलिदान होता रहेगा।

10.5 कठिन शब्द

1. भयावह
2. पराधीनता
3. वय
4. ठहराव
5. तोन्दू
6. कलिका
7. कुलीन
8. सनक
9. कमसिन
10. प्रेमासि
11. सूल

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'निर्मला' उपन्यास में चित्रित समस्याओं का विश्लेषण कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्रश्न. 'निर्मला' उपन्यास में वर्णित दहेज प्रथा के दुष्परिणामों की चर्चा कीजिए।

_____

_____

_____

_____

प्रश्न. 'निर्मला' उपन्यास में वर्णित अनमेल विवाह के कारण और दुष्परिणाम पर टिप्पणी कीजिए।

प्रश्न. 'निर्मला' उपन्यास की प्रमुख समस्याओं का विश्लेषण कीजिए।

11.7 पठनीय पुस्तकें

1 निर्मला–प्रेमचन्द।

2 प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास–कला– डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय।

3 प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व– हंसराज 'रहबर'।

4 प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यंग्य' बोध – उर्मिला सिन्हा।

—— 0 ——

'निर्मला' उपन्यास में चित्रित नारी

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 'निर्मला' उपन्यास में चित्रित नारी

11.4 सारांश

11.5 कठिन शब्द

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.7 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप–

– 'निर्मला' उपन्यास में चित्रित नारी से अवगत हो सकेंगे।

– भारतीय समाज की दीन–हीन नारी को जान पाऐंगे।

– प्रेमचन्द की नारी–भावना से परिचित हो सकेंगे।

– सामाजिक कुरीतियों से त्रस्त हुई नारी की स्थिति को जान पाएंगे।

– प्रेमचन्द ने नारी का ऐसा चित्रण किस उद्देश्य से किया, इस तथ्य को समझ सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

साहित्य समाज से अलग नहीं इसलिए युगीन परिस्थितियों से विलग रहकर कोई साहित्य नहीं पनप सकता। नारी इसी समाज का अर्धांग है अतः सत्–साहित्य में वर्णित नारी को समाजगत नारी की यथार्थावस्था से अधिक दूर नहीं माना जा सकता। साहित्य की नारी–भावना से अवगत होने के लिए तत्कालीन नारी के सामाजिक रूप का सम्यक ज्ञान विशेष सहायक सिद्ध होता है और बीसवीं शताब्दी तो है ही साहित्य में स्वस्थ समाज के नैकट्य एवं समाज में नारी के विलुप्त रूप की पहचान का अध्याय, जिसके आरम्भ में प्रेमचन्द का अपूर्व योगदान समाज की वेदना का ही प्रतिरूप है। इनकी नारी–भावना का अन्यतम रूप आदर्श है जिसमें त्याग, सेवा और पवित्रता का समावेश है। प्रेमचन्द के अनुसार नारी का कर्त्तव्य है देना, लेना नहीं। उसके हृदय का सम्पूर्ण वात्सल्य, सम्पूर्ण विश्वास और श्रद्धा, सम्पूर्ण करुण एवं सहनशीलता इसी उद्देश्य की ओर प्रवाहित होती हैं।

11.3 'निर्मला' उपन्यास में चित्रित नारी

प्रेमचन्द युग में नारी दोहरी दासता की शिकार थी। न तो उसे पारिवारिक सम्पति में कोई अधिकार मिला था और न ही वह स्वतंत्र जीविका अर्जित करने में समर्थ थी। लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। स्त्री मात्र गृहस्थी संभालने के लिए थी या फिर कोठे की रोनक। माता–पिता के लिए बेटी का विवाह करना जितना आवश्यक था, उससे भी अधिक बेटी के विवाह हेतु दहेज देने के लिए धन जुटाना अनिवार्य था क्योंकि दहेज के अभाव में लड़कीका विवाह किसी बूढ़े या फिर गरीब व्यक्ति के साथ कर दिया जाता, जिससे लड़की की सारी चाहतें मिट्टी में मिल जातीं और वह नरकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो जाती। 'निर्मला' उपन्यास में प्रेमचन्द ने नारी का वही त्रासदपूर्ण चित्रण किया है जो उस समय में नारी का वास्तविक रूप था। अपने आसपास की पीड़ित नारी को देखकर सहृदयी प्रेमचंद का व्यथित होना स्वाभाविक है और उनके जैसे लेखक का अपनी व्यथा को प्रकट करना कोई अनुचित बात नहीं। जब कोई सहृदय व्यक्ति खासतौर पर जब वह लेखक हो, समाज में व्याप्त किसी बुराई से व्यथित होता है तो वह सहित्य के माध्यम से अपनी व्यथा एवं चिंता प्रकट करता है। प्रेमचन्द भी नारी की तत्कालीन स्थिति से व्यथित थे इसलिए उन्होंने साहित्य में नारी वेदनाओं को शब्द देकर उनकी पैरवी की है। 'निर्मला' उपन्यास में नारी माँ, पत्नी, बहन, पुत्री, सहेली के रूप में चित्रित है। इन रूपों के अन्तर्गत नारी का जो चित्र अंकित किया गया है उस पर दृष्टिपात करने से हम तत्कालीन नारी की वास्तविकता से अवगत होंगे जिसमें प्रेमचन्द का उद्देश्य भी निहित है।

माँ का रूप –

'निर्मला' उपन्यास में माँ के दो रूप चित्रित हैं। एक जन्म देने वाली माँ और दूसरा विमाता का। माता के रूप में मुख्य रूप से कल्याणी और निर्मला का चित्रण हुआ है लेकिन विमाता का चित्रण केवल निर्मला के माध्यम से किया गया है।

कल्याणी को बच्चों के भविष्य की चिंता है इसलिए वह निर्मला की शादी पर भी पति को कम खर्च करने का सुझाव देती है क्योंकि उसका मानना है कि बारातियों को कोई खुश नहीं कर सकता। इसलिए उनकी चिंता छोड़ इतना ही खर्च करो जितना सम्भव हो, वह नहीं चाहती कि एक की शादी में ही इतना कर्ज़ ले लें कि उम्रभर चुकाया न जाए। साथ ही बाकी बच्चे भी तो हैं उनके लिए भी तो कुछ बचाकर रखना है। जब इसी बात पर पति–पत्नी में बहस हो जाती है और दोनों एक–दूसरे को खरी–खोटी सुनाते हैं, तो कल्याणी क्रोध में घर छोड़ने का निर्णय लेती है लेकिन छोटे बेटे द्वारा एक बार तोतली आवाज में पुकारने पर उसका सारा क्रोध शांत हो जाता है, ''माँ की ममता के बहाव से दुखी मन मानों धुल गया। दिल के मुलायम पौधे जो गुस्से की आग से झुलस गये थे, फिर हरे हो गये। आँखें सजल हो गयीं। नहीं प्यारों, मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊंगी। तुम्हारे लिए सब कुछ सह लूंगी। निरादर, अपमान, जली–कटी, खोटी-खरी, घुड़की–झिड़की–सब तुम्हारे लिए सहूंगी।'' पति की मृत्यु उपरान्त उसके समक्ष निर्मला के विवाह की समस्या उपस्थित हो जाती है। जब नारी के पास आय का स्रोत न हो तो वह विवश हो जाती है। कल्याणी भी विवश होकर निर्मला का विवाह दुहाजू से कर देती है क्योंकि उसके पास दहेज देने का कोई साधन नहीं था। प्रत्येक माँ, बेटी की खुशियाँ ही चाहती है लेकिन उस समय प्रायः नारी पुरुष की आय पर ही निर्भर थी और जब पति का साया न रहे तो नारी के लिए गृहस्थी का संचालन करना मुश्किल हो जाता है। विधवा माँ की इसी विवशता का चित्रण प्रेमचन्द ने कल्याणी के माध्यम से किया है।

'निर्मला' माता और विमाता दोनों रूप में चित्रित है। अपनी संतान के लिए तो प्रत्येक माँ ममतामयी और चिंतित होती है लेकिन निर्मला ऐसी माता है जो सौतेले तीन बेटों को भी माँ की भाँति स्नेह करती है। जब तोतारामद्वारा मंसाराम और उसके रिश्ते पर शंका की जाती है और मंसाराम इस आरोप को सहन न कर सकने के कारण अस्वस्थ हो जात है तब निर्मला अपना रक्त देने से भी पीछे नहीं हटती। जबकि पति द्वारा शंका करने पर वह मंसाराम से दूर हो गई थी किन्तु मंसाराम की अस्वस्थता ने उसके भय को समाप्त कर दिया ''कहाँ तो निर्मला भय से सूखी जाती थी, कहां उसके मुंह पर दृढ़ संकल्प की आभा झलक पड़ी। उसने अपनी देह का ताजा खून देने का निश्चय कर लिया। अगर उसके रक्त से मंसाराम के प्राण बच जायें, तो वह बड़ी खुशी से उसकी अन्तिम बूंद तक दे डालेगी। अब जिसका जो जी चाहे समझे, वह कुछ परवाह न करेगी।'' निर्मला के इस ममतामयी रूप को देखकर तोताराम की शंका भी उसकी भक्ति में परिवर्तित हो जाती है। निर्मला का ऐसा स्नेही विमाता रूप चित्रित करके प्रेमचन्द ने समाज में व्याप्त विमाता के प्रति नकारात्मक भ्रांति को समाप्त करने का प्रयास किया है। जब निर्मला मृत्यु शय्या पर थी तब निर्मला को अपनी बेटी की चिंता सताती है क्योंकि वह बेटी को वह जीवन नहीं देना चाहती जो उसने स्वयं जिया है इसलिए वह नन्द को कहती है कि बेटी को क्वांरी रखिएगा, चाहे जहर देकर मार दीजिएगा लेकिन बेमेल के साथ विवाह मत कीजिएगा। निर्मला को बेटी का मरना स्वीकार है लेकिन उसका भी अनमेल विवाह हो ऐसा वह स्वीकार नहीं कर सकती। क्योंकि अनमेल विवाह की त्रासदी को वह जी चुकी थी और वही त्रासदी बेटी को भोगनी न पड़े इसलिए वह ननद से अंतिम विनती यही करती है। इस प्रकार निर्मला एक आदर्श माता के रूप में चित्रित हुई है जो संतान की रक्षा के लिए साहसी रूप धारण कर लेती है।

पत्नी रूप –

'निर्मला' उपन्यास में प्रेमचन्द ने सुधारक, साधारण एवं तिरस्कृत पत्नी के रूप का चित्रण किया है।

सुधारक पत्नी रूप :– इस नारी रूप के अन्तर्गत वे सहनशील एवं आत्म–विरोध रहित पत्नी आती है जो सतीत्व–शक्ति से आभासित है तथा पति की प्रेरक शक्ति होने के साथ–साथ सुधारिका भी है। इस उपन्यास में सुधा इसी रूप के अन्तर्गत आती है। सुधा और डॉ. का दाम्पत्य सम्बन्ध मधुर है। जब सुधा को ज्ञात होता है कि उसके पति ने ही दहेज न मिलने के कारण निर्मला को ठुकरा दिया तब वह पति का तिरस्कार करती है। परिणामस्वरूप डॉ. को अपनी भूल का एहसास होता है और वह प्रायश्चित हेतु निर्मला की बहन कृष्णा का विवाह बिना दहेज लिए अपने अनुज से करवाता है। यदि सुधा एहसास न दिलाती तो डॉ. के जीवन में इस प्रकार की उदात्तता न आती।

साधारण पत्नी–रूप :– इस नारी रूप के अन्तर्गत वह पत्नी आती है जिसका पतिवर्त तो खण्डित नहीं है, किन्तु जो सम्पूर्ण घरेलू स्वार्थों, संकीर्णताओं एवं अन्धविश्वासों से युक्त है। इसका एक सीमित दायरा है जिसमें त्याग तथा सेवा नाम की वस्तु समझ से बाहर होती है। पारिवारिक आधिपत्य इनका प्रायः पति से भी अधिक होता है। निर्मला की रंगीलीबाई और कल्याणी दोनों नारियाँ पतिचरणरज दासी नहीं हैं।

रंगीलीबाई बहुत चतुर नारी है जो पति पर धौंस जमाकर रखती है। भालचन्द्र जब निर्मला की माँ द्वारा भेजे गए पंडित को शादी के लिए मना करने पर संकोच करता है तब वह पति को कहती है, "साफ बात करने में संकोच क्या? हमारी इच्छा है, नहीं करते। किसी का कुछ लिया तो नहीं है? जब दूसरी जगह दस हज़ार नगद मिल रहे हैं, तो वहां क्यों न करूं? उनकी लड़की कोई सोने की थोड़े ही है।" यहां रंगीलीबाई का लालच साफ दिख रहा है लेकिन जब भालचन्द्र मना कर देता है और रंगीलीबाई को कल्याणी की दशा का बोध होता है तो वह पति पर ही इसका सारा दोष लगाती है– "यह भलमानसी नहीं, छोटापन है, इसका इल्ज़ाम भी तुम्हारे ही सिर है। मैं अब शादी–ब्याह के बीच न जाऊंगी। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो। ढोंगी आदमियों से मुझे चिढ़ है।" इस प्रकार रंगीलीबाई उस स्वार्थी पत्नीके रूप में चित्रित हुई है जो घरेलू स्वार्थों एवं संकीर्णताओं से ग्रस्त है लेकिन फिर भी सारा दोष पति को ही देती है।

वहीं कल्याणी पति के खर्चीले स्वभाव की निंदा करती है क्योंकि उसे बच्चों के भविष्य की चिंता है। कल्याणी पति की धौंस सहने वालों में से नहीं है। जब उदयभानु कहता है कि मैं कमाकर लाता हूँ इसलिए अपनी इच्छा से खर्चभी कर सकता हूँ तब कल्याणी का विरोध इस प्रकार सामने आता है, "तो आप अपना घर संभालिए। ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहां मेरी कोई पूछ नहीं। घर में तुम्हारा जितना हक है, उतना ही मेरा भी है। इससे जौं–भर भी कम नहीं। अगर तुम अपने मन के राजा हो, तो मैं भी अपने मन की रानी हूँ।" कल्याणी उन पत्नियों में से नहीं हैं जो चुप–चाप पति की कृपा पर पलती हैं। वह अपना हक जताना जानती है।

तिरस्कृत पत्नी–रूप :– पत्नी, पति के सम्पूर्ण प्रेम तथा विश्वास की भूखी होती है। पति कुचाली हो, अवस्था के अनुसार अयोग्य हो अथवा योग्य होते हुए भी उसे समझने का सामर्थ्य न रखता हो, तो प्रत्यक्षतः भले ही वह जीवन

के साथ किसी प्रकार का समझौता कर ले, किन्तु सच तो यह है कि भीतर से वह स्वयं को खण्डित एवं तिरस्कृत ही समझती है। 'निर्मला' इसी रूप में चित्रित है। अनमेल विवाह के कारण पति का वह प्रेम नहीं पा सकी जिसकी अभिलाषा पत्नी को होती है। वह जिन्दगी से समझौता कर लेती है किन्तु भीतर से कुंठित ही रहती है, "उसे ज्ञात हुआ कि मेरे लिए जीवन का कोई आनन्द नहीं। उसका स्वप्न देखकर क्यों इस जीवन को नष्ट करूँ? मुझे विधाता ने दुःख की गठरी ढोने के लिए चुना है।" पति के अनमेलपन से तो वह समझौता कर लेती है लेकिन जब तोताराम उसके चरित्र पर शंका करता है तो वह और भी वेदना से भर जाती है किन्तु पति का विरोध नहीं कर पाती। तोताराम अपने घर के सर्वनाश का कारण निर्मला को मानता है क्योंकि इस विवाह के पश्चात मंसाराम और जियाराम की मृत्यु हो गई और छोटा बेटा भी जब घर छोड़कर चला गया तो वह निर्मला से कहता है, "तुमने मेरा बना–बनाया घर बिगाड़ दिया, तुमने मेरे लहलहाते बाग को उजाड़ डाला। मैं अपना सर्वनाश करने के लिए तुम्हें अपने घर नहीं लाया था। सुखी जीवन को और भी सुखमय बनाना चाहता था। यह उसी का प्रायश्चित है। जो लड़के पान की तरह फेरे जाते थे।" जो निर्मला पत्नी धर्म का पूर्ण पालन करती है और सौतेले बच्चों को भी माँ का प्रेम देती है उसी को जब तोताराम अपने सर्वनाश का कारण मानता है तो निर्मला के हृदय पर अघात पहुँचता है और वह बिमार रहने लगती है और इसी बीमारी में मृत्यु को भी प्राप्त हो जाती है। अंतिम समय में वह ननद से कहती है– "स्वामीजी ने हमेशा मुझे अविश्वास की नज़र से देखा, लेकिन मैंने कभी मन में भी उनकी उपेक्षा नहीं की। जो होना था, वह तो हो ही चुका था। अधर्म करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ती? पूर्वजन्म में न जाने कौन–सा पाप किया था, जिसका यह प्रायश्चित करना पड़ा। इस जन्म में कांटे बोती, तो कौन गति होती?" इस प्रकार निर्मला अपने जीवन के संत्रास को पूर्व जन्म के कर्म पर छोड़कर स्वीकार कर लेती है। अतः वे ऐसी बेकसूर तिरस्कृता है जिसकी विवशता को स्वीकार करते हुए उसके सुधार की प्रतीक्षा अथवा करुणान्त पर छोड़ दिया गया है।

पुत्री एवं बहन का रूप

पुत्री और बहन के रूप में भी हम निर्मला के चरित्र को ही देख सकते हैं। पुत्री रूप में देखें तो वह आज्ञाकारी एवं माता–पिता की लाज रखने वाली बेटी है। क्योंकि माता ने अपनी विवशता के कारण उसका जिससे विवाह किया वह बिना विरोध किए उसके साथ जीवन व्यतीत कर लेती है और अपने शील को भी बनाए रखती है। वहीं उसका बहन का रूप देखें तो वह कृष्णा के लिए चिंतित दिखाई देती है क्योंकि उसके साथ जो हुआ था वैसा वह कृष्णा के साथ नहीं होने देना चाहती है। कृष्णा के जीवन की परिणति निर्मला की भाँति नहीं हुई इसका अप्रत्यक्ष कारण भी निर्मला ही है।

सेहली का रूप –

सहेली के रूप में सुधा और निर्मला को देखा जा सकता है। सुधा डॉ. की पत्नी है और मंसाराम के इलाज के दौरान डॉ. और सुधा की पहचान निर्मला और तोताराम से हुई थी। डॉ. वही व्यक्ति है जिससे निर्मला का रिश्ता पक्का हुआ था और निर्मला के पिता की मृत्यु के पश्चात दहेज देने में असमर्थ होने के कारण डॉ. और उसके परिवार ने निर्मला

से विवाह करने से इंकार कर दिया था। सुधा इस बात को जानकर अपने पति का पक्ष लेती नहीं दिखाई देती बल्कि वह तो पति की निंदा करती है तथा उसे पति से घृणा होती हैं कि उसके पति के कारण आज निर्मला ऐसा वेदनापूर्ण जीवन व्यतीत कर रही है। इसलिए वह पति से प्रायश्चित करवाती है इतना ही नहीं जब उसे यह बात ज्ञात होती है कि डॉ. सिन्हा निर्मला के प्रति आकर्षित हो रहे हैं तथा इसी आकर्षण के चलते एक दिन निर्मला को अकेलापाकर अपने प्रेम को प्रदर्शित भी कर देते हैं जिससे निर्मला के हृदय को ठेस पहुंची है तो उस समय भी सुधा ने निर्म्मला के हालात को समझा और अपने पति को दोषी ठहराते हुए तिरस्कृत किया। परिणमस्वरूप डॉ. सिन्हा आत्महत्या कर लेते है। पति की मृत्यु का दुख उसे भी है लेकिन उसके द्वारा कहे ये शब्द– ''क्रोध की बात पर क्रोध आता ही है।'' इस बात का परिणाम है कि उसे पति को कहे अपने शब्दों का कोई पछतावा नहीं है। यहाँ सुधा का आदर्श सखी रूप चित्रित हुआ है जिसके लिए पति की जान से अधिक सखी के न्याय का महत्व है।

11.4 सारांश

सारांश रूप में कहें तो प्रेमचन्द ने आदर्श नारी का रूप चित्रित किया हो या साधारण नारी का। वह अन्याय के विरुद्ध कभी–न–कभी आवाज़ अवश्य उठाती है। निर्मला उपन्यास के नारी पात्र दुख सहते हैं लेनिक विरोध भी करते हैं। प्रेमचन्द केवल नारी के दुखों को ही शब्द नहीं देते बल्कि उनके दुखों के कारण का विश्लेषण भी करते हैं। इस उपन्यास में सबसे अधिक निर्मला के जीवन की त्रासदी को उद्‌घाटित किया गया है और उसके इस वेदनापूर्ण जीवन का कारण प्रेमचन्द ने दहेज प्रथा और फिर अनमेल विवाह को माना है। दो कारणों से निर्मला वेदनायुक्त जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त हुई है और नारी का ऐसा चित्रण कर प्रेमचन्द समाज को सोचने पर विवश कर रहे हैं कि यदि उन्होंने अपनी संकीर्णताओं को नहीं छोड़ा तो कई बेकसूर निर्मला इसी तरह दुखद जीवन जीकर मृत्यु को प्राप्त होती रहेंगी।

11.5 कठिन शब्द

1. नैकट्य
2. अभिशिप्त
3. मृत्यु शय्या
4. आभासित
5. पातिव्रत
6. कुचाली
7. संत्रास
8. सम्यक
9. संचालन
10. संकीर्णता

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'निर्मला' उपन्यास में चित्रित नारी की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न. तत्कालीन समय के परिप्रेक्ष्य में 'निर्मला' उपन्यास में चित्रित नारी पर टिप्पणी कीजिए।

प्रश्न. नारी के विविध रूप के सन्दर्भ में 'निर्मला' उपन्यास में चित्रित नारी की समीक्षा कीजिए।

11.7 पठनीय पुस्तकें

1) निर्मला–प्रेमचन्द।

2) प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास–कला– डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय।

3) प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व– हंसराज 'रहबर'।

4) प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यंग्य' बोध – उर्मिला सिन्हा।

—— 0 ——

'निर्मला' उपन्यास के प्रमुख पात्र

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 'निर्मला' उपन्यास के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

12.4 सारांश

12.5 कठिन शब्द

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.7 पठनीय पुस्तकें

12.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप 'निर्मला' उपन्यास में चित्रित पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

12.2 प्रस्तावना

प्रेमचन्द से पूर्व जो साहित्य रचा जा रहा था उसमें चरित्र–चित्रण पर ध्यान नहीं दिया जाता था। उपन्यास घटनाओं के सहारे आगे बढ़ता था। प्रेमचन्द को ही यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने जीवन की साधारण घटनाओं को अपनी कहानियों और उपन्यासों का विषय बनाया तथा हाड़–माँस के बने हुए जीते–जागते इन्सानों का स्वाभाविक चरित्र–चित्रण किया। इसलिए उन्हें हिन्दी–उर्दू का पहला यथार्थवादी लेखक माना जाता है। प्रेमचन्द ने उन्हीं लोगों को अपने उपन्यासों का पात्र बनाया जिनके वे अधिक निकट थे। उनका मानना है कि लेखक उन्हीं पात्रों का सफल चरित्र–चित्रण कर सकता है, जिन्हें वह निजी अनुभव से जानता–पहचानता है। इस सम्बन्ध में यह कह देना भी आवश्यक है कि

चरित्र–चित्रण की सफलता के लिए मात्र पात्रों से सम्पर्क और निजी जान–पहचान होना ही काफी नहीं, लेखक का दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक व्यवस्था के प्रति उसकी रूचि एवं ज्ञान भी विशेष महत्व रखता है। यदि लेखक का दृष्टिकोण अवैज्ञानिक हो, तो वह सामाजिक तथ्य समझने में असफल होता है जिससे उनके पात्रों का विकास भी कुण्ठित रह जाता है। जीवन का निजी अनुभव उसकी कोई सहायता नहीं कर पाता। आरम्भ में प्रेमचन्द भी अवैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण यथार्थवादी कम और आदर्शवादी अधिक थे किन्तु समय के साथ उनका दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक हुआ और वह यथार्थवादी परिलक्षित हुए।

लेखक के दृष्टिकोण और सामाजिक ज्ञान का चरित्र–चित्रण में विशेष महत्व है। सजीव एवं यथार्थ पात्र का निर्माण करने के लिए बहुत ही सूझ–बूझ, गाम्भीर्य और जिम्मेदारी से काम लेना पड़ता है। लेखक का कार्य पात्र के रंग–रूप एवं उसके बाह्य आचरण का वर्णन करना ही नहीं, बल्कि उसका मुख्य और कठिन कार्य पात्र के अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करना होता है। इसमें वह तभी सफल होगा जब वह पात्र की आत्मा में गहरा पैठकर देखेगा, उसके सामाजिक संबंधों को समझेगा तथा उसे यथार्थ की भौतिक परिस्थितियों में रखकर उपस्थिति करेगा, जो उसके मन में हलचल उत्पन्न करती हैं और उसके अन्तर्द्वन्द्व को उभारकर पाठक के समक्ष लाती हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों का अध्ययन करने के उपरान्त यह तथ्य सामने आता है कि पात्रों की यथार्थ मनोदशा एवं भावनाओं का चित्रण करने में उन्हें अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है।

12.3 'निर्मला' उपन्यास के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

'निर्मला' उपन्यास की कथा चरित्रों के घात–प्रतिघात से ही विकसित हुई है जो एक औपन्यासिक कौशल है। 'निर्मला' इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्रा है जिसके माध्यम से उन नारियों का चित्रण किया गया है जो दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की शिकार होकर त्रस्त जीवन जीते हुए अनततः मृत्यु को प्राप्त होती हैं। निर्मला, तोताराम, मंसाराम, उदयभानु, कल्याणी, सुधा, भुवन मोहन, रुक्मिणी, भालचंद, रंगीलीबाई आदि ही मुख्यतः इसके प्रधान और सहायक चरित्र हैं। जिनके माध्यम से समाज में व्याप्त दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की समस्या को उद्घाटित करते हुए उसके दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र निर्मला, तोताराम और मंसाराम हैं जिनकी चारित्रिक विषेशताएं इस प्रकार हैं–

1) निर्मला

'निर्मला' इस उपन्यास की प्रधान नायिका है इसी के नाम पर कृति का भी नामकरण हुआ है। इसके चरित्र को उभारने वाली निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

सर्वगुण सम्पन्न किन्तु अभागी :– विवाह–पूर्व की निर्मला सुन्दर, गम्भीर, भावुक एवं भविष्य–भीरु है। वह वयः सन्धि ा को प्राप्त है। पिता उसका विवाह पक्का करते ही अप्रत्याशित मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यही से उसके जीवन में दुखों का प्रवेश होता है। लड़के वाले दहेज न मिलने की आशंका से विवाह करने से इन्कार कर देते हैं और निर्मला का गठबन्धन तोताराम नामक अधेड़ वकील से हो जाता है। उसकी माँ चाहती तो थोड़ा दहेज देकर किसी सुव्यवस्थित परिवार में उसका सम्बन्ध जोड़ सकती थी परन्तु उसे तो लड़कों के भविष्य की चिन्ता होती है। वह तो निर्मला को लहराते सागर

में छलांक लगवाकर स्वयं शान्त हो जाना चाहती है। उसका मानना था कि "अब अच्छे घर की जरूरत न थी। अच्छे वर की जरूरत न थी। अभागिनी को अच्छा घर–वर कहाँ मिलता? अब तो किसी तरह सिर का बोझा उतारना था, यह रूपवती है, गुणशीला है, चतुर है, कुलीन है, तो हुआ करे, दहेज नहीं तो उसके सारे गुण दोष हैं, दहेज हो तो सारे दोष गुण हैं। इन्सान की कोई कीमत नहीं, केवल दहेज की कीमत है।" जब माता ही साहस त्याग बेटी को भाग्य के ह्याले छोड़ दे तो फिर बेटी भी इसे अपनी नियति समझ आग में कूदने से पीछे कैसे हो सकती है। निर्मला अपनी उमंगों को हृदय में दफन कर भाग्य की नाव पर बैठ जाती है जो उसे त्रस्त जीवन की ओर ले जाती है।

वासना का उदात्तीकरण :– निर्मला के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता यही है कि उसमें वासना का उन्मूलन नहीं अपितु उदात्तीकरण है। उसका विवाह स्वभाव से ही नहीं अवस्था भेद से भी अनमेल था। मात्र विवाह से ही स्वाभाविक वासनात्मक संस्कारों की समस्या हल नहीं हो जाती। निर्मला अपना रूप–सौन्दर्य पति को नहीं दिखाना चाहती क्योंकि प्रत्येक नारी अपने हमउम्र से ही सहज हो पाती है और तोताराम तो उसके पिता की उम्र का था ऐसी स्थिति मेंतोताराम के साथ उसकी काम–भावना सुप्त रहती। तोताराम उसके लिए प्रेम का नहीं सम्मान का पात्र था। उसका कहना था कि "मैं इनकी सेवा कर सकती हूँ, सम्मान कर सकती हूँ, अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पण कर सकती हूँ, लेकिन वह नहीं कर सकती, जो मेरे किये नहीं हो सकता। अवस्था का भेद मिटाना मेरे वश की बात नहीं।" किन्तु जब उसे पति की शंका और इच्छा का बोध होता है तो उसकी वेदना का वेग शान्त हो जाता है। वह इस सत्य को स्वीकार कर लेती है कि सभी के भाग्य में सुख की सेज नहीं होती। इसलिए वह कर्तव्य पर मिटने का निश्चय कर लेती है। अपने सुखों को भूल पति को सुख देने की सोचती है। मन्साराम जैसे आलम्बन को पाकर भी वह कलुषित प्रेम कीबात न सोच सकी। वही उसकी सहेली के डाक्टर पति के एकान्त–विलास निमन्त्रण में भी उसका सतीत्व खण्डित नहीं होता। रुक्मिणी जैसी कठोर एवं कुण्ठित ननद को भी निर्मला के चरित्र के इसी उदात्त पक्ष के कारण नर्म होना पड़ता है।

सहनशील :– एक तो अनमेल विवाह दूसरे आर्थिक ह्रास और इस पर गार्हस्थ्य–वैषम्य। स्वाभाविक ही है कि निर्मला अन्तर्बाह्य में वेदना ही की प्रतिकृति हो। रुक्मिणी भी कहती है, "तुम्हारा वज्र का हृदय है महारानी।" नित्यप्रति व्यंग्य–वाणों की बौछार, सशंकित दृष्टियों की ताक–झाँक, विभिन्न अपराधों का आरोपण आदि निर्मला सब सहती है पर किसी ने उसके हृदय में विप्लव की ज्वाला को नहीं समझा जिसकी वेदना ने उसे संज्ञाहीन बना दिया था। निर्मला की दशा उस पंखहीन पक्षी की भांति थी जो सर्प को अपनी ओर बढ़ते देख उड़ना तो चाहता है लेकिन उड़ नही पाता। अपने जीवन की नियति को स्वीकार करते हुए उसका कहना है– "संसार में सब–के–सब प्राणी सुख–सेज ही पर तो नहीं सोते? मैं भी उन्हीं अभागों में से हूँ। मुझे भी विधाता ने दुःख की गठरी ढोने के लिए चुना है। वह बोझ सिर से उतर नहीं सकता। उसे फेंकना भी चाहूं, तो नहीं फेंक सकती। उम्र भर का कैदी कहां तक रोयेगा? रोये भी तोकौन देखता है? किसे उस पर दया आती है? रोने से काम में हर्ज होने के कारण उसे और यातनाएं ही तो सहनी पड़ती है।" निर्मला ने आजीवन परिस्थितियों से समझौता किया है पलायन की प्रवृति उसमें नहीं मिलती। कठिन समय में भी धैर्य वही रख सकता है जो सहनशील हो और निर्मला में वही सहनशीलता दृष्टिगोचर होती है।

कर्त्तव्यनिष्ठ :– निर्मला ने अपने कर्त्तव्य का सदैव पालन किया है। पत्नी, गृहिणी, विमाता, पुत्री, भगिनी एवं सहेली सभी रूपों में सर्वदा मर्यादा का पालन करते हुए कर्त्तव्य का पालन करती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उसे पति से प्रेम नहीं है, तोताराम के प्रेम–प्रदर्शन से उसे वितृष्णा ही नहीं तीव्र घृणा भी रही है फिर भी यह एकबलिदान से कम नहीं है कि उसने उनको सम्मान ही नहीं दिया, उनकी सेवा ही नहीं की, गृहस्थी का लेखा जोखा ही उनके सामने प्रस्तुत नहीं किया, अपितु सम्पूर्ण ग्लानि को कर्त्तव्य के आंचल में समेटकर शरीरदान भी दिया है। पिता समान पुरुष की वासना को अवलम्ब दिया है, आत्मोत्सर्ग किया है। गृहिणी के रूप में सबको खिलाकर स्वयं खाया है। विमाता होते हुए भी पति से अधिक उसके लड़कों के भविष्य की चिंता की है। पुत्री के रूप में उसे पशु की भाँति जिस घर में हँक दिया गया वहाँ भी उसने पितृपक्ष की लज्जा का निरावरण नहीं किया है। भगिनी के रूप में उसने कृष्णा की अपने जैसी दुर्दशा नहीं होने दी है और सहेली के रूप में भी यद्यपि वह बहुत सफल नहीं तो भी विश्वासघातिनी नहीं बनी है।निर्मला का यह पक्ष उसे अतिवादी आदर्श के अन्तर्गत रखते हुए अस्वाभाविक ठहराता है। यदि यथार्थ–प्रतिपादन की दृष्टि सेइसे कुछ अस्वाभाविक मान भी लिया जाए तो प्रश्न यह उठता है कि इसके अतिरिक्त निर्मला के चरित्र की और क्या निर्माणात्मक परिणति हो सकती थी जो प्रभावोत्पादकता के साथ ही हमारे मूल्यों का हनन भी न करती?

मातृत्व :– मातृत्व निर्मला के चरित्र–संगठन में महत्वपूर्ण रहा है। विमाता होते हुए भी उसके मातृत्व पर कोई शंका नहीं की जा सकती। तोताराम के रोते हुए ''बालक को गोद में लिये हुए उसे वह तुष्टि हो रही थी, जो अब तक कभी न हुई थी। आज पहली बार उसे आत्मवेदना हुई, जिसके बिना आँख नहीं खुलती, अपना कर्त्तव्य–मार्ग नहीं सूझता। वह मार्ग अब दिखाई देने लगा।'' यह तो निर्मला का दुर्भाग्य है कि विमाता के रूप में उसका वात्सल्य केवल दयाके पर्याय से अधिक नहीं समझा गया पर अपनी बेटी को जन्म देने के उपरान्त मानो उसे जीने का सहारा मिल गया। ''बालिका को हृदय से लगाकर वह अपनी सारी चिन्ताएँ भूल गयी थी। शिशु के विकसित और हर्ष–प्रदीप्त नेत्रो को देखकर उसका हृदय प्रफुल्लित हो रहा था। मातृत्व के इस उद्‌गार में उसके सारे क्लेश विलीन हो गये थे।'' भविष्य में वह कन्या के भविष्य के लिए चिन्तित रही है। आर्थिक अभाव के चलते एक–एक पैसा बचाने का प्रयास करती है। मृत्यु समय भी वह बेटी की चिंता करती हुए उसे ननद की गोद में देते हुए उससे विनती करती है कि ''चाहे कुंवारी रखिएगा, चाहे जहर देकर मार डालिएगा, पर बेमेल के गले न मढ़िएगा।'' निर्मला नहीं चाहती थी कि उसकी बेटी का जीवन भी उसकी भाँति दुख में व्यतीत हो।

अतः कहा जा सकता है कि निर्मला प्रेमचन्द की अद्वितीय मर्मस्पर्शी चरित्र–कल्पना है जिसके माध्यम से हमारे समाज की बुराइयों एवं कमजोरियों की तस्वीर का निरावरण किया गया है। वह नारी–जीवन का एक करुणात्मक अध्याय है जो मध्यवर्गीय समाज के उस गँदले दृश्य को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है यहाँ प्राणों से अधिक दहेज का मूल्यहै। यहाँ बेटी की खुशी, आशा एवं सपनों से अधिक अपने कर्त्तव्य भार से मुक्त होना अधिक आवश्यक माना जाता है।

2) तोताराम

तोताराम 'निर्मला' उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र है। जो पेशे से वकील है। उसकी पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी है जिससे उसे तीन बेटे भी हैं– मंसाराम, जियाराम और सियाराम। बेटों की देख–रेख तथा अपनी कामुकता के चलते वह चालीस वर्ष का होते हुए भी पंद्रह साल की निर्मला से विवाह करता है। वयोभेद के कारण वह निर्मला को पति सुख देने में असफल होता है। "तोताराम दम्पत्ति विज्ञान में कुशल थे। निर्मला को खुश रखने के लिए उनमें जो स्वाभाविक कमी थी, उसे वह उपहारों से पूरी करना चाहते थे। निर्मला के लिए मेवे, मुरब्बे, मिठाइयां, किसी चीज़ की कमी न थी। अपनी ज़िन्दगी में कभी सैर–तमाशे देखने न गये थे। पर अब छुट्टियों में निर्मला को सिनेमा, सरकस, थिएटर दिखाने ले जाते थे।" लेकिन इस सबसे भी वह निर्मला का प्रेम नहीं पा सके। वह स्वयं को युवा बनाने के लिए भी अनेक प्रयास करता है लेकिन असफल ही रहता है।

तोताराम में हमें स्वार्थी प्रवृत्ति भी मिलती है। निर्मला से विवाह करने के पश्चात वह केवल पत्नी को ही प्रसन्न रखने का प्रयास करता है क्योंकि उसे प्रसन्न कर वह अपनी वासना–तृप्ति करना चाहता है लेकिन पत्नी से प्रेम उसकी बेटों से उपेक्षा का कारण बन जाता है। वह निर्मला से कहता है– "तुम्हें जो लड़का तंग करे, उसे पीट दिया करो। मैं भी देखता हूं कि लौंडे शरीर हो गये हैं। मंसाराम को तो मैं बोर्डिंग हाउस में भेज दूंगा। बाकी दोनों को तो आज ही ठीक किये देता हूं।" बेटों से उपेक्षा करना एवं निर्मला का पक्ष लेना मात्र तोताराम के स्वार्थ को दर्शाता है क्योंकि वह ऐसा करके निर्मला पर अपना प्रभाव बनाना चाहता था।

वह निर्मला पर पूर्णतः अधिकार पाना चाहता था इसलिए निर्मला का मंसाराम से हँसना–बोलना उसकी शंका का कारण बनता है। वह अपनी कमी और निर्मला के यौवन से भली–भाँति परिचित था। इसलिए वह निष्कलंक निर्मला और मंसाराम के शील पर शंका करता है। उसकी यह शंका उसके जीवन की ही त्रासदी साबित होती है। क्योंकि मंसाराम इस आरोप को सहन नहीं कर पाता और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मंसाराम की मृत्यु से मंझले बेटे जियाराम को भी धक्का लगता है और वह पिता से घृणा करने लगता है। निर्मला के गहने चुराने के पश्चात भेद खुलजाने पर वह भी आत्महत्या कर लेता है। दोनों बेटों को खोने के उपरान्त तोताराम मानसिक रूप से अव्यवस्थित रहता है परिणामस्वरूप वह अदालत भी नियम से नहीं जा पाता। मुकद्मों के फैसले भी उसके विरुद्ध आने लगते हैं जिससे उसे मुकद्दमें मिलना बंद हो जाते हैं और उसकी आर्थिक स्थिति गिर जाती है। यहाँ तक कि उसका घर भी नीलाम हो जाता है। छोटा लड़का सियाराम घर के वातावरण से ऊब जाता है और साधुओं के कुचक्र में फँसकर घर छोड़ देता है।

इस घटना से तोताराम पूर्ण रूप से आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक रूप से ग्रस्त हो जाता है। अपने अनमेल विवाह और शंकालु प्रवृत्ति के कारण उसका जीवन जिस नरक में तबदील होता है उससे वह पश्चाताप की ज्वाला मे जलने लगता है। छोटे बेटे को ढूँढने के उद्देश्य से घर छोड़कर चला जाता है लेकिन एक महीना बीत जाने पर भी वह नहीं मिलता। थक–हारकर जब घर वापिस लौटता है तो निर्मला का शव अन्तिम संस्कार के लिए तैयार था।

अतः तोताराम का चरित्र विलासी पुरुष का प्रतिनिधित्व करता है। जो पैसों के बल पर गरीब घरों की बेटियों को अपनी वासना की पूर्ति के लिए चुनते हैं लेकिन प्रेमचन्द ने तोताराम के जीवन का ऐसा भयावह चित्र खींचकर इस वर्ग को आगाह कर दिया है कि उनकी विलासता उनके जीवन का सर्वनाश कर सकती है। निर्मला के नरकीय जीवन का दोषी तोताराम भी है यदि वह अपनी कामुकता के चलते उससे शादी न करता तो निर्मला का जीवन इतना त्रस्त न होता।

3) मंसाराम

मंसाराम, तोताराम का बड़ा बेटा है जो निर्मला की हमउम्र का है। पढ़ाई तथा खेल–कूद में होशियार होनेके साथ–साथ वह प्रभावी व्यक्तित्व का युवक भी है। बुद्धि से जितना तेज है स्वभाव से उतना ही संवेदनशील। पहले तो वह विमाता निर्मला से संकोच करता है लेकिन जब निर्मला को भाईयों की देख–रेख तथा स्नेह करते देखताहै तो उसका संकोच भी कम होने लगता है। निर्मला उससे अंग्रेजी भी पढ़ती है लेकिन दोनों के रिश्ते पर जब तोताराम शंका करता है तो मंसाराम इस आरोप को सहन नहीं कर पाता और वह सोचता है– "उन्हें केवल मेरे साथ स्नेह का व्यवहार करने के लिए यह दण्ड दिया जा रहा है। उनकी सज्जनता का उन्हें यह उपहार मिल रहा है। अपनी मान–रक्षा के लिए न सही, उनकी आत्म–रक्षा के लिए इन प्राणों का बलिदान करना पड़ेगा। इसके सिवाय उद्धार का कोई उपाय नहीं। ऐसी सती पर सन्देह किया जा रहा है और मेरे कारण। माता, मैं अपने रक्त से इस कालिमा को धो दूंगा।" मंसाराम का ऐसा विचार उसके निष्कलंक होने का प्रमाण है। इतना ही नहीं वह पिता के कहने पर बोडिंग स्कूल भी चला जाता है और वहाँ खान–पान पर ध्यान न देने के कारण बीमार पड़ जाता है। तोताराम उससे मिलने जाता है तो मंसाराम काअध्यापक तोताराम को सुझाव देता है कि वह बेटे को घर ले जाए लेकिन मंसाराम घर न जाने की जिद्द पकड़ लेता है।जब उसकी हालत गम्भीर हो जाती है तो उसे अस्पताल भर्ती किया जाता है किन्तु वहाँ पर भी उसकी सेहत में सुधार नहीं होता और वह मृत्यु से पूर्व अपने चरित्र की उज्ज्वलता की झलक दिखाकर इस संसार से विदा हो जाता है। अंतिम समय में निर्मला के पैरों में गिरकर कहे गए उसके शब्द– "अम्माजी, इस अभागे के लिए आपको व्यर्थ इतना कष्ट हुआ। मैं आपका स्नेह कभी न भूलूंगा। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैंआपके ऋण से उऋण हो सकूं। आपकी उम्र मुझसे बहुत ज्यादा न हो, लेकिन आप, मेरी माता के स्थान पर थीं और मैंनेआपको सदैव इसी दृष्टि से देखा।" निर्मला और उसके रिश्ते की पवित्रता का साक्ष्य देते हैं।

अतः मंसाराम का चरित्र आदर्श युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है वह वर्ग जिसके लिए प्रत्येक रिश्ते की एक मर्यादा है। जिसका पालन करते हुए वह अपने प्राणों का बलिदान भी दे सकते हैं। वहीं पिता द्वारा पुनर्विवाह का गलत निर्णय लेने पर किस प्रकार निर्दोष बालक का जीवन मृत्यु को प्राप्त हो जाता है या उसे किन आरोपों का सामना करना पड़ता है। प्रेमचन्द इस सच्चाई से अवगत भी करवाते हैं ताकि समाज में इस तरह के निर्णय न लिए जाएं जिनके परिणाम इतने घातक हों।

12.4 सारांश

'निर्मला' उपन्यास के चरित्र बहुत ही प्रभाशाली और व्यक्तित्वपूर्ण हैं इनके निर्माण में लेखक ने यथार्थवादी दृष्टिकोण ग्रहण किया है। कोई भी पात्र व्यर्थ नहीं है, सभी का कार्य–व्यापार सामाजिक असंगतियों के निदर्शन में सहायक है। निर्मला भारतीय समाज की उन पीड़ित युवतियों का प्रतिनिधित्व करती है, जो दहेज–प्रथा और अनमेल–विवाह की शिकार होकर, तड़प–तड़प कर मर जाती है। तोताराम का चरित्र अधेड़ विधुरों की विलासिता और सन्देही वृति का प्रतीक है। भालचन्द्र सिन्हा धनलोभी पिताओं और भुवनमोहन सिन्हा मध्यवर्गीय लालची एवं कायर युवकों का प्रतिनिधित्व करता है। इसके अतिरिक्त कल्याणी, उदयभानु, कृष्णा, सुधा रुक्मिणी आदि पात्र भी कथा को अग्रसर करने तथा निर्मला के चरित्र को उभारने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

12.5 कठिन शब्द

1. गाम्भीर्य
2. घात–प्रतिघात
3. भविष्य–भीरू
4. वयःसन्धि
5. उन्मूलन
6. आलम्बन
7. कलुषित
8. गार्हस्थ्य–वैषम्य
9. विप्लव
10. भगिनी
11. वितृष्णा
12. प्रफुल्लित

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'निर्मला' उपन्यास की प्रधान पात्रा 'निर्मला' का चरित्र–चित्रण कीजिए।

प्रश्न. तोताराम के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न मंसाराम के चरित्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न. 'निर्मला' उपन्यास के प्रमुख चरित्रों का मूल्यांकन कीजिए।

11.7 पठनीय पुस्तकें

1) निर्मला–प्रेमचन्द।

2) प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास–कला– डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय।

3) प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व– हंसराज 'रहबर'।

4) प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यंग्य' बोध – उर्मिला सिन्हा।

–––– 0 ––––

'गोदान' में आदर्श और यथार्थ

13.0 रूपरेखा
13.1 उद्देश्य
13.2 प्रस्तावना
13.3. 'गोदान' में आदर्श और यथार्थ
13.4. सारांश
13.5 कठिन शब्द
13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
13.7. पठनीय पुस्तकें

13.1. उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे

– गोदान उपन्यास में आदर्शवाद नामक विचारधारा को व्यक्त किया गया है।

– प्रेमचन्द ने गोदान उपन्यास में आदर्श और यथार्थ का चित्रण किया है।

– प्रेमचन्द की इस कृति में यथार्थोन्मुख आदर्शवाद से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की परिणति हुई है।

13.2 प्रस्तावना

आदर्शवाद नामक विचारधारा का वाङ्मय की विविध विधाओं में बहुलता से प्रयोग किया गया है। साहित्य क्षेत्र में इस विचारधारा से यह आशय है कि जो साहित्य, मनुष्य को अपने सम्पूर्ण जीवन में इन्हीं उत्कृष्ट तत्वों के माध्यम से प्राप्त उपलब्धियों की दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा दे। यह उपलब्धियाँ मनुष्य को सुख और सन्तोष प्रदान करती हैं। यह विचारधारा संयम त्याग और आत्मपीड़न को कल्याणप्रद बताकर उसका समर्थन करने लगती है। मानव शनैः शनैः इस विचारधारा पर प्रबल रूप से विश्वास करने लगता है कि ब्राह्य और शारीरिक सुखों के द्वारा स्थायी सुख की प्राप्ति असम्भव है। इस प्रकार के जीवन में उदात्त

तत्वों को प्रश्रय देने वाली इस विचारधारा की वृत्ति अन्तर्मुखी है। डॉ० प्रताप नारायण टण्डन का आदर्शवाद के सम्बन्ध में विचार है –स्थूल रूप से आदर्शवाद जगत और जीवन में पायी जाने वाली वास्तविकता को साहित्य में प्रतिछवित करने का विरोधी होता है। यह जीवन चित्रण में वास्तविकता के स्थान पर उदात्तता के समावेश का समर्थन करता है। आदर्शवाद में समाविष्ट भावनात्मक और कल्पनात्मक तत्वों को ही आदर्शवाद का आधार और प्रेरक मानना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि ये वास्तव में वे तत्व हैं जो जीवन को सृजनशील बना कर ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों से विमुख और इस प्रकार सार्थक बनाते हैं। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि आदर्शवादी विचारधारा समाज में व्याप्त कुरीतियाँ समस्याओं का तिरस्कार करके कल्याणकारी भावनाओं को ही वर्णित करने पर बल देती हैं। आदर्शवाद उन्हीं मानव मूल्यों को चित्रित करता है जो शिवम् है, शुभ सन्देश सूचक हैं एवं सृजनात्मक हैं आदर्श भाव और कल्पना की ऊँचाईयों को ही संस्पर्श करने के लिए प्रयत्नरत रहता है। यह विचारधारा उच्चनैतिक. धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सौन्दर्यपरक प्रतिमानों को स्वीकार करके उन्हीं के अनुरूप जीवन और समाज को नये सांचे में ढालकर उनका रूप विधान परिवर्तन करने की प्रेरणा देती है और इस प्रकार इसका मूल स्वर नैतिक होता है।

यथार्थवाद एक साहित्यिक विचारधारा के रूप में पाश्चात्य चिन्तन की उपज है। सिद्धान्ततः मानव की सहज ज्ञान की शक्तियों के वातावरण को समझने तथा अध्ययन करने की क्रिया को ही यथार्थवाद का मूल स्वीकार किया जाता है। पाश्चात्य साहित्य में इसका विकास राजनैतिक, दार्शनिक विचारकों के सिद्धान्तों को ग्रहण करने के उपरान्त ही हुआ। यह विचारधारा आदर्शवाद की विरोधी है। यह साहित्य में यथातथ्य वर्णन करने को प्रश्रय देती है। आधुनिक युग में इस प्रवृत्ति के विकास की सम्भावनाएँ सामने आयीं और इसके ही अनेक रूप साहित्य में विकसित होने लगे जिसे अति यथार्थवाद तथा समाजवादी यथार्थवाद की संज्ञा दी गयी। डॉ० सुरेश सिन्हा के शब्दों में – "अतः यथार्थवाद वह साहित्यिक मिश्रण है जो चयन शक्ति एवं सृजनात्मकता से पाठकों की यथार्थ समझने की शक्ति को विकसित करता है। यह हमारी मानसिक उदात्तता की प्रेरणा का प्रतीक बनकर उभरता है और हमें काल्पनिकता की कृत्रिमता से हटा कर जीवन की सत्यता की ओर मोड़ता है। "यथार्थवाद व्यक्ति को समाज का अभिन्न अंग स्वीकार कर उसकी अखण्डता के प्रति आस्थावान है और इस प्रकार यह स्थूलता की ओर उन्मुख होता है। डॉ० प्रताप नारायण टण्डन ने यथार्थवाद की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– सैद्धान्तिक रूप से इस विचारधारा को आदर्शवाद और नीतिवाद का विरोधी इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसकी मान्यताएँ आदर्शात्मक तथा नीतिपरक दृष्टिकोण की विरोधी हैं। इस विचारधारा के अनुसार आधुनिक युग में निजी तथा आदर्श के सिद्धान्त अव्यवहारिक तथा रूढ़िवादी हो गये हैं। इसलिए इसके समर्थक इनका विरोध करते हुए अचेतन की विविध सम्भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए उन्हीं की अभिव्यक्ति पर गौरव करते हैं। "किसी भी उपन्यास में यदि लेखक जीवन के सत्य का अंकन करने के साथ ही साथ मानव जीवन का समग्र रूपात्मक चित्र खींचने का इच्छुक है तो उसे यथार्थवाद अनुगमन नहीं करता वरन् जीवन में व्याप्त तथ्यों को खण्ड–खण्ड करके अपनी इच्छानुसार यथार्थवाद सृजनशील मान्यता को प्रश्रय देता है। किसी भी उपन्यास में यदि एक ही विचारधारा का आधिक्य

हो जाता है तो वह कृति उत्कृष्ट नहीं मानी जाती।

13.3. गोदान में आदर्श और यथार्थ

यथार्थ को प्रेमचन्द ने साहित्य की कसौटी स्वीकार किया है अनुभूति की यथार्थता और ईमानदारी पर भी पर्याप्त बल दिया है। उनका मन्तव्य है कि "साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो। जिसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सच्चाईयां और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हों।

प्रेमचन्द ने अपनी अन्तिम एवं सर्वोत्कृष्ट औपन्यासिक कृति "गोदान" में कृषकों की समस्याओं को यथार्थ की कठोर भूमि पर चित्रित किया है। इसमें वह आदर्शवाद के मोह से पूर्णरूपेण मुक्त जान पड़ते हैं। अब तक प्रेमचन्द ने यह अनुभव कर लिया है कि इन सब नीतियों से कृषकों की स्थिति में सुधार सम्भव नहीं है। होरी के चरित्र निर्माण में लेखक ने अपनी समस्त कला उंडेल दी है। वह जीवन भर शोषण के अमानवीय चक्र में पिसता रहा, कष्ट भोगता रहा, मर गया, पर जीवन में एक छोटी सी गाय रखने की इच्छा पूरी न कर सका। उसका परिवार नष्ट हो जाता है। जब वह जीवन यात्रा से प्रयाण करता है तब न तो उसकी पत्नी के पास गोदान करने के लिए पैसे हैं, न बछिया और न ही गाय। यह भारतीय कृषक की दारुण स्थिति का सूचक है। जीवन के इन सब कटु अनुभवों को देखकर ही लेखक ने कृषक की वास्तविक स्थिति चित्रित करके यह बताया कि – 'देखो यह है समाज की दशा।'

"गोदान" में होरी एवं धनिया का जीवनव्यापी संघर्ष भारतीय कृषक की करूण गाथा को सजीव करता है। होरी एवं धनिया के जीवन भर के संघर्ष एवं परिश्रम का अत्यन्त कारूणिक परिणाम मिलता है। वह जीवन भर परिश्रम करने के उपरान्त भी समृद्ध नहीं हो पाते और अन्त में कृषक मृत पड़ा हुआ है, उसकी पत्नी धनिया बीस आने पैसे की राशि गोदान के लिए सुरक्षित किये हुए हैं कोई धर्म के नाम पर, कोई न्याय के नाम पर, उसका शोषण करता है। जीवन भर लू, धूप एवं कठोर वर्षा में परिश्रम करने वाले कृषक को अन्ततोगत्वा मजदूर बनाना पड़ता है।

लेखक ने इसमें यह अंकित किया है कि देखो यह है तुम्हारी समाज व्यवस्था जिसमें होरी जैसे कर्मठ किसान पिसने के लिए विवश हैं और फिर भी उन्हें सुख की उपलब्धि नहीं होती।

"गोदान" तक आते–आते प्रेमचन्द का दृष्टिकोण एकदम परिवर्तित हो गया था। उन्होंने यथार्थ जीवन की कठिनाइयों एवं संघर्षों से जूझकर जो मान्यताएं प्रतिस्थापित की वह अब मिथ्या जान पड़ने लगीं। मानवता की विजय के प्रति उनका अन्तिम विश्वास अब खण्डित होने लगा। समस्याओं, कठिनाइयों से लोहा लेने वाले प्रेमचन्द स्वयं होरी के रूप में पिसते गये। जीवन संग्राम में हार होने पर भी होरी अपना विजय पर्व मनाता रहा। होरी निरन्तर संघर्षरत रहा। इस कारण भारत का जितना वास्तविक चित्र इस कृति में अंकित हुआ है वैसा अन्य किसी उपन्यास में नहीं उपलब्ध होता । जीवन संघर्ष से निरन्तर हार मानते रहने के उपरान्त जब

वह अपनी छोटी कन्या रूपा का विवाह निर्धनता के कारण रूपये कर लेकर प्रौढ़ आयु के विधुर से करता है तो उसके सारे जीवन सम्बन्धी विश्वास डिग जाते हैं। उस समय "उसका सिर ऊपर न उठ सका मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गड्ढे में गिर पड़ा है। और गिरता चला जाता है। आज तीस साल से जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है जो आता है उसके मुहँ पर थूक जाता है। वह चिल्ला–चिल्ला कर कह रहा है, "भाईयो मैं दया का पात्र हूँ, मैंने नहीं जाना कि लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीरकर देखो इसमें कितना प्राण रह गया है। कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो कभी तूने विश्राम के दर्शन किये ? कभी तू छाँह में बैठा। उस पर यह अपमान। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था मानो टूक–टूक उड़ गया हो।"

गोदान आरम्भ से अन्त तक समस्त यथार्थवादी रचना है। किन्तु यह यथार्थवाद भी निरूद्देश्य, नग्न या प्रेरणाहीन यथार्थवाद नहीं है यह कल्पना–विहीन कोरा यथार्थवाद भी नहीं है। "गोदान" में जीवन की आदर्श प्रेरणाएँ बराबर पाई जाती हैं। अत गोदान को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचना कहा जा सकता है।

गोदान पूर्ण रूप से यथार्थवादी है। इस उपन्यास में होरी के जीवन की विडम्बना दिखाना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य है। होरी एक किसान है– "भारतीय किसान ! गाय की लालसा भारतीय किसान की स्वाभाविक लालसा है। वह गाय को माता कहता है। "गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे–सबेरे गऊ के दर्शन हो जाये तो क्या कहना।" जीवन की यही विडम्बना है। वह आजीवन अपनी यह छोटी सी साध ही पूरी नहीं कर पाता। मरते–मरते उसी होरी से, जो जीवन में गाय को अपने द्वार पर नहीं बाँध सका –अपनी लालसा को मन में ही लेकर मर गया, गोदान कराने की बात कही जाती है। मृत्यु की छाया से ग्रस्त होरी की अधूरी साधना का चित्र प्रेमचन्द ने बहुत सुन्दरता से प्रस्तुत किया है। सारी उमर जीवन से संघर्ष करता हुआ जो बेटे और नन्हे से पोते के लिए एक गाय भी नहीं जुटा सका, उसी की अवचेतना धनिया को न पहचानकर कहती है – तुम आ गये गोबर, मैने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है देखो। मृत्यु का यह कितना मनोवैज्ञानिक चित्र है। "धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पाँव आते ही देखा था, आँधी की तरह आते भी देखा था।" जब होरी की चेतना लोटी और धनिया को पहचाना, तो क्षीण स्वर में बोला–मेरा कहा सुना माफ करना धनिया अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गयी।"

जीवन की कितनी बड़ी ट्रेजेड़ी है ! कई "आवाजें आई, हाँ, गो–दान करा दो, अब यही समय है।" और धनिया ने आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने लाकर पति के ठण्डे हाथ में रख, सामने खड़े दातादीन को दे दिये और कहा– "महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे है, यही इनका गोदान है।" और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

यह है "गोदान" की अन्तिम झाँकी। आरम्भ होता है लालसा से। मध्य है लालसा। पूर्ति का असफल और करूण संघर्ष। यह लालसा भी कितनी तुच्छ है। किसी बड़े महल बनाने की, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताने

की अथवा पूँजीपति बनने की लालसा नहीं है। एक गरीब किसान की एक स्वाभाविक लालसा है, जिसके परिवार को घी–दूध अंजन लगाने को नहीं मिलता, दवा–दारू के अभाव में जिसके तीन–तीन बच्चे जीवन की आँख खोलते ही मृत्यु के अंक में चले जाते हैं। होरी अपने मालिक की चिरौरी करने चला है, क्योंकि इसी खुशामद के प्रसाद से "अब तक उसकी जान बची हुई है। जब दूसरों के पावों तले गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।" जाते समय रास्ते में पगडण्डी के दोनों ओर हरियाली देखकर उसने मन में कहा – भगवान कहीं गौं से बरखा कर दे और डांडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। ..... उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार–पांच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस–तरसकर रह जाता है। ..... साल भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाय। बछुवे भी अच्छे बैल निकलेगें।..... फिर, गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे–सबेरे गऊ के दर्शन हो जायँ, तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आयेगा।

और सारी कथा गवाह है कि यह साध कभी पूरी नहीं होती। पूरा करने का एक बार का प्रयत्न हजार मुसीबतें दे गया। ज़मींदार, उसका कारिन्दा, पटवारी, पुलिस, महाजन, मिल का मालिक आदि न जाने कितने शोषक उसे उबरने ही नहीं देते। जिसे दो जून पेट–भर खाने को भी न मिले, जिसकी पूरी फसल खेत में ही बंट जाय, घर में एक दाना भी आकर न पड़े, जो कोड़ी–कोड़ी के लिए दूसरों का मोहताज हो, वह अपनी गाय की साध कैसे पूरी करता ! अन्त में यही लालसा लेकर बल्कि कहना चाहिए इसी लालसा की पूर्ति के लिए होरी अपनी जान दे देता है।

गाय की लालसा वास्तव में एक प्रतीक है। एक और तो यह कृषक की स्वाभाविक लालसा है, दूसरी ओर लेखक का उद्देश्य इसमें यह बताना भी है कि अनेक संघर्षो के बाद इतनी तुच्छ लालसा भी जिस किसान की अधूरी रह जाती है, उसके जीवन की इससे करुण ट्रेजेडी और क्या हो सकती है। प्रेमचन्द जी ने स्पष्ट कहा है– हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या ज़मीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हे से हृदय में कैसे समातीं। "इस लालसा को पूरा करने का विचार गोबर के मन में भी आता है। जब गोबर झुनिया को घर छोड़कर शहर की ओर जाता है तो वह संकल्प करता है कि शहर में खूब कमायेगा, मजदूरी करेगा। ''सबसे पहले वह एक पछाई गाय लायेगा, जो चार–पांच सेर दूध देगी और दादा (होरी) से कहेगा, तुम गऊ माता की सेवा करो। इससे तुम्हारा लोक भी बनेगा और परलोक भी।'' इस प्रकार गोबर भी पिता की गाय की लालसा पूरी करने की सोचता है, पर कर नहीं पाता। अन्त में ठेकेदार की मजदूरी करते हुए भी होरी अपने पोते मगंल के लिए गाय लेने की सोचता है। रूपा अपनी ससुराल में पहुँचकर पूर्व–स्मृति में मग्न है – उसके दादा की यह लालसा (गाय की) कभी पूरी न हुई। जिस दिन वह गाय आयी थी, उन्हें कितना उछाला हुआ था– तब से फिर उन्हें इतनी कमाई ही न हुई कि कोई दूसरी गाय लाते, पर वह जानती थी, आज भी वह लालसा होरी के मन में उतनी ही सजग है। अतः गाय की लालसा और उसकी करूण अपूर्ति उपन्यास की मूल संवेदना बनी हुई है।

'गोदान' नामकरण से ही कितना यथार्थ विवेचन है यह। लेखक का उद्देश्य, मुख्य–कथा का मर्म और उपन्यास की मूल संवेदना स्पष्ट हो जाती है। यह नाम अत्यन्त उपयुक्त एवं सार्थक है जैसा कि पहले कहा जा चुका है, "गोदान" नामकरण व्यंजनापूर्ण भी है। मरते हुए होरी से गोदान की मांग एक बड़ा सामाजिक व्यंग्य है। फिर यह दान भी दातादीन पण्डित लेता है जो सारी उमर होरी का शोषण करता रहा। धनिया के घर में केवल बीस आने थे और वह उन्हें ही दातादीन को देकर होरी का गोदान करा देती है।

"गोदान" में क्या घटनाओं की दृष्टि से, क्या चरित्र और क्या उद्देश्य की दृष्टि से सर्वत्र यथार्थवादी प्रवृत्ति पाई जाती है। प्रेमचन्द ने समाज की पंकिलता के यथार्थ चित्रण में कोई दुराव छिपाव की नीति नहीं अपनाई। नोहरी का प्रसंग, मालती–खन्ना का रोमांस, धर्म का ढकोसला, अनेक प्रकार का शोषण आदि सब प्रसंग और घटनायें यथार्थवादी यथातथ्य शैली में प्रस्तुत की गई हैं। किन्तु प्रेमचन्द अपनी प्रतिक्रिया सर्वत्र प्रकट करते जाते हैं। इन सब बुराइयों के प्रति भर्त्सना प्रकट करते हुए उन्होंने पाठक की घृणा को ही जगाया है। इस प्रकार किसी भी कुत्सित घटना से पाठक का मानसिक स्खलन नहीं होता । सिलिया और मथुरा का प्रसंग लीजिए सिलिया सोना को अपनी खुशखबरी सुनाने, रात के समय उनके घर जाती है। अँधेरे में, घर के आंगन, में, मथुरा सिलिया से मिलता है। उसकी मानवीय दुर्बलता का प्रेमचन्द ने बहुत ही यथार्थ वर्णन किया है। नग्न यथार्थवादी लेखक होता तो यहाँ अपना संयम खो बैठता किन्तु प्रेमचन्द ने मानव–मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण करके भी यथार्थ के दंश को बचा लिया, पंकिलता में नहीं बहे और यही बचाव प्रेमचन्द के यथार्थवाद को महान बनाता है। प्रेमचन्द पाठक का मानसिक पतन नहीं चाहते। यहीं प्रेमचन्द की आदर्शवादी दृष्टि स्पष्ट हो जाती है। इसे आदर्शवादी दृष्टि भी इसीलिए कहा जाता है कि पाठक इस यथार्थ से भी स्वस्थ प्रेरणा ग्रहण करता है। इस प्रकार प्रेमचन्द का यथार्थवाद कहीं भी नग्न, अरूचिकर अश्लील या अभद्र नहीं बन पाया। होरी किसान की कहानी पूर्णतया यथार्थ करूण–कहानी है। प्रेमचन्द उसे लुटते–पिटते–मरते छोड़ देते हैं, किसी सुधारक नेता की कल्पना नहीं करते। वह अपनी जीवन–डोंगी को स्वयं खेता है। हम पहले कह चुके हैं कि उद्देश्य की दृष्टि से प्रेमचन्द "गोदान" से सर्वथा यथार्थवादी रहे हैं। अपने युग की वास्तविक स्थिति का ही उन्होंने चित्रण किया है वह चाहते तो गोबर के "क्रान्तिकारी रूप की कल्पना आसानी से कर सकते थे, उन्होंने इसका कुछ आभास भी देना चाहा था, पर एक वस्तुवादी कलाकार के नाते उन्होंने ईमानदारी से इस कल्पना को भी यथार्थ से आगे नहीं बढ़ाया। अतः घटनाओं और प्रसंगों की दृष्टि से ही नहीं, अपितु उद्देश्य की दृष्टि से भी प्रेमचन्द यहाँ पिछला आदर्शवादी दृष्टिकोण बिल्कुल छोड़ चुके हैं।

पात्रों के चरित्र–चित्रण की दृष्टि से भी यह तथ्य सामने आता है। प्रेमचन्द के चरित्र–चित्रण पर विचार करते हुए हम स्पष्ट कह सकते हैं कि प्रेमचन्द की चरित्र–सृष्टि सर्वथा यथार्थ है। उन्होंने न तो किसी देवता की कल्पना की है, न दानव की। सभी पात्र यथार्थ मानव हैं– अपनी दुर्बलताओं और सबलताओं, अपने "कु" और "सु" से मण्डित इसी धरती के यथार्थ मानव। हम पूछते हैं क्या होरी जैसे दरिद्र किसान को नायक बना कर कोई आदर्शवादी लेखक अपनी रचना कर सकता है। होरी का नायकत्व प्राचीन काल से चली आ रही महान् (Sublime) की भावना के सर्वथा विपरीत नहीं तो और क्या है ? प्रेमचन्द ने सभी पात्रों

का यथार्थ चरित्र–चित्रण किया है। मातादीन, मालती आदि के परिवर्तन में भी अत्यन्त यथार्थता है। यद्यपि प्रेमचन्द की चरित्र–सृष्टि तटस्थता पूर्ण शैली में निर्मित हुई है, प्रेमचन्द ने किसी पात्र के प्रति पक्षपात नहीं किया, अपने आदर्श आदि से आग्रह से किसी को मनमाने नहीं चलाया, तथापि यह चरित्र–चित्रण ऐसा है, जिससे अच्छे पात्रों के चरित्रों से प्रेरणा मिलती है और बुरों की बुराईयों से घृणा जागती है। यही प्रेमचन्द के यथार्थ चरित्र–चित्रण का बल है। यही उनकी आदर्शवादिता है।

13.4. सारांश

अतः गोदान में प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं, स्वस्थ प्रेरणापूर्ण यथार्थवादी हैं। उनकी औपन्यासिक चेतना के यथार्थोन्मुख आदर्शवादी से आदर्शोन्मुख यथार्थवादी में परिणति का स्पष्ट प्रमाण "गोदान" है।

13.5 कठिन शब्द

1. दुर्बलता
2. सबलता
3. आग्रह
4. तटस्थता
5. शैली
6. यथार्थ
7. पंकिलता
8. व्यजनापूर्ण
9. संवेदना
10. लालसा

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'गोदान' में अभिव्यक्त आदर्शवाद पर प्रकाश डालें।

2. 'गोदान' में चित्रित यथार्थवाद पर प्रकाश डालें।

3. 'गोदान' उपन्यास में आदर्श और यथार्थ का चित्रण हुआ है – इस कथन से आप कहा तक सहमत हैं स्पष्ट कीजिए।

13.7 पठनीय पुस्तकें

– गोदान – प्रेमचन्द

– कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रज़ा।

– प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय

– गोदान का महत्व – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र

– प्रेमचन्द – सं– सत्येद्रं

– प्रेमचन्द के साहित्य में हाशिए का समाज– एक ऐहिासिक परिप्रेक्ष्य – शुभ्रा सिंह

———— 0 ————

गोदान : कृषक जीवन का महाकाव्य

14.0 रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2. प्रस्तावना

14.3 गोदान : कृषक जीवन का महाकाव्य

2.3.1 किसान की शोचनीय आर्थिक स्थिति

14.4. गोदान में शोषण के विविध रूप

14.4.1. सामन्तीय शोषण

14.4.2. पूंजीवादी शोषण का चित्रण

14.4.3. पुलिस द्वारा शोषण

14.4.4. गांव के पंचों द्वारा शोषण

14.4.5. महाजनी वर्ग द्वारा शोषण

14.4.6. असन्तोष, विद्रोह और वर्ग चेतना

14.4.7. दलित वर्ग का संघर्ष

14.5. सारांश

14.6 कठिन शब्द

14.7. अभ्यासार्थ प्रश्न

14.8. पठनीय पुस्तकें

14.1. उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरातं आप जानेंगे –

– गोदान कृषक जीवन का महाकाव्य है।

– गोदान में कृषक जीवन का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है।

– होरी के माध्यम से लेखक भारतीय किसान की दुर्दशा का वर्णन करता है।

– उपन्यासकार का उद्देश्य कृषक जीवन की आर्थिक विषमता और वर्ग चेतना को प्रस्तुत करना है।

14.2. प्रस्तावना

प्रेमचन्द के उपन्यास– साहित्य में ही नहीं, हिन्दी के समस्त उपन्यासों में गोदान का अन्यतम महत्व है। भारतीय ग्राम्य जीवन का उसे प्रभावित करने वाले नागरिक जीवन के संदर्भ में इतना व्यापक चित्रण अन्य किसी औपन्यासिक रचना में नहीं हुआ है। गोदान में प्रेमचन्द ने होरी के रूप में भारतीय कृषक जीवन का प्रतीकात्मक चित्रण करते हुए जो महान विडम्बनात्मक परिणति उपस्थित की है, वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में बेजोड़ है। कृषक जीवन से जुड़ी समस्याओं का विवेचन इस प्रकार किया गया है :–

14.3 गोदानः कृषक जीवन का महाकाव्य

किसान की शोचनीय आर्थिक स्थिति का चित्रण गोदान में हुआ है उपन्यास में होरी जैसे सम्पन्न और प्रतिष्ठित किसान की विपन्नता कितनी मर्मस्पर्शी है यह निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है, "माघ के दिन थे। महावत लगी हुई थी। घटाटोप अन्धेरा छाया हुआ था। एक तो जाड़े की रात दूसरे माघ की वर्षा। मौत का सन्नाटा छाया हुआ था। अन्धेरा तक न सूझता था। होरी भोजन करके मुनिया के मटर के खेत की मेंड पर अपनी मंडैया पर लेटा हुआ था। चाहता था कि शीत को भूल जाए और सोता रहे। लेकिन तार–तार कम्बल और फटी हुई मिर्जई और शीत के झोंकों, गीली पुआल, इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद में साहस न था। आज तम्बाकू भी नहीं मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा लाया था पर शीत में वह भी बुझ गया। बेवाय फटे पैरों को पेट में डालकर, हाथों को जांघों के बीच में दबा कर और कम्बल में मुँह छिपाकर अपनी ही गर्म सासों से अपने को गर्म करने का प्रयास कर रहा था। पांच वर्ष हुए यह मिर्जई बनवायी थी। धनिया ने एक प्रकार से यह जबरदस्ती बनवायी थी, वही जब एक बार काबुली से कपड़े लिए थे, जिसके पीछे कितनी सांसत हुई। कितनी गालियाँ खानी पड़ी और यह कम्बल तो उसके जन्म से भी पहले का है। बचपन में अपने बाप के साथ इसी में सोता था। जवानी में गोबर को लेकर इसी कम्बल में उसके जाड़े कटे थे और बुढ़ापे में आज वही कम्बल उसका साथी है पर अब वह भोजन को चबाने वाले दाँत ही नहीं, दुखने वाले दाँत हैं। जीवन में तो ऐसा कोई दिन ही नहीं आया कि लगान और महाजन को

देकर कभी कुछ बचा हो।" आर्थिक विपन्नता ने भारतीय कृषक के जीवन को कितनी विषम स्थिति तक पहुँचा दिया है, यह उक्त विवेचन से दृष्टव्य है।

निर्धनता एवं विपन्नता का सम्बन्ध कृषकों के ऊपर होने वाले विविध शोषक वर्गों के अत्याचार से भी है। ज़मीदार तत्कालीन शासन व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी थे। पुलिस, अदालत एवं सरकारी कर्मचारी सभी उनके शुभेच्छु थे। ज़मींदारों का स्वार्थ दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता था। ज़मींदार राय साहब विचारों से प्रगतिशील होकर भी कृषकों का हित न देखकर स्वार्थ सिद्धि में रत थे। मेहता से पूँजीवाद की निन्दा करते हुए राय साहब कहते हैं –किसी को भी दूसरों के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं हैं। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमें कुछ लोग मौज करें अधिक लोग पिसें और खपें कभी सुखद नहीं हो सकती। "मेहता राय साहब के विचार और व्यवहार में अन्तर देखते हुए कहता है – "आपकी जबान में जितनी बुद्धि है काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती।" जागीरदारी सभ्यता का यह प्रतिनिधि बातें बनाना खूब जानता है। उसके तर्क की भित्ति स्वार्थ है और धर्म एवं राजनीति को वह अपने स्वार्थ–साधन का यन्त्र बनाता है।

गोदान में वीभत्स रस की प्रचुर सामग्री पाई जाती है। इसमें घृणा के अनेक आलम्बनों का प्रसार है। यद्यपि इस रचना का प्रधान रस करूण ही है, यद्यपि बीज भाव घृणा ही है। महाजनी शोषण, जमींदारी शोषण, धार्मिक शोषण और वर्ग विषमता की यह मुँह बोलती तस्वीर है। "गोदान" कृषक–जीवन की अत्यन्त करूण कहानी है। करूण परिस्थितियाँ अधिकतर शोषण, अत्याचार और अन्याय का परिणाम हैं.। अतः इस उपन्यास में यद्यपि प्रधान रस करूण ही है किन्तु उसके साथ–साथ वीभत्स रस की व्याप्ति भी है। वीभत्स रस और करूण रस का सह–अस्तित्व और उदात्त प्रसार ही "गोदान" की बड़ी शक्ति है। वीभत्स रस के अनेक प्रकार के आलम्बन प्रकट हुए हैं। गरीबों का शोषण करने वाले, बेगार लेने वाले, नज़र–नज़राने, डाँड तथा अपने धार्मिक या सामाजिक विनोद के लिए गरीबों से जबरदस्ती चँदा लेने वाले रायसाहब अमरपालसिंह, उनके बेईमान, आचारभ्रष्ट और गरीब किसानों पर अत्याचार करने वाले, लगान–वसूली की रसीद न देकर दुबारा वसूल करने वाले, बेगार लेने वाले और दरपर्दा व्यभिचार करने वाले नोखेराम–जैसे कारिन्दे, मगरू शाह पंडित दातादीन तथा झिंगुरीसिह जैसे निर्दयी सूदखोर महाजन, पटेश्वरी जैसे स्वार्थी और लोभी पटवारी, परम्परा–पंथी अन्यायी और स्वार्थी पंच, रिश्वतखोर, स्वार्थी और अन्यायी पुलिस दारोगा, धर्म की ओट में शोषण करने वाले चालबाज़ तथा छुआछूत ऊँच–नीच, और जात–पात का भेद रखने वाले स्वार्थी पंडित दातादीन और उनके लम्पट पुत्र मातादीन किसानों की ऊख कम तोलने वाले, मजदूरों का शोषण करने वाले और रसिक लम्पट बेईमान मिल मालिक खन्ना, तिलकधारी, ढोंगी और लम्पट ब्राह्मण, कश्मीरी गपड्ड की स्वछन्द लड़कियाँ, ओंकारनाथ जैसे–स्वार्थी और दुर्बल–प्रकृति पत्रकार आदि अनेक पात्र घृणा के पूर्व आलम्बन हैं।

14.4 "गोदान" में शोषण के विविध रूप

14.4.1. सामन्तीय शोषण

ज़मींदारी पद्धति द्वारा शोषण। इसके अन्तर्गत रायसाहब अमरपालसिंह जैसे ज़मींदार और उनके कारिन्दे आते हैं। रायसाहब अन्यायपूर्वक लगान वसूल करता है, बेदखल कराता है और असामियों को तंग करता है उनसे बेगार लेता है, डाँड, नज़र–नज़राने वसूल करता है। उसका एक वीभत्स चित्र देखिये : रायसाहब अपने धार्मिक और सामाजिक ढोंग और विनोद के लिए धनुष–यज्ञ की तैयारियाँ करा रहे हैं। अपने असामियों से बेगार ले रहे है। एक चपरासी आकर कहता है – "सरकार बेगारों ने काम करने से इन्कार कर दिया है। कहते हैं, जब तक हमें खाने को न मिलेगा, हम काम न करेंगे।" "रायसाहब के माथे पर बल पड़ गये। आँखें निकालकर बोले – "उन दुष्टों को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया गया, तो आज यह नई बात क्यों ? एक आने रोज के हिसाब से मजदूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है, और इस मजदूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।"

यह अन्यायी, ढोंगी ज़मींदार जो अभी–अभी होरी के आगे नीति और धर्म की बातें कर रहा था, एकदम कैसा बदल गया। ये ज़मींदार जो अपनी झूठी शान रखने के लिए ज़मीन–आसमान के कुलाबे मिलाते हैं, कभी राष्ट्रवादी बनते हैं और कभी अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए राज–भक्त, जिनका दान–धर्म कोरा पाखण्ड है, गरीबों का खून चूस–चूस कर जो अपने लम्बे–चौड़े परोपजीवी कुनबे को अन्याय से पालता है, जो पत्र–पत्रिकाओं का मुँह बन्द रखने के लिए पँचगुणा चन्दा देता है, हमारी तीव्र घृणा जगाता है। राजा सूर्य प्रतापसिंह भी ऐसे ही धूर्त हैं। मेहता उनके बारे में कहता है – "लखनऊ में आप किसी दुकानदार, किसी अहलकार, किसी राहगीर से पूछिये उनका नाम सुनकर गालियाँ देगा।"

और यह नोखेराम ! कारिन्दा है। "वेतन तो दो रुपये से ज्यादा न था, पर एक हजार साल की ऊपर की आमदनी थी, सैंकड़ों आदमियों पर हुकूमत, चार–चार प्यादे हाजिर, बेगार में सारा काम हो जाता था।" बेईमान और धूर्त ने लगान का सारा हिसाब चुकता कर दिया। पर यह कारिन्दा दो साल की बाकी निकालकर प्यादा भेज देता है। क्योंकि रसीद तो उसने दी नहीं थी, क्या सबूत है कि लगान चुका दिया ? होरी सन्नाटे में आ जाता है। गोबर गर्म होकर नोखेराम के पास गया और सबके सामने पूछा – "यह क्या बात है कारिन्दा साहब, कि आपको दादा ने हाल तक का लगान चुकता कर दिया, और आप अभी दो साल की बाकी निकाल रहे है ? यह ? कैसा गोलमाल है ? नोखेराम जब रौब दिखाता है तो वह फटकारता हुआ साफ कह देता है– "..... इसी गाँव से एक सौ सहादतें दिला कर साबित कर दूँगा कि तुम रसीद नहीं देते। सीधे–सादे किसान हैं, कुछ बोलते नहीं, तो तुमने समझ लिया किसान काठ के उल्लू हैं। रायसाहब वहीं रहते हो !" नोखेराम सटपटा गए। इन नोखेराम की सीरत के साथ ही लगे हाथ इनकी सूरत भी देख लीजिए – "नौखेराम नाटे–मोटे, खल्वाट, लम्बी नाक और छोटी–छोटी आँखों वाले साँवले आदमी थे। बड़ा–सा पग्गड़ बाँधते, नीचा कुरता पहनते। उन्हें तेल की मालिश कराने का बड़ा आनंद आता था, इसीलिए उनके कपड़े हमेशा मैले, चीकट रहते थे।" मानो मन की मैल अन्दर न समाकर बाहर पुती जा रही हो।

यह पहले दर्जे का दुश्चरित्र है। भोला की पत्नी लोहरी को वह रख ही लेता है। गाँव का पंच बनकर गरीबों को डाँटता है, रिश्वत में दलाली खाता है और महाजनी करता है सो अलग।

महाजनी शोषण का भी बड़ा ही सजीव चित्रण "गोदान" में मिलता है। महाजनी संस्कृति का विकास हो रहा है। जिसके पास चार पैसे हुए, वही महाजन बन रहा है। गाँव में एक नहीं, कई महाजन हैं – मंगरूशाह दुलारी सुआइन, पं० दातादीन, बिसेसरशाह, पटेश्वरी पटवारी और नोखेराम सब महाजन बने हुए हैं। शहर के पूँजीपति सेठ का एजेण्ट बना हुआ झिंगुरीसिंह भी गाँव में विद्यमान है। ये लोग किसान को भारी सूद पर कर्ज देते हैं। कर्ज देते वक्त दस के बदले पांच हाथ पर रखते हैं : कागज, लिखाई, दस्तूरी, नजर सब पहले ही काट लेते हैं और ब्याज की रकम दिनों–दिन बढ़ती जाती है। बीस के एक सौ साठ हो जाते हैं। पचास के तीन सौ ! किसान सब का ऋणी बन जाता है। उसकी ऊख तैयार होती है। ""झिगुंरीसिंह के सभी रिनियाँ थे, और सबकी यह इच्छा थी कि झिंगुरीसिह के हाथ रुपये न पड़ने पायें, नहीं तो वह सब का सब हजम कर जायेगा और जब दूसरे दिन असामी फिर रूपये मांगने जायेगा तो नया काग़ज नया नज़राना, नयी तहरीर। दूसरे दिन शोभा आकर बोली– "दादा कोई ऐसा उपाय करो कि झिंगुरीसिंह को हैजा हो जाये। ऐसे गिरे कि फिर न उठे।"

होरी ने मुस्काकर कहा – क्यों उसके बाल बच्चे नहीं हैं।

"उसके बाल–बच्चे को देखें कि अपने बाल बच्चों को देखें ? वह तो दो–दो मेहरियों को आराम से रखता है, यहाँ तो एक को रूखी रोटी भी मयस्सर नहीं, सारी जमा ले लेगा। एक पैसा भी घर न आने देगा। ..... न जाने इन महाजनों से कभी गला छूटेगा कि नहीं।

होरी बोला – इस जनम में तो कोई आसा नहीं है, भाई । हम राज नहीं चाहते, भोग–विलास नहीं चाहते, खाली मोटा–झोटा पहनना और मोटा–झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।""

कैसी विषमता है ! करूण और वीभत्स रस का कैसा सुन्दर सह–अस्तित्व है ! निपट दरिद्र किसान के आलम्बनन्त से करूण–रस और शोषक महाजन से बीभत्स रस का कैसा सुन्दर संचार हो रहा है। इन महाजनों से गला छुड़ाना मुश्किल है। शोभा कहती है – "पैसे वाले उधार देकर न दें, तो सूद कहाँ से पायें। एक हमारे ऊपर दावा करता है, तो दूसरा हमें कुछ कम सूद पर रुपये उधार देकर अपने जाल में फँसा देता है।"

महाजनों ने तो ऊख कटती देखी, तो पेट में चूहे छोड़े। एक तरफ से दुलारी दोड़ी, दूसरी तरफ से मंगरूशाह, तीसरी ओर से दातादीन, पटेश्वरी, और झिंगुरी के प्यारे। "मंगरूशाह होरी को डांट कर कहते हैं – पहले हमारे रुपये दे दो होरी, तब ऊख काटो। .... यह न समझना कि तुम मेरे रुपये हज़म कर आओगे, मैं तुम्हारे मुर्दे से भी वसूल कर लूंगा।"

प्रेमचन्द ने इन महाजनों की काली करतूत ही प्रकट नहीं की, इनकी काली भौंदी आकृति के भी चित्र दिये है, जिनसे इनका घिनौना रूप और भी प्रकट हो जाता है। मंगरूशाह का चित्र है – "काला रंग तोंद कमर के नीचे लटकती हुई दो बड़े–बड़े दांत सामने जैसे काट खाने को निकले हुए, सिर पर टोपी, गले में चादर, उम्र अभी पचास से ज्यादा नहीं, पर लाठी के सहारे चलते थे। गठिया का मरज हो गया था। खाँसी भी आती थी।"

शोभा मंगरूशाह से कहता है – "पचास रुपये के तीन सौ रुपये लेते तुम्हे जरा भी शर्म नहीं आती ?"

किसान की ऊख मिल में पहुँची,। तौल शुरू होते ही झिंगुरीसिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिए। हर एक की ऊख तौलते थे, दाम का पुरजा लेते थे, खजानची से रुपये वसूल करते थे और अपना पावना काटकर असामी को दे देते थे। असामी कितना ही रोये, चीखे, किसी की न सुनते थे।"

होरी को एक सौ बीस रुपये मिले। उनमें से झिंगुरीसिंह ने अपने पूरे रुपये सूद–समेत काटकर कोई पचास रुपये होरी के हवाले किये।" ये महाजन तो ताक में थे ही, होरी "बाहर निकला कि नोखेराम ने ललकारा। होरी ने जाकर पचासों रुपये उनके हाथ पर रख दिये और बिना कुछ कहे जल्दी से भाग गया। उसका सिर चक्कर खा रहा था। शोभा को भी इतने ही रुपये मिले थे। वह बाहर निकला, तो पटेश्वरी ने घेरा। शोभा ने लाख कहा–" मेरे पास अब जो कुछ बचा है, वह बाल–बच्चों के लिए है। पर पटेश्वरी को इससे क्या ? धमकी देकर तुरन्त उगलवा लेता है। किसान की सारे साल की मेहनत का उसे यही फल मिला कि उसके पास एक कोड़ी भी नहीं रही। सारा साल फिर इन महाजनों से ऋण लेकर, फिर–फिर कागज़ के तहरीर के, कटौती, के, नज़र नजराने के रूपये कटवा कर सौ के पचास पल्ले पाओ और तिस पर सवाया सूद दो। यही चक्कर हर साल चलता है। गिरधर के शब्द कितने मार्मिक हैं, व्यथा और घृणा से लबालब भरे हुए – "झिंगुरी ने सारे का सारा ले लिया, होरी काका ! चबैना को भी एक पैसा न छोड़ा। हत्यारा कहीं का ! रोया, गिड़गिड़ाया पर इस पापी को दया न आई ..... एक इकन्नी मुहँ में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली सोचा साल–भर पसीना गारा है, तो एक दिन ताड़ी तो पी लूँ। ..... बीस लिए थे, उसके एक सौ साठ भरे कुछ हद है। कितनी लूट है। बिसेसरशाह आने रुपये से कम सूद नहीं लेता।

और यह महाजन दुश्चरित्र भी है। मातादीन झुनिया से मीठी–मीठी बातें करने के लिए किसी–न–किसी बहाने रोज घर आता है। नोखेराम व्यभिचार करता है। नोहरी को उसने एक तरह अपनी रखैल बना लिया है। पटेश्वरी अपनी विधवा कहारिन को रखे हुए है।

दातादीन ने बैल के लिए तीस रूपये होरी को उधार दिये थे। अब दो सौ माँगता है। गोबर कहता है – "मुझे खूब याद है, तुमने बैल के लिए तीस रूपये दिये थे। उसके सौ हुए। और अब सौ के दौ सौ हो गए। इसी तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट–लूट कर मजूर बना डाला और आप उनकी जमीन के मालिक बन बैठे। तीस के दो सौ। कुछ हद है। और जब वह कहता है, एक रूपया सैंकड़ा सूद के हिसाब

से छाछठ बनते हैं। "उसके सत्तर ले लो। इससे बेसी में एक कौड़ी न दूँगा।" तो यह महाजन धर्म की दुहाई देता है, क्योंकि वह भगवान का विशेष कृपा–पात्र है। वह कहता है – "यह समझ लो, मैं ब्राह्मण हूँ मेरे रूपये हजम करके तुम चैन न पाओगे।"

यही नहीं, यह महाजन भी अपने रुपये के बल पर किसान से बेगार लेता है। दातादीन होरी से अपने खेत सेंतमेंत में जुतवाता है। होरी से बड़े रौब से कहता है – "क्या आज भी तुम काम करने न चलोगे होरी। अब तो तुम अच्छे हो गये ।" गोबर ने बीच में ही कहा, "अब यह तुम्हारी मजूरी न करेंगे। हमें अपनी ऊख भी तो बोनी हैं।"

दातादीन ने सूरती फांकते हुए कहा– "काम कैसे नहीं करेंगे, साल के बीच में काम नहीं छोड़ सकते।" गोबर ने जम्हाई लेकर कहा – "उन्होंने तुम्हारी गुलामी नहीं लिखी है। जब तक इच्छा थी, काम किया। अब इच्छा नहीं है, नहीं करेंगे कोई। इसमें जबरदस्ती नहीं कर सकता।"

"तो होरी काम नहीं करोगे ?"

"ना ।"

"तो हमारे रूपए सूद–समेत दे दो .....।" गोबर फिर फटकारता हुआ कहता है – "अच्छी दिल्लगी है। किसी को सौ रूपए उधार दे दिये और उससे सूद में जिन्दगी – भर लेते रहो। मूल ज्यों–का–त्यों। यह महाजनी नहीं है, खून चूसना है।"

हास्य–युक्त घृणा का भव्य रूप देखना हो तो होली के अवसर पर गोबर की चौपाल में हुई गिरधर की नकल पढ़िये। महाजन का इससे बढ़िया मजाक और क्या होगा ? ठाकुर झिंगुरीसिंह की नकल हुई, जिसमें ठाकुर ने दस रूपए का दस्तावेज लिखाकर पांच रूपए दिये, शेष नजराने और तहरीर और दस्तूरी और ब्याज में काट लिये। किसान खीझ कर व्यंग्य से कहता है – "अब यह पांच भी मेरी ओर से रख लीजिये।"

"कैसा पागल है।"

"नहीं सरकार एक रूपया छोटी ठकुराईन का नजराना है, एक रूपया बड़ी ठकुराईन का। एक रूपया छोटी ठकुराईन के पान खाने का, एक बड़ी ठकराईन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपके क्रिया करम के लिए।" बढ़िया नकल है ! अन्तिम शब्दों में घृणा पूर्ण स्फुट हो गई है।

14.4.2. पूंजीवादी शोषण का चित्रण

पूंजीवादी शोषण भी बढ़ रहा है। शहर के पूँजीपति खन्ना ने महाजनी कोठी खोल रखी है। उन्हीं का एजेण्ट गाँव में झिंगुरीसिंह है। ये किसान को उधार देते हैं और फसल अपने पास मँगा कर अपने रूपये

ब्याज–समेत काट लेते हैं। महाजनी अलग और बेईमानी अलग। खन्ना की मिल में किसान की ऊख तुलती है। वह स्वयं मानता है– आप नहीं जानते मिस्टर मेहता, मैंने अपने सिद्धांतों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें दी हैं, कितनी रिश्वतें ली हैं। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रखे, कैसे नकली बाट रखे।" यह मिल–मालिक मजदूरों का भी शोषण करता है। आप एक हजार रूपया महीना वेतन लेता है, कमीशन अलग शेयर का लाभ अलग। पर मजदूरों की मजदूरी घटा देता है। वह सोचता है कि वह मिल का संचालन भी तो करता है। मजूर केवल हाथ से काम करते हैं। डायरेक्टर अपनी बुद्धि से, विद्या से, प्रतिभा से काम करता है। .....दोनों शक्तियों का मोल बराबर तो नहीं हो सकता। मजदूरों को यह संतोष क्यों नहीं होता कि यह मंदी का समय है, और चारों तरफ बेकारी फैली रहने के कारण आदमी सस्ते हो गए हैं। उन्हें तो एक की जगह पौन भी मिले तो सन्तुष्ट रहना चाहिए।"" शोषक का कैसा तर्क हैं।

14.4.3. पुलिस द्वारा शोषण

अब ब्रिटिश पुलिस–पद्धति के प्रतिनिधि रिश्वतखोर दारोगा की काली करतूत देखिए। हीरा ने ईर्ष्यावश होरी की गाय को जहर दे दिया और स्वयं भाग निकला। पुलिस दारोगा तो ऐसे अवसरों की तलाश में ही होते हैं, खबर पाते ही आ धमके । उन्हें तहकीकात से क्या गरज, अपना हलुआ–मांदा बनाने से ही मतलब है। दरोगा जी होरी से पैसा ऐंठने के लिए तलाशी लेने का बात बतलाते हैं। दब्बू होरी अपनी मरजाद रखना चाहता है। गाँव के पंच भी लूट–खसूट में दारोगा के साथ लग जाते हैं। वे होरी को कहते हैं – "निकालो जो कुछ देना है, यों गला न छूटेगा।" पर बेचारा होरी दे तो कहाँ से, जहर खाने को भी उसके पास एक पैसा नहीं। पंचों में सलाह होती है, और दारोगा को देने के लिए तीस रूपये होरी को उधार दे दिये जाते हैं। इनमें आधा हिस्सा चार पंचों का ठहरा। होरी ने रूपये लिए और अंगोछे के कोर में बाँध, प्रसन्न मुख आकर दारोगा की ओर चला।

"सहसा धनिया झपटकर आगे आई और अगोंछी एक झटके के साथ उसके हाथ से छीन ली। . ..... सारे रुपये जमीन पर बिखर गये। नागिन की तरह फुंकार कर बोली– ये रूपये कहाँ लिए जा रहा है, बता। भला चाहता है तो सब रूपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूँ। घर के पुरानी रात–दिन मरें और दाने–दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को न मयस्सर हो और अंजुली भर रूपये लेकर चला है इज्जत बचाने। ..... दारोगा तलासी ही तो लेगा। ले–ले जहाँ चाहे तलासी। एक तो सौ रूपये की गाय गयी, उस पर पलेथन ! वाह री तेरी इज्जत।"

"होरी खून का घूंट पी कर रह गया। सारा समूह थर्रा उठा। नेताओं के सिर झुक गये और दारोगा का मुँह जरा–सा निकल आया। अपने जीवन में उसे ऐसी लताड़ न मिली थी..... मगर दारोगा जी इतनी जल्दी हार मानने वाले न थे खिसियाकर बोले–मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस शैतान की खाला ने हीरा को फंसाने के लिए खुद गाय को ज़हर दिया है।

"धनिया हाथ मटका कर बोली – "हां, दे दिया। अपनी गाय थी, मार डाली। ..... तुम्हारे तहकीकात में यही निकलता है, तो यही लिखो। पहना मेरे हाथों में हथकडियाँ ! देख लिया तुम्हारा न्याय और अक्कल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है। दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात।"

नेताओं ने रूपये चुनकर उठा लिए थे और दारोगा जी को वहाँ से चलने का इशारा कर रहे थे। धनिया ने एक ठोकर और लगाई–जिसके रूपये हों, ले जाकर उसे दे दो, हमें किसी से उधार नहीं लेना है। और जो देना है उसी से लेना । मैं दमड़ी भी न दूंगी, चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक ही चढ़ना पड़े। हम बाकी चुकाने को पच्चीस रूपये मांगते थे, किसी ने न दिया। आज अंजुरी–भर रूपये ठनाठन निकाल दे दिये। मैं सब जानती हूँ। यहाँ तो बाँट–बखरा होने वाला था। सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद–ब्याज, डेढ़ी–सवाई, नजर–नज़राना, घूस–घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो।""

रिश्वतखोर दारोगा और गाँव के बेईमान पंचों की काली करतूतों का कैसा सजीव चित्र है। वीभत्स–रस की यहाँ पूर्ण व्यजंना हुई है। होरी की पत्नी धनिया काव्यगत आश्रय है, दारोगा और पंच आलम्बन। दारोगा और पंचों की सांठ–गांठ, दारोगा का धनिया को धमकाना आदि उद्दीपक कार्य है। धनिया का झपटना, हाथ मटका कर फटकारना आदि शारीरिक तथा धिक्कारपूर्ण कथन वाचिक अनुभाव है। अमर्ष, क्रोध, व्यंग्य, शोक, आंशका, साहस आदि संचारी भाव भी स्पष्ट हैं।

शहर के हाकिम, जब भी परोक्ष रूप से किसान का शोषण करते हैं। बेदखली इजाफा आदि की जो कारवाई ज़मीदार अपनी असामियों के विरूद्ध करता है, ये हाकिम रिश्वत खाकर, डालियाँ लेकर, झट किसानों के खिलाफ डिग्री दे देते हैं। "कब दावा दायर हुआ, कब डिग्री हुई, उसे (होरी को) बिल्कुल पता न चला। कुर्कअमीन उसकी ऊख नीलाम करने आया, तब उसे मालूम हुआ।" और बात–की–बात में सारे गाँव के देखते ऊख मंगरूशाह की हो गई। धनिया गालियाँ देती रह गई। वह कहती है – जो गाली खाने का काम करेगा, उसे गालियाँ मिलेगी ही। ..... मंगरूशाह ने मर मर कर जेठ की दुपहरी में सिंचाई और गोडाई की थी ?" रामसेवक ब्रिटिश नौकरशाही का पर्दाफाश करता हुआ कहता है। "थानेदार और कानिसिटिबल तो जैसे दामाद हैं। जब उनका दौरा – गाँव में हो जाये, किसानों का धर्म है कि वह उनका आदर–सत्कार करें, नज़र–न्याब दें, नहीं तो एक रिपोर्ट में गाँव का गाँव बँध जाये। कभी कानूनगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी, कभी जज, कभी कलक्टर, कभी कमिश्नर, किसान को उनके सामने हाथ बाँधे हाजिर रहना चाहिए। उनके लिए रसद–चारे, अण्डे, मुर्गी, दूध–घी का इन्तजाम करना चाहिए। ..... एक न एक हाकिम रोज नये बढ़ते जाते हैं। ..... न जाने किस किस महकमे के अफसर, हैं, नहर के अलग, जंगल के अलग, ताडी–शराब के अलग....।"

14.4.4. गाँव के पंचों द्वारा शोषण

गाँव के पंचों की काली करतूत का चित्र ऊपर दिया जा चुका है। बिरादरी का भय और पंच भी होरी का शोषण कर रहे हैं। ये पंच अपनी दलाली खाने के लोभ से जब–तब किसान को लुटवाते रहते हैं। पटेश्वरी ने मंगरू को सुझाया कि अगर इस वक्त होरी पर दावा कर दिया जाये, तो सब रूपये वसूल हो जायें।" और वह स्वयं नालिश करने का जिम्मा ले लेता है। अपनी दलाली के लोभ से उसे भड़का कर, उससे अदालत का खर्चा लेकर नालिश कर देता है। वह असामियों को आपस में लड़ाकर भी रकमें मारता है।

समाज की गली–सड़ी परम्पराओं और मर्यादाओं में जकड़ा हुआ किसान इन समाज वालों के शोषण का शिकार होता है। होरी का पुत्र गोबर अहीर की लड़की झुनिया से प्रेम करता है। वह उसे अपने घर ले आता है। होरी और धनिया झुनिया को आश्रय देते हैं। बस समाज की नाक कट गई, बिरादरी की मौत आ गई। झिंगुरीसिह पचास साल के हैं, दो–दो जवान पत्नियाँ रखे हुए हैं। पटेश्वरी अपनी विधवा कहारिन को दरपर्दा रखे हुए हैं। दातादीन ने जवानी में ऊधम मचाया था। अब उनका बेटा मातादीन सिलिया चमारिन को फँसाये हुए है। झिंगुरी ने ब्राह्मणी रख ली पर इन्हें कोई कुछ नहीं कहता। पैसे वाले हैं, पंच है ! पर यही पंच होरी पर सौ रूपये नकद और तीस मन अनाज डांड लगाते हैं। क्यों उसका बेटा झुनिया विधवा को लाया ? ऐसी कुलच्छनी को क्यों उन्होंने अपने घर में जगह दी ? और पंचों को परमेश्वर मानने वाला और बिरादरी के भूत से डरने वाला होरी टूट जाता है, पर पंचों का फैसला सिर–माथे पर लेता है। धनिया अवश्य अपनी घृणा और क्षोभ व्यक्त करती है– "पंचों, गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। ..... मेरा सराप तुमको भी जरूर– से जरूर लगेगा।" कैसी तीव्र घृणा फूट निकली है। इन समाज–बिरादरी के ठेकेदार धूर्त्त शोषकों के प्रति। धनिया की गालियाँ, सराप, फटकार–धिक्कार स्थान–स्थान पर इन समाज दोषी शक्तियों को घृणा के भिन्न–भिन्न आलम्बनों के प्रति हमारी तीव्र घृणा को पुष्ट करती है।

14.4.5. महाजनी वर्ग द्वारा शोषण

कृषकों के शोषण के लिए मात्र जमींदार ही उत्तरदायी नहीं वरन् पटवारी कानूनगो कारिन्दे एवं मुखिया भी सहायक थे। गोदान महाजनी शोषण की विशद् गाथा है। होरी जमींदार और महाजन में भेद करते हुए बताता है–"ज़मींदार तो एक है, मगर महाजन तीन–तीन हैं, सहुआइन अलग, मंगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग।" पांच साल हुए होरी ने मंगरू साह से साठ रूपये उधार लिये थे। बैल लाने के लिए। उसमें से वह साठ दे चुका था, परन्तु वह साठ रूपये अब भी बने हुए थे। दातादीन पंडित से उसने तीस रूपये लिए थे आलू बोने के लिए। दुर्भाग्य से आलू चोर खोद ले गए परन्तु उन तीस रूपयों से तीन सौ हो गए। दुलारी विधवा सहुआइन नोन–तेल–तमाखू की दुकान करती थी, इकन्नी रूपया का ब्याज लेती थी। इनके भी सौ रूपये हो गए थे। फसल होते ही माल सब महाजनों को तौल देना पड़ता और ब्याज फिर बढ़ने लगता।

महाजनों के अनेक प्रकार हैं। गाँव में एक महाजन झिगुरी सिंह भी थे जो शहर के एक बड़े महाजन

के एजेंट थे। उनके नीचे और कई आदमी थे जो आस–पास घूम–घूम कर लेन देन करते थे। झिगुरी सिंह बड़े हंसोड़ आदमी थे गाँव को अपनी सुसराल बनाए थे, औरतों से साली–सलहज का नाता जोड़े थे। नाटे, मोटे खल्वाट काले, लम्बी, नाक, बड़ी मूछों वाले झीगुरीसिंह रूपये देते समय पक्का कागज़ लिखाते, नजराना, दस्तूरी स्टाम्प की लिखाई लेते और एक साल का ब्याज पेशगी काट लेते थे। किसानों की ऊख तैयार थी और वे उसे एक मिल में बेचने जा रहे थे परन्तु जब बेचेंगे तब वहाँ झीगुरीसिंह भी होंगे और पैसे ले लेंगे। असामियों को फिर जरूरत पड़ेगी और फिर जब मांगने जायेंगे तो फिर नया कागज़ और नया नज़राना होगा। इस भय से आपस में सलाह कर रहे थे कि ऊख पहले बेच दी जाए, रूपया बाद में किसी दिन घात देखकर ले आवेंगे। किसान खेत में ऊख काटने गए, वैसे ही महाजनों का झुण्ड भी पहुँचा। रूपया वसूल करना था, इसलिए दुलारी सहुआइन बन ठनकर आई।" पाँव में मोटे–मोटे चांदी के कड़े पहने, कानों में सोने के झुमके आँखों में काजल लगा, बूढ़े यौवन को रंगे रंगाये।" यमदूत की तरह मंगरू शाह पहुँचे। काला रंग तोंद कमर के नीचे लटकती हुई दो बड़े–बड़े दांत खाने को निकले हुए। गठिया का मरज हो गया था। खांसी भी आती थी। कुकर्म का जैसे साक्षात् अवतार खड़ा हो।

मिल के फाटक पर झिगुरीसिंह ने आसन लगा रखा था। ऊख तौलकर खंजाची से रूपये वसूल करते और अपना पावना काट कर असामी को रूपये देते। होरी को 120 रूपये मिले। उसमें से झीगुरीसिंह ने अपने रूपये काटकर उसे पच्चीस रूपये दिए। वहाँ से चला तो बाहर नोखेराम मिले। होरी बाकी के रूपये उन्हें देकर वहाँ से भागा। शोभा और पटेश्वरी का झगड़ा हो गया। शोभा अभी रूपये देना न चाहता था, पटेश्वरी के धमकाने पर वह मुलायम पड़ा। होरी और शोभा को आगे गिरधर मिला। यहाँ की एक छोटी सी घटना महाजनी शोषण का ऐसा कटु चित्र खींचती है, जैसे कि दूसरा लेखक पोथे के पोथे रचने पर भी नहीं खींच सका। प्रेमचन्द के शब्द–चित्रण को देखिए। – "सामने से गिरधर ताड़ी पिए झूमता चला आ रहा था। दोनों को देखकर बोला–झिंगुरिया ने सारा–का–सारा ले लिया होरी काका। चबैना को भी एक पैसा न छोड़ा। हत्यारा कहीं का। रोया–गिड़गिड़ाया, पर इस पापी को दया न आई।"

शोभा ने कहा– "ताड़ी तो पिए हुए हो, पर कहते हो, एक पैसा भी न छोड़ा।" गिरधर ने पेट दिखाकर कहा–"सांझ हो गई, जो पानी की बूंद भी कंठ ते गई हो तो गो–मांस बराबर। एक इकन्नी मुँह में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली। सोचा, साल भर पसीना गिराया है तो एक दिन ताड़ी भी पी लूं मगर सच कहता हूँ, नसा नहीं है। एक आने में क्या नसा होगा। हाँ झूम रहा है जिससे लोग समझे खूब पिए हुए हैं। बड़ा अच्छा हुआ काका बेबाक हो गई। बीस लिए थे, उसके एक सौ साठ भरे हैं, कुछ हद है।" परिस्थिति इस सीमा तक उसे घसीट ले गई है। जब केवल उन्माद छोड़ उसके लिए और कोई चारा नहीं रह गया। शायद शोभा के लिए कोई ताड़ी का निषेध न करेगा क्योंकि उसे इकन्नी में नशा न हुआ था, केवल दिखने को झूम रहा था। साल भर की मेहनत का यही फल था।

और होरी की परिस्थिति देखिए। घर पहुँचे तो सब आदर–स्वागत को न छोड़े कि ऊख के रूपये

लाया होगा। रूपा पानी लेकर दौड़ी, सोना चिलम भर लाई, धनिया ने चबेना और नमक लाकर रख दिया। होरी से न मुँह हाथ धोते बनता था न चबेना चबाते। "ऐसा लज्जित और ग्लानित था, मानो हत्या करके आया हो।"

" गोदान– में एक जगह कुछ किसान स्वांग करते हैं, स्वांग में वह महाजन का चरित्र भी करते हैं। स्वांग से महाजन के प्रति उनके हृदयस्थ भावों का पता चलता है। एक किसान उधार लेने गया। कागज़ लिखे जाने पर ठाकुर महाजन ने उसके हाथ में पांच रूपए रख दिए। उसने कहा, यह तो पांच ही हैं तो उत्तर मिला, "पांच नहीं है दस हैं। घर जाकर गिनना।" पांच दस के बराबर इस प्रकार थे। एक रूपया नजराने का, एक कागद का, एक दस्तूरी का, एक सूद का, पांच नगद। किसान से कहा– "अब यह पांचों भी मेरी ओर से रख लीजिए।" पूछा क्यों तो उसने कहा–"एक रूपया छोटी ठकुराइन का नज़राना है। एक रूपया बड़ी ठकुराइन का, एक रूपया छोटी ठकुराइन के पान खाने का, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक वह आपके क्रिया करम के लिए।" इस अतिरंजित चित्र के व्यंग्य से किसान की जलन का अनुमान किया जा सकता है।

क्या कानून बनाकर महाजनी शोषण का अन्त किया जा सकता है ? महाजन कहता है नहीं। जब तक देश में गरीबी है तब गरीबों को उसकी जरूरत रहेगी। वह अपने आसन पर उतने ही विश्वास से बैठा है जितने से ज़मींदार। प्रेमचन्द झिंगुरीसिह की वार्ता द्वारा यही बताते हैं कि कानून आदि भी पैसे वालों का पक्ष ही लेते हैं। झिगुरीसिंह दातादीन से कहता है–"कानून और न्याय उसका है जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई ज़मींदार किसी कास्तकार के साथ सख्ती न करें, मगर होता क्या है। रोज ही देखते हो। ज़मींदार मुसक बँधवाकर पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। प्रचलित व्यवस्था में महाजन और ज़मीदार बड़े मजे से आधा सांझा कर लेते हैं। महाजन सूद पर रूपये देता है। जमीदार लगान लेता है। जमीदार भी खुश, महाजन भी खुश।

ज़मींदार के लगान के अतिरिक्त कन्या का विवाह किसान के लिए दैवी व्याधि से कम नहीं होता। होरी को भी लड़की का ब्याह करना था। उसने रुपये उधार लिए । रुपये कमाने के लिए एक सड़क पर कंकड़ो की खुदाई की मजूरी करने लगा। बहुत दिन के बाद उसका भाई हीरा आया और होरी को देखकर बोला तुम तो बहुत दुबले हो गए दादा ? होरी ने उत्तर दिया–मोटे वह होते हैं जिन्हें न रिन की सोच होती है न इज्जत की। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। मोटे होने की बात, होरी के लिए जीना भी दूभर ही था। गर्मी की जलती लू में काम करते करते एक दिन उसका जी खराब हो गया। मरने के समय लोगों ने कहा–गोदान कर दो। धनिया भीतर गई और सुतली के बेचने से जो पैसे बचे थे उन्हें पति के ठंडे हाथ में रखवाकर उसने खड़े दातादीन से कहा–महाराज घर में न गाय है न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं। यही इनका गोदान है और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

14.4.6. असन्तोष, विद्रोह और वर्ग चेतना

गोदान में वर्ग–विषमता के साथ–साथ प्रेमचन्द ने गरीबों के असन्तोष, वर्ग–भावना और विद्रोह का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। धनिया, गोबर, गिरधर, शोभा आदि पात्र स्थान–स्थान पर विद्रोह की भावना प्रकट करते हैं। गोबर तो असन्तोष एवं विद्रोह की मूर्ति ही है। जब होरी रायसाहब से मिलकर आता है तो गोबर कहता है " यह तुम रोज़–रोज़ मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो ? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नज़र नज़राना सब तो हम से भराया जाता है। फिर किसी को क्यों सलामी करो।" प्रेमचन्द ने इस प्रसंग में दो पीढ़ियों के मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण किया है। "इस समय यही भाव होरी के मन में भी आ रहे थे, लेकिन लड़के के इस विद्रोह–भाव को दबाना जरूरी था" स्पष्ट है कि होरी की पीढ़ी दब्बू है, भाग्यवाद पर विश्वास करती है। अपने विद्रोह के भाव को यह पीढ़ी अपनी भाग्यवादी मनोवृत्ति से दबा लेती है।

गोदान में होरी की अपेक्षा धनिया, गोबर, शोभा आदि में असन्तोष और विद्रोह की भावना प्रचण्ड है। पर ये सब सामूहिक विद्रोह के लिए तैयार नहीं होते। इतना असन्तोष और विद्रोह व्यक्तिगत विद्रोह ही बना रहता है। होरी रायसाहब की वकालत करता हुआ कहता है कि अपनी मरजाद सबको पालनी पड़ती है, ज़मीदार की जान को भी सैंकड़ों रोग लगे रहते हैं तो गोबर प्रतिवाद करता है। होरी के कहने पर "तुम्हारी समझ में हम और वह बराबर है।" गोबर का उत्तर है "भगवान ने तो सब को बराबर ही बनाया है।" होरी बेटे को समझाते हुए कहता है "यह बात नहीं है बेटा छोटे बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए थे उनका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नही संचा तो भोगें क्या ?" स्पष्ट है कि 'गोदान' में होरी की पीढ़ी प्रबल है। अभी नई पीढ़ी ने अर्थात गोबर ने संघर्ष आरम्भ नहीं किया है। एक अन्य स्थान पर शोभा होरी से कहता है–'न जाने इन महाजनों से कभी गला छूटेगा कि नहीं'। तो होरी कहता है "इस जन्म में तो कोई आशा नहीं है भाई। हम राज नहीं चाहते, भोग विलास नहीं चाहते, खाली मोटा–झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।" यह सब जानते हुए भी वह शोभा को विद्रोह करने के बजाय यह सलाह देता है–"कुसल इसी में है कि झिगुरीसिंह के हाथ–पाँव जोड़ो। हम जाल में फँसे हुए हैं। जितना ही फड़फड़ाओगे, उतना ही और जकड़ते जाओगे।" शोभा होरी की बात को अस्वीकार करता है–"तुम तो दादा, बूढ़ी की सी बातें कर रहे हो। कठघरे में फँसे बैठे रहना तो कायरता है। फन्दा और जकड़ जाए, बला से पर गला छुड़ाने के लिए जोर तो लगाना ही पड़ेगा। यही तो होगा कि झिंगुरीसिंह घर द्वार नीलाम करा देंगे। करा ले नीलाम। मैं तो चाहता हूँ कि हमें कोई रुपये न दे, हमें भूखों मरने दे, लातें खाने दे, एक पैसा भी उधार न दे लेकिन पैसे वाले उधार न दे तो सूद कहाँ से पायें।"

'गोदान' में होरी की अपेक्षा धनिया, गोबर, शोभा, गिरधर आदि में असन्तोष और विद्रोह की भावना प्रचण्ड है। पर ये सब सामूहिक विद्रोह के लिए तैयार नहीं होते, संगठित नहीं होते। इनका असन्तोष और विद्रोह

व्यक्तिगत निष्क्रिय विद्रोह ही बना रहता है। दारोगा की धाँधली पर धनिया का विरोध, नोखेराम की बेईमानी पर गोबर की फटकार आदि कुछ प्रयास अपवाद ही है। गोबर जब शहर से कुछ कमा कर गाँव में आता है तो गाँव के शोषकों की खूब भर्त्सना करता है। जब दातादीन पूछता है 'अब तो रहोगे कुछ दिन ?' तो गोबर तमाचा–सा लगाता हुआ कहता है–"हाँ, अभी तो रहूँगा कुछ दिन। उन पंचों पर दावा करना है, जिन्होंने डाँड के बहाने मेरे डेढ़ सौ रुपये हज़म किये हैं। देखूँ कौन मेरा हुक्का पानी बन्द करता है और कौन बिरादरी मुझे जात बाहर करती है।" गोबर के युवक साथी भी गोबर से कहते हैं–'कर दो नालिस गोबर भैया! बुड़ढ़ काला साँप है–जिसके काटे का मन्तर नहीं। तुमने अच्छी डाँट बताई। पटवारी के कान भी गरमा दो। बड़ा मुतफन्नी है दादा! और गोबर की शह पाकर होली का प्रोग्राम बनने लगा कि ".....रंगों के साथ कालिख भी बने और मुखियों के मुँह पर कालख ही पोती जाए। फिर स्वांग निकले और पंचों की भद्य उड़ाई जाये।" वे सब इन शोषकों को खूब भिगो–भिगो कर लगाते हैं। होली की रात इन महाजनों, शोषकों और मुखियों की खूब नकलें हुई। "रात–भर मँडैती होती रही और सताए हुए दिल कल्पना में प्रतिशोध पाकर प्रसन्न होते रहे।" गोबर दातादीन को मनमाना सूद देने से जबाव दे देता है। वह बेईमानी से दोबारा लगान की वसूली चाहने वाले नोखेराम की खबर लेता है। वह होरी को जाता हुआ साफ कहता है– "मैं कल चला जाऊँगा, लेकिन इतना कहे देता हूँ कि किसी से एक पैसा उधार मत लेना और किसी को कुछ मत देना। मँगरू, दुलारी, दातादीन सभी से एक रुपया सैंकड़े सूद कराना होगा।" पर होरी का धर्म–भीरू मन "इसे नीति हाथ से छोड़ना" ही समझता है।

भोला भी अपना असन्तोष होरी की ही मनःस्थिति के रूप में प्रकट करता है–"कौन कहता है कि हम–तुम आदमी हैं। हममें आदिमयत है कहाँ ? आदमी वे हैं जिनके पास धन है, अख्तियार है, इलम है, हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं।" होरी दूसरों का खून चूस–चूस कर मोटा होने को बेहयाई कहता है। गो–हत्यारा हीरा अपने किये पर पछताता और क्षमा याचना करता हुआ जब होरी से मिलता है तो कहता है, "तुम भी तो बहुत दुबले हो गये दादा!" तो होरी जवाब देता है–"तो क्या यह मेरे मोटे होने के दिन हैं ? मोटे वह होते हैं जिन्हें न रिन का सोच होता, न इज्जत का। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है। ऐसे मोटेपन से क्या सुख ? सुख तो तब है कि सभी मोटे हों।"

14.4.7. दलित वर्ग का वर्ग संघर्ष

अब अछूत कहे जाने वाले दलित वर्ण के लोगों का वर्ग–संघर्ष उद्धृत करके इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। मातादीन ब्राह्मण ने गरीब चमारिन युवती सिलिया को फँसा लिया। सिलिया दिल–जान से उसे प्यार करने लगी। पर स्वार्थी लम्पट मातादीन अपने धर्म की रक्षा के बहाने उसे खिलौना बनाकर ही रखता है। चमारों ने देखा कि हमारी लड़की को भ्रष्ट करके भी यह नेमी–धर्मी बना हुआ है, क्रोध करके मातादीन

के सिर चढ़ आते हैं। वे उसे घेर लेते हैं। सिलिया का बाप हरखू स्पष्ट कहता है–".....हम आज या तो मातादीन को चमार बना के छोड़ेंगे या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है, किसी–न–किसी के घर तो जायेगी। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है, मगर उसे जो कोई भी रखे, हमारा होकर रहे। तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें ब्राह्मण बना दो, हमारी सारी बिरादरी रखने को तैयार है। जब यह सामारथ नहीं है तो फिर तुम ही चमार बनो, हमारे साथ खाओ–पीओ, हमारे साथ उठो बैठो। हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धर्म हमें दो।"

दातादीन ने लाठी फटकार कर कहा–"मुँह सँभाल कर बातें कर हरखुआ तेरी बिटिया वह खड़ी है, ले जा जहाँ चाहे ! हमने उसे बाँध नहीं रखा है.....।"

सिलिया की माँ उँगली चमका कर बोली–"वाह वाह पण्डित, खूब नियाब कहते हो! तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गयी होती और तुम इस तरह की बातें करते, तो देखती। हम चमार हैं, इसलिए हमारी कोई इज्जत नहीं ! हम सिलिया को अकेली न ले जाएँगे, उसके साथ मातादीन को भी ले जायेंगे, जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी धर्मी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे ! बड़ी चुड़ैल है कि यह सब सहती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती।"

हरखू ने अपने आदमियों को ललकारा – "सुन ली इन लोगों की बात कि नहीं ? अब क्या खड़े ताकते हो ?"

"इतना सुनना था कि दो चमारों ने लपककर मातादीन के हाथ पकड़ लिये। तीसरे ने झपट कर उसका जनेऊ तोड़ डाला और दो चमारों ने मातादीन के मुँह में एक बड़ी–सी हड्डी का टुकड़ा डाल दिया।"

14.5. सारांश

निश्चय ही 'गोदान' में चमार जाति का यह संघर्ष वर्ग संघर्ष का उत्तम उदाहरण है। कृषक–वर्ग के संघर्ष का समूची रचना में एक भी उदाहरण इतना सजीव नहीं है। आश्चर्य ही है कि प्रेमचन्द ने मजदूरों और चमारों का प्रासंगिक वर्ग–संघर्ष तो इतना खुला, स्पष्ट और सजीव दिखाया है, पर कृषकों के सामूहिक संघर्ष का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। कृषकों के जीवन की विषमता और वर्ग–चेतना प्रस्तुत करना ही उनका उद्देश्य बना रहा।

14.6 कठिन शब्द

1. प्रश्रय
2. अंजन
6. पंकिलता
7. सुतली

3. प्रतिछवित
4. प्रयाण
5. कारिंदा
8. अंजन
9. सुतली

14.7. अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'गोदान' कृषक जीवन का महाकाव्य है स्पष्ट कीजिए –

प्रश्न. 'गोदान' में शोषण के विविध रूपों का चित्रण हुआ है– युक्ति–युक्त उत्तर दीजिए।

प्रश्न. 'गोदान' में लेखक ने पुलिस के भ्रष्ट रूप का चित्रण किया है – स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न. 'गोदान' असन्तोष, विद्रोह और वर्ग चेतना का महाकाव्य है – स्पष्ट कीजिए।

14.7 पठनीय पुस्तके

1. गोदान – प्रेमचंद
2. कथाकार प्रेमचंद – जाफ़र रज़ा।
3. प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय
4. गोदान का महत्व – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
5. प्रेमचन्द – सं– सत्येद्रं
6. प्रेमचन्द के साहित्य में हाशिए का समाज– एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – शुभ्रा सिंह

---- 0 ----

'गोदान' में ग्रामीण एवं नागरिक कथाओं का विवेचन

15.0 रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3. गोदान में ग्रामीण एवं नागरिक कथाओं का विवेचन

15.3.1 ग्रामीण जीवन का दर्पण

15.3.2. शहरी जीवन का चित्रण

15.3.3. शहरी उच्च वर्ग का चित्रण

15.4. सारांश

15.5 कठिन शब्द

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.7. पठनीय पुस्तकें

15.1. उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे –

– गोदान में भारतीय ग्राम जीवन के साथ शहरी जीवन का भी चित्रण लेखक ने किया है।

– गावों से शहर तक जीवन का व्यापक परिवेश इस उपन्यास में है।

– ग्रामीण जीवन का सामाजिक ढांचा गोदान में बड़ी सजीवता से प्रस्तुत किया गया है।

– ग्रामीण जीवन की प्रस्तुती के साथ–साथ लेखक शहरी जीवन की झांकी भी इस उपन्यास में प्रस्तुत करता है।

15.2 प्रस्तावना

'गोदान–का चित्र पट पर्याप्त विस्तृत है। यह भारतीय ग्राम–जीवन का तो दर्पण है ही, साथ ही शहरी जीवन के भी कुछ सजीव चित्र इसमें उभर कर आये हैं। गावों से शहर तक जीवन का व्यापक परिवेश इसमें है। अतः देशकाल–वातावरण के भी स्पष्ट दो पक्ष इसमें मिलते हैं–एक ग्राम्य जीवन और वातावरण तो दूसरा शहरी जीवन–वातावरण।'

15.3 गोदान में ग्रामीण एवं नागरिक कथाओं का विवेचन

15.3.1. ग्राम जीवन का दर्पण

प्रेमचन्द गंवई जीवन के चितेरा हैं, उनका अपना जीवन बहुतांशतः गांवों में ही बीता था। अतः उन्हें ग्राम–जीवन के प्रत्येक आयाम और हर पहलू का व्यक्तिगत अनुभव था। उनकी अनेक कहानियों तथा 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' आदि 'गोदान' से पूर्व के उपन्यासों में भी उन्होंने ग्राम्य–जीवन की अनेक झांकियाँ दी हैं, पर समग्र रूप में एकत्रित ग्राम–जीवन का जैसा भव्य और पूर्ण चित्रण 'गोदान' में हुआ है, वह पहले की किसी रचना में नहीं। सच तो यह है कि प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास के पिछले पच्चीस तीस वर्षों में भी ग्राम्य–जीवन की पूर्णता को उद्घाटित करने वाला 'गोदान' जैसा दूसरा उपन्यास उपलब्ध नहीं हुआ। 'गोदान' कृषक–संस्कृति की लोक–परम्परा का अन्यतम उपन्यास है। वह ग्राम–जीवन का महाकाव्य है।

ग्राम्य जीवन का सामाजिक ढांचा 'गोदान' में बड़ी सजीवता से प्रस्तुत हुआ है। गाँव में कई वर्गों और जातियों के लोग रहते हैं। उनकी सामाजिक मर्यादाएँ, श्रेणियाँ और स्तर भी अलग–अलग हैं। दातादीन–जैसे ब्राह्मण हैं, जिन्हें ग्राम–समाज धर्म–दूत मान कर आदर की दृष्टि से देखता है। चौधरी महतो है, जिनकी अपनी मरजाद है। हरखू जैसे निम्न वर्ग के चमार हैं, जिन्हें उच्च वर्ग वाले नीच समझते हैं भोला–जैसे अहीर हैं, जिनमें पुनर्विवाह, तलाक सब मान्य है। ग्राम–समाज के स्तंभ उच्चवर्ग के लोग हैं। उच्चता के दो आधार हैं। एक जाति और दूसरे प्रभाव और पैसा। दातादीन वर्ण की उच्चता का लाभ उठा रहे हैं, तो नोखेराम और पटेश्वरी अपने अधिकार के प्रभाव से पंच बने हैं, झिगुरीसिंह अपने पैसे के बल पर अधिकार प्राप्त किये हुए हैं।

परम्परागत समाज–व्यवस्था का गाँवों में आतंक है। लोग अभी स्वेच्छा तथा विवशतापूर्वक इस बात पर विश्वास रखते हैं। पंच परमेश्वर माने जाते हैं और बिरादरी उद्धारक। व्यक्ति या परिवार को पंच और बिरादरी के शासन में ही रहना पड़ता है। परंपरागत झूठी–यथार्थ मर्यादाओं का

उल्लंघन करने वालों को पंचायत करके दण्डित किया जाता है। बिरादरी से बाहर कर देने का भय भी रहता है। बिरादरी में हुक्का–पानी बन्द होने से व्यक्ति या परिवार कहाँ रहे और कैसे रहे ? इस प्रकार प्राचीन ग्राम–पंचायत का रूप विकृत हो गया है। यह सब महाजनी संस्कृति के विकास का कुफल है। सब बातों में पैसे की माप–जोख चलती है।

ग्राम पंचायत का रूप बिगड़ गया है और प्राचीन सम्मिलित परिवार–प्रथा तो नष्ट होती जा रही है। शायद ही कोई घर ऐसा हो, जहाँ दो भाई साथ मिलकर रहते हों। एक तो आय के अल्प–साधनों में भाईयों में खटपट हो जाती है, दूसरे झगड़ालू बहुएँ बड़ों के शासन से मुक्त होकर अलग रहना चाहती हैं और अलगौझा करवा देती हैं। भाईयों में आपस में ईर्ष्या–द्वेष रहता है, किन्तु मुसीबत के समय भाई ही भाई की मर्यादा रखता है, भाई ही भाई के काम आता है। सम्मिलित परिवारों में सास–बहू, ननद–भावजों, देवरानी–जेठानी में रोज तकरार रहती है, मामूली–मामूली बातों पर झगड़ा और कहा–सुनी ही नहीं,. मार–पीट तक हो जाती है।

ग्राम–समाज भी पुरुष प्रधान समाज है। पुरुष नारी को पर्दे में रखना चाहता है। उच्चवर्ग की नारियाँ विशेष रूप से पर्दे में रहती हैं। किसान, अहीर और निम्न वर्ग की नारियाँ खेत–खलिहान और पशु ढोर का भी सब काम करती हैं। इस कारण वे भी अपना कुछ अधिकार मानती हैं। फिर भी पुरुष की ही प्रमुखता है। पुरुष पत्नी को मारना और अपने शासन में रखना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। पुन्नी–जैसी नारियाँ अधिकारों की टक्कर होने पर, मार खाती हुई भी, गालियों और रूदन द्वारा अपना अधिकार जताती हैं। वैवाहिक पद्धति में अनेक दोष आ गए हैं। अनमेल विवाह होते हैं। भोला–जैसा बूढ़ा जवान पत्नी को मारता है। झिगुरीसिंह दो जवान पत्नियाँ रखे हुए हैं। कई बार विवशतावश होरी जैसे पिता को भी अपनी लड़की उधेड़ उमर के रामसेवक को बेचनी पड़ जाती है। उच्च वर्ग में विधवा–विवाह, नारी का पुनर्विवाह, त्याग आदि वर्जित है। निम्नवर्ग में यह सब मान्य है। बेमेल विवाह के परिणामस्वरूप कभी–कभी पर्दे की आड़ में ताँक–झाँक अनुचित सम्बन्ध आदि अनैतिक आचरण भी दिखाई देते हैं।

छुआ–छूत और जात–पात के बंधन भी काफी कड़े हैं। गोबर जब अहीर की विधवा कन्या को ले आता है और होरी–धनिया उसे अपने घर रख लेते हैं तो समाज–बिरादरी में तूफान मच जाता है। उच्च वर्ग के लोग विजातीय नारियों को चोरी–चोरी ही रखैल बनाते हैं। ब्राह्मण आदि उच्च वर्ग के लोग चमारों आदि वर्ग से छुआछूत का व्यवहार करते हैं।

ब्राह्मण धर्म अपने पूरे पाखण्डों सहित गाँवों में विराजमान हैं। ब्राह्मण जी पूजा–पाठ, धर्म–कर्म, शादी–ब्याह, अन्त्येष्टि आदि कर्मों के नियामक हैं और अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए धर्म का ढोंगी–रूप प्रचारित करते हैं। इस धर्म ने ही ग्रामीणों को भाग्यवाद, पुनर्जन्म, कर्म–फल, पाप–पुण्य तथा ईश्वरीय न्याय

आदि के अन्ध–विश्वासों में जकड़ रखा है। वही धर्मात्मा समझा जाता है। जो नियमपूर्वक स्नान–ध्यान करें, तिलक–छापा लगाये, किसी का छुआ भोजन न खाये, कथा–वर्त–पूजा निभावे। दातादीन अपने धर्म का ऐसा ही दम्भ इन पंक्तियों में प्रकट करते हैं–"कोई हमारी तरह नेमी बन तो ले। कितनों को जानता हूँ, जो कभी संध्या वन्दन भी नहीं करते, न उन्हें धरम से मतलब, न करम से, न कथा से मतलब, न पुराण से। वह भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। हमारे ऊपर क्या हँसेगा कोई, जिसने अपने जीवन में एक एकादशी भी नागा नहीं की, कभी बिना स्नान–पूजन किये मुँह चीज लगाई हो, या किसी दूसरे के हाथ का पानी पिया हो, तो उसकी टाँग की राह निकल जाऊँ। " सिलिया अपनी चौखट नहीं लाँघने पाती, चौखट बरतन–भाँडे छूना तो दूसरी बात है। किसी कारण धर्म भ्रष्ट हो जाने पर ब्राह्मणों को भोज देने तथा प्रायश्चित की व्यवस्था निभाने से बिगड़ा धर्म सुधर सकता है। काशी के पण्डित इन गाँवों के ब्राह्मण–पण्डितों से भी बड़े–ध्वजी माने जाते हैं। मुँह में हड्डी छू जाने से ही मातादीन का धर्म नष्ट हो गया और काशी के पण्डितों ने प्रायश्चित करके सुधार दिया।

धर्म–भीरूता और समाज–भीरूता किसानों में संस्कार–बद्ध हो गई है। झूठी गंगा–जली वह नहीं उठा सकते। ब्राह्मण का पैसा मारना उनके लिए पाप है। इस धर्म समाज–भीरूता ने जहाँ उनमें कुछ दुर्बलताएँ तथा अन्धविश्वास पैदा कर दिये हैं, वहाँ इसके कारण गाँव वालों का नैतिक आचरण भी काफी दृढ़ रहता है। अपनी आर्थिक विवशता के कारण, थोड़ा–बहुत झूठ बोल लेना या छोटी–छोटी बेईमानी कर लेना आदि नैतिक शिथिलता अत्यन्त नगण्य है। कृषक वर्ग के लोग फिर भी किसी के जलते घर में हाथ नहीं सेकते, प्रकृति के संसर्ग में रहने के कारण स्वार्थ की कलुषित कालिमा उनको छूती भी नहीं। गाँव के युवकों का आचरण भी इतना नहीं बिगड़ता जितना शहर वालों का बिगड़ गया है। गोबर के लिए गाँव की सभी युवतियाँ और बहुएँ बहनें अथवा भाभियाँ थीं, वह किसी की ओर बुरी दृष्टि से नहीं देखता था। किन्तु जब से गाँव के लड़के शहर में पढ़ने लगे हैं, उनकी लाज–हया न जाने कहाँ लुप्त हो गई है। पटेश्वरी और नोखेराम के लड़के गाँव की बहू–बेटियों की ताक–झांक करते घूमते हैं। ग्राम–समाज अशिक्षित है, असभ्य है फिर भी मानवता के नाते ये लोग अनेक शिक्षितों से अच्छे हैं।"

गाँवों की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गई है। इने–गिने महाजनों को छोड़कर शेष सब लोग पैसे–पैसे को मोहताज हैं। सारा साल परिश्रम करने पर भी उन्हें उसका पूरा फल नहीं मिलता। दो जून भोजन भी मयस्सर नहीं होता। भूमि टुकड़े–टुकड़े हो गई है–अलगौझे तथा बेदखली के कारण खेत छोटे–छोटे टुकड़ों में बंटे हुए हैं। पुराने ढंग से ही खेती होती है। भगवान्–भरोसे ही खेती रहती है। किसान पुश्त–दर–पुश्त कर्ज के बोझ से दबते जा रहे हैं। एक आना से दो आना रुपया तक ब्याज देना पड़ता है। महाजनी–व्यवहार का बोल बाला है। लगान चुकाने फसल बोने, ब्याह–शादी आदि सब अवसरों पर किसानों को महाजनों का मुँह ताकना पड़ता है। होरी 5 बीघे और एक हल का किसान है, उसकी हालत जब इतनी बुरी है तो उन हजारों किसानों की अवस्था का अनुमान लगाया जा सकता है, जिनके पास अपनी जरा भी ज़मीन नहीं है। और न हल किसान के पास

से ज़मीन छिनती जा रही है और वह मजदूर बनता जा रहा है–गाँव में ज़मींदार को और शहर जाकर मिलमालिकों को होरी कहता है–"गाँव में इतने आदमी हैं, किसी पर बेदखली नहीं आई" ज़मींदार भारी लगान की सख्ती से वसूली करके तथा डाँड बाँध, चन्दा बेगार आदि लेकर ज़मींदार का कारिन्दा भी बेगार तथा ब्याज–बट्टा वसूल करके, महाजन भारी ब्याज खाकर, पटवारी अपने रौब से बेगार तथा नजर–नजराना लेकर, मिल वाले ऊख आदि उपज को कम तौल कर, ब्राह्मण अपने पुरोहिताई तथा महाजनी चलाकर–सब लोग तरह तरह से गरीब किसानों का शोषण कर रहे हैं। किसान इस शोषण की चक्की में पिस रहा है। ग्रामीण बेचारे मोटा–रूखा खाते हैं, मोटा–छोटा पहनते हैं, फिर भी न पेट भरता है, न तन पूरा ढकता है।

'गोदान' में ग्राम्य वातावरण अत्यन्त सजीव है। ग्रामीणों का खान–पान, पहनावा, संस्कार, बातचीत, व्यवहार सब सजीव है। तीसरे परिच्छेद की एक झांकी देखिए–'होरी अपने गाँव के समीप पहुँचा तो देखा अभी तक गोबर खेत में ऊख गोड़ रहा है और दोनों लड़कियाँ भी उसके साथ काम कर रही हैं।.....तीनों ने कुदालें उठा लीं और उसके साथ हो लिए।.....बड़ी लड़की.....गाढ़े की लाल साड़ी, जिसे वह घुटनों से मोड़कर कमर में बांधे हुए थी, उसके हल्के शरीर पर कुछ लदी हुई सी थी...छोटी रूपा.....मैली, सिर बालों का एक घोंसला सा बना हुआ एक लँगोटी कमर में बांधे,....। द्वार पर कुआँ था। होरी और गोबर ने एक एक कलसा पानी सिर पर उँडेला, रूपा को नहलाया और भोजन करने गये। जौ की रोटियाँ थी, पर गेहू–जैसी सुफेद और चिकनी। अरहर की दाल थी, जिसमें कच्चे आम पड़े हुए थे। रूपा बाप की थाली में खाने बैठी। भोला के आने पर उसकी पाहुनों जैसी खातिर हुई। "गोबर ने खाट डाल दी, सोना रस घोल लायी, रूपा तमाखू भर लायी।"..... होरी और गोबर मिलकर एक खाँचा भूसा भर लाये। भोला ने तुरन्त अपने अँगोछे की बीड़ बनाकर सिर पर रखते हुए कहा–मैं इसे रखकर अभी आता हूँ। एक खाँखा और लूँगा। इसी प्रकार का पूरा ग्रामीण वातावरण सारे उपन्यास में सजीवता के साथ प्रकट हुआ है। उनकी बातचीत में ग्राम्य संस्कार विद्यमान है। भाषा भी ग्रामीण बोलचाल की है, जो वातावरण को बिल्कुल सजीव कर देती है। क्या खेत–खलिहान में काम करने का वर्णन, क्या होली के उत्सव का राग–रंग, ढोल–मंजीरों की खड़ताल, चौपाल, घर–झोपड़ी सब का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है।

15.3.2. शहरी जीवन का चित्रण

गोदान' में शहरी जीवन की कुछ झलकियाँ ही मिलती हैं। नगरों के वातावरण और जीवन का पूर्ण चित्र वैसा नहीं है जैसा ग्राम्य चित्र है। वास्तव में शहरी जीवन केवल तुलना हेतु साथ प्रस्तुत किया गया है यह लेखक का मुख्य उद्देश्य नहीं है। शहरों में अनेक प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक आन्दोलन और तरह–तरह की विचारधाराएँ प्रचलित हैं। नारी–स्वच्छन्दता का आन्दोलन शिक्षित नारियों ने स्वयं चलाया हुआ है। पाश्चात्य स्वच्छन्दता के पक्ष में हैं, मेहता उसके स्थान पर नारीत्व का भारतीय आदर्श प्रचारित करते हैं। 'बिजली' संपादक ओंकारनाथ और उनका पुत्र ग्राम–सुधार का बीड़ा उठाए हुए हैं। मिर्जा खुर्शेद को तरह–तरह की इल्लतें सूझती रहती हैं। कभी तो वह पैसे वाले शहरियों को कब्बडी दिखाने के लिए, उनसे

टिकट के पैसे झाड़कर गरीब मज़दूरों में बांटता है कभी वेश्याओं की समस्या का इलाज ढूँढता है तो कभी मजदूरों को हड़ताल के लिए भड़काता है। नगरों में नई–नई व्यापारिक कम्पनियाँ, बैंक तथा मिल–कारखाने खुल रहे हैं। बड़े–बड़े पूँजीपति और उद्योगपति विकसित हो रहे हैं। दूसरी ओर शहरों में मजदूरों और गरीबों का जमाव हो रहा है। प्रेमचन्द ने शहरी मजदूरों और बेकारों की बड़ी सजीव झाँकी प्रस्तुत की है। गाँव (कोदई के गाँव) के और कई आदमी मजूरी की टोह में शहर जा रहे थे। बातचीत में रास्ता कट गया और नौ बजते–बजते सब लोग अमीनाबाद के बाजार में जा पहुँचे। गोबर हैरान था। इतने आदमी नगर में कहाँ से आ गये ? आदमी पर आदमी गिर पड़ता था।

"उस दिन बाजार में चार–पाँच सौ मजदूरों से कम न थे। राज, बढ़ई, लोहार, बेलदार, खाट बुनने वाले, टोकरी ढोने वाले और संगतराश सभी जमा थे। गोबर यह जमघट देखकर निराश हो गया। इतने सारे मजदूरों को कहाँ काम मिल जाता है।...धीरे–धीरे एक–एक करके मजदूरों को काम मिलता जा रहा था। कुछ लोग निराश होकर घर लौट रहे थे। अधिकतर वह बूढ़े और निकम्मे बच रहे थे। जिना कोई पुछत्तर न था।"

प्रेमचन्द ने 'गबन' में शहरी निम्न मध्यवर्ग के जीवन का चित्रण किया है। किन्तु 'गोदान' में मुख्यतः उच्चवर्ग के ज़मींदार, मिल–मालिक, शिक्षित प्रोफेसर और डाक्टर पार्टियाँ देते–लेते हैं। कारों में घूमते हैं, बढ़िया खाते–पहनते हैं, कोठी बंगलों में रहते हैं। गरीब लोग गन्दी–गलियों, तंग कोठरियों, अहातों में गुजर करते हैं। शहर में मजदूरों, तांगे–खोंचे वालों का जीवन दरिद्रता की करुण कहानी है।

15.3.3 शहरी उच्चवर्ग का चित्रण

शहरी उच्चवर्ग विशेषकर ज़मींदार और पूँजीपति विलास–पूर्ण जीवन बिताते हैं। कुँवर दिग्विजयसिंह घोर विलासी है। खन्ना, राजा सूर्यप्रतापसिंह भी रसिक और विलासी है। उन्मुक्त–भोग और स्वच्छन्द विहार शिक्षित नारियों और पुरुषों का जीवन–सिद्धान्त बनता जा रहा है। शिक्षित नारी पाश्चात्य रंग में रंगी फैशन की पुतली बन रही है। वह तितली बनकर पुरुषों को अपने इशारे पर नचाने में आनन्द मानती है। शिक्षित युवक–युवतियाँ स्वच्छन्द प्रेम पर विश्वास करते हैं। रूद्रपाल और सरोज में ऐसा ही प्रेम–सम्बन्ध हो गया। माँ–बाप के विरोध की भी परवाह नहीं की जाती। रायसाहब की बात को रूद्रपाल ठुकरा देता है। पुरुष की लम्पटता के कारण कई बार पति–पत्नी में कलह हो जाती है और परिवारिक शांति नहीं रहती। खन्ना–गोविन्दी का उदाहरण ऐसा ही है। मीनाक्षी और दिग्विजयसिंह का झगड़ा तो दूसरी सीमा तक ही पहुँच जाता है। नगर–समाज में भी पुरुष की ही प्रधानता है, वही कमाता है और अपना प्रभाव रखता है, किन्तु बहुत सी शिक्षित नारियाँ भी अब जीवन के अनेक क्षेत्रों में काम करने लगी हैं। मालती अपने माता–पिता बहनों के खर्चों का भार स्वयं वहन करती है।

शहरी जीवन में स्वार्थ अधिक मात्रा में घुसता जा रहा है। गाँव के छोटे महाजनी रूप का शहरी विकास पूँजीपतियों की व्यावसायिक बुद्धि के रूप में हुआ है। इस वर्ग का नारा है 'Business is

Business' अर्थात् व्यापार है व्यापार। व्यापार अलग चीज है, दोस्ती अलग। खन्ना अपने मित्र रायसाहब से भी खूब कमीशन वसूल करता है। ये लोग जहाँ भी मिलते हैं, अपने मतलब की बात करते हैं। शिकार में खन्ना, तन्खा को रूचि नहीं। खन्ना रायसाहब के पास अपनी कम्पनी के शेयर बेचना चाहता है, तन्खा इलेक्शन में मिर्जा खुर्शेद को खड़ा करके दूसरे पक्ष से हजारों रुपये उड़ाने की बात सोचता है। मिल–मालिक मजदूरों को कम मजूरी देते हैं, बेचारों का दो जून खाना भी नहीं चलता। खन्ना स्वयं मैनेजिंग डायरेक्टर बना हजारों रूपये मासिक वेतन लेता है पर मजदूरों की मजदूरी और भी घटा देता है। ऐसी स्थिति मजदूरों की अशांति का कारण बनती है। मजदूर हड़ताल कर देते हैं। संघर्ष तन जाता है। मिलों में मजदूरों की हड़तालें और संघर्ष उस युग में आए दिन होने लगे थे। पत्र–सम्पादक ओंकारनाथ और खुर्शेद जैसे नेता मजदूरों को भड़का कर आग में झोंक देते हैं, आप आग से अलग हो जाते हैं। ऐसे ढोंगी नेता जन–सेवा के नाम पर कई बार अपने स्वार्थों को ही सिद्ध करने की धुन में रहते हैं। रायसाहब और मिस मालती जैसों का जेल हो आना ऐसे ही प्रयत्न थे। इस स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण शहर में किसी को एक–दूसरे से सच्ची सहानुभूति और संवेदना नहीं रही। रायसाहब अपने वर्ग की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–"नहीं सह सकता उनकी हंसी जो अपने बराबर के हैं, क्योंकि उनकी हंसी में ईर्ष्या, व्यंग्य और जलन है। सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं, लेकिन...केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए...हम में से किसी पर डिग्री हो जाय, कुर्की आ जाये..और किसी का जवान बेटा मर जाये...तो उसके और भाई उस पर हँसेंगे, बगलें बजायेंगे, ...और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं।" ह्रासोन्मुखी ज़मींदारी का बहुत सुन्दर चित्रण प्रेमचन्द ने किया है। ज़मींदार भी अब शहर के बैंकों और पूँजीपतियों पर आधारित हो गये हैं। अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए अनेक ढोंग रचते हैं–एक ओर जनता के खैरख्वाह बनते हैं, दूसरी ओर सरकारी अफसरों से बनाकर रखते हैं।

ब्रिटिश नौकरशाही और पुलिस–पद्धति के काले कारनामों का भी अच्छा चित्रण हुआ है। दारोगा रिश्वत उड़ाने की ही ताक में रहते हैं, अमले–हाकिम डालियाँ लेते और नजर–नज़राने खाते हैं और टिड्डीदल गाँवों पर हमला बोल देते हैं।

15.4 सारांश

इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने शहरी जीवन की अनेक झाकियाँ प्रस्तुत करके सामयिक समाज और वातावरण का सच्चा चित्रण किया है। इस यथार्थ देशकाल–वातावरण के चित्रण से रचना में युग–धर्म की पूरी रक्षा होती है। पाठक को सब कुछ स्वाभाविक प्रतीत होता है। शहरी पात्रों की बातचीत भी उनके शिक्षित संस्कारों और बौद्धिक विकास की परिचायक होती है। उनकी भाषा में भी नागरिकता है। दोनों कथाओं के विवेचन को देखते हुए हम कह सकते हैं कि गोदान की मूल कथा कृषक जीवन को लेकर है परन्तु शहरी जीवन की कथा के बिना ग्रामीण जीवन का चित्रण भी अधूरा रहता क्योंकि रायसाहब जैसे ज़मींदारों का किसानों से सम्बन्ध और शोषण के एक रूप का विवेचन है इसी तरह बाकी कथा भी परोक्ष या अपरोक्ष रूप

से मूल कथा की पोषक ही है। अतः हम कह सकते हैं कि दोनों कथाएँ आपस में सम्बद्ध हैं असम्बद्ध नहीं।

15.5 कठिन शब्द

1. बहुतांशतः
2. अलगौझा
3. मयस्सर
4. पुछत्तर
5. हासोन्मुखी
6. खैरख्वाह

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'गोदान' में ग्रामीण एवं नागरिक कथाओं का विवेचन हुआ है– स्पष्ट कीजिए

प्रश्न. लेखक शहरी जीवन के साथ–साथ शहरी उच्च वर्ग का भी विस्तारपूर्वक वर्णन करता है – युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

प्रश्न. प्रेमचंद किसान होरी के माध्यम से भारत के समस्त गांव की स्थिति का चित्रण करता है – इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं – युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

15.7 पठनीय पुस्तके

1. गोदान – प्रेमचन्द
2. कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रज़ा।
3. प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय
4. गोदान का महत्व – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
5. प्रेमचन्द – सं– सत्येद्रं
6. प्रेमचन्द के साहित्य में हाशिए का समाज– एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – शुभ्रा सिंह

---- 0 ----

'गोदान' के प्रमुख पात्र : होरी, धनिया, गोबर, मालती

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3. 'गोदान' के प्रमुख पात्र

4.3.1 होरी

4.3.2 गोबर

4.3.3 धनिया

4.3.4 मालती

4.4 कठिन शब्द

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6. पठनीय पुस्तकें

4.1. उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप अवगत होंगे–

– होरी के माध्यम से भारतीय किसान युग–युग से सामन्तवाद और जमींदारी पद्वति का शिकार बना चला जा रहा है।

– किसान का जीवन सम्मान और आदर के अभाव का जीवन रहा है।

4.2 प्रस्तावना

उपन्यासों में पात्रों एवं चरित्र चित्रण का अत्यधिक महत्व होता है। वे हमारे जीवन का वास्तविक यथार्थ रूप प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में उपन्यास रचना किसी निश्चित उद्देश्य को समाने रखकर होती है केवल मनोरंजन या कल्पनालोक का निर्माण करना ही उपन्यासकार का दायित्व नहीं है। आज उसका दायित्व सत्य का अन्वेषण करना, मूल्य निर्माण और दिशा निर्देशन का भी है। अपने अनुभवों को भी पाठकों तक पहुंचाना उसका उद्देश्य होता है। इन पात्रों का वास्तविक होना आवश्यक है क्योंकि तभी उपन्यासकार का उद्देश्य भी सफल होता है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में पात्रों का चरित्र–चित्रण, उनकी वास्तविकता, पात्रों की संख्या और पात्रों की व्यक्तिगत या सामाजिक विशेषताओं को मुखरित किया है और यह बताने का प्रयास किया है कि यह पात्र अपने समाज और वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही कारण है कि प्रेमचन्द के उपन्यास गोदान के पात्रों में वास्तविकता और जीवन के प्रति सच्चाई है। संघर्ष के प्रति ईमानादारी है और सबसे बड़ी बात यर्थाथता है।

4.3 'गोदान' के प्रमुख पात्र

4.3.1 होरी

चरित्र की वह मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ जिनसे वह भारतीय किसान का प्रतीक होता है : उपन्यास का नायक होरी कृषक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। यह प्रेमचन्द की अमर चरित्र सृष्टि है। उसका चरित्र–चित्रण प्रेमचन्द की अत्यन्त सफल श्रेष्ठ कला का परिचायक है। भारतीय साहित्य में सम्भवतः पहली बार एक दरिद्र व्यक्ति का नायक के रूप में इतना सजीव चित्रण हुआ। यद्यपि उसके चरित्र की व्यक्तिगत विशिष्टता भी कुछ बातों में दिखाई देती है, परन्तु अधिकांशतः वह कृषक वर्ग के प्रतिनिधि–रूप में चित्रित किया गया है। उसकी सम्पूर्ण मनोभूमि कृषक की मनोभूमि है। वह जो कुछ सोचता–विचारता, करता धरता है, उस सब के मूल में उसके कृषक–संस्कार ही दिखाई देते हैं। इसी कारण 'गोदान' कृषक–संस्कृति की लोक–परम्परा का प्रतीक उपन्यास बन गया है।

आरम्भिक पृष्ठों में कोई हमें उसके चिर–पुरातन कृषक रूप का दिग्दर्शन हो जाता है। "होरी कदम बढ़ाये चला जाता है। पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा–भगवान कहीं भी से बरखा दे और डाँडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा।...उसकी खूब सेवा करेगा....गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे–सबेरे गऊ के दर्शन हो जायें, तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी कब वह शुभ दिन आयेगा!" गाय की लालसा भारतीय किसान की जन्म संस्कारगत लालसा है। गऊ को वह माता मानता है। उसके बछड़े भी उसका अमूल्य धन होते हैं। और अपनी लहलहाती खेती को देखकर प्रसन्न होना और भगवान से उसकी सही सलामत वृद्धि और पूर्ति की कामना–प्रार्थना कृषक की

शाश्वत सार्वभौमिक प्रवृत्ति है।

भारतीय किसान युग–युग से सामन्तवाद और ज़मींदारी पद्धति का शिकार बना चला आ रहा है। अपनी दयनीय दशा को वह भगवान की देन समझता है। वह भाग्यवादी बन गया है। होरी के मानसिक संस्कार इसी ढाँचे में ढले हैं। अपनी दयनीय दशा का उसे दुःख तो है, पर इसे भगवान की मर्जी या भाग्य की बात समझकर वह असन्तुष्ट और विद्रोही नहीं होता, अपितु अपने मालिकों की खुशामद और उनका कृपा–पात्र बनने में ही अपना भला समझता है। होरी अपने ज़मींदार से मिलने जाता है। धनिया के विरोध करने पर वह कहता है–"इसी मिलते–जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। जब दूसरों के पाँव तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पावों को सहलाने में ही कुसल है।" जब गोबर अपने पिता की खुशामदी मनोवृत्ति की आलोचना करता है तो होरी अपने बेटे के विद्रोह भाव को दबाता हुआ कहता है–"सलामी करने न जायें, तो रहे कहाँ ? भगवान ने गुलाम बना दिया है तो अपना क्या बस है।" किसान की नई पीढ़ी में विद्रोह और असन्तोष तीव्र है। असन्तोष होरी की पुरानी पीढ़ी में भी व्याप्त है, पर वह अपनी भलाई विद्रोह में नहीं, मित्रता में, समझता है, अकड़ने से निबाह नहीं होगा। गोबर कहता है भगवान ने तो सब को बराबर ही बनाया है। पर होरी कहता है–"यह बात नहीं है बेटा, छोटे बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये थे, उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोंगे क्या ?" इस प्रकार भगवान की लीला में होरी का अटल विश्वास है जन्म–जन्मान्तरवाद, कर्मवाद और भाग्यवाद पर उसकी निष्ठा है। ये समूचे कृषक वर्ग का ही विश्वास है।

अपने छोटे–मोटे स्वार्थों को कृषक हर समय सामने रखता है। वह उधार को मुफ़्त समझता है। होरी जानता था, घर में रुपये नहीं हैं, अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपये का सूद चढ़ रहा है, लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता तो तकाज़े, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती उसने होरी को भोला से गाय उधार लेने के लिए प्रोत्साहित किया। 'उसे अभी चार सौ रुपये देने थे लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ़्त समझता था।' होरी भोला को सगाई दिलाने का झांसा देता है। उसकी प्रशंसा करता है। वह चालाकी से उसकी गाय हथियाना चाहता है। यह सब उसकी नीति में बुराई न थी। वह गाय की लालसा पूरी करना चाहता है। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई तो साल–दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई तो होरी का क्या बिगड़ता है ? यह तो होगा कि भोला बार–बार तगादा करने आयेगा बिगड़ेगा गालियाँ देगा लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल न था। अब भी लेन–देन में उसके लिये लिखा पढ़ी होने और न होने में कोई अन्तर न था।...ईश्वर का रुद्र सदा उसके सामने रहता था। पर यह छल उसकी नीति में न था। यह केवल स्वार्थ सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन–रात करता रहता था। घर में दो–चार रूपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने

कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रूई में कुछ बिनौले भी देना उसकी नीति में जायज़ था। इस प्रकार का स्वार्थ गरीब किसान की रग–रग में समाया रहता है। अपने भाईयों से होरी दो–चार रुपयों के लोभ से बेईमानी करता है। वह दमड़ी बंसोर को सांझे के बाँस बेचने में भाईयों से धोखा करना चाहता है। ठकुर–सुहाती उसकी प्रवृत्ति बन गई है। होरी अपना स्वार्थ गांठने के लिए दुलारी–सहुआइन, नोहरी आदि की ठकुर–सुहाती करता है।

परन्तु वह चाहे जितना स्वार्थी हो, अपने छोटे–मोटे लोभ–लाभ के लिए वह भले ही थोड़ा सा छल–कपट कर लेता हो उसका मन कुत्सित नहीं। किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव–ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक–एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाये, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान। होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था। 'जब भोला भूसे की कमी के संकट से गाय बेचने की विवशता जाहिर करता है तो उसकी संकट कथा सुनते ही होरी की मनोवृत्ति बदल गई। वह गाय लेने से जवाब दे देता है। संकट की चीज़ लेना उसके लिए पाप है। वह साफ़ कहता है–"भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे, और मैं लूँगा। मेरे हाथ न कट जायँगे ?...किसी भाई का नीलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वही इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।" जिस भाई से वह दो रुपये की बेईमानी करना चाहता है उसके लिए जान भी दे सकता है, खून पसीना एक कर सकता है। हीरा के भाग जाने पर वह उसके खेतों में खुद काम करता है, उसकी गृहस्थी का पूरा ध्यान रखता है। हीरा के वापस लौट आने पर वह उसे गले लगा लेता है, उसके अपराध को क्षमा कर देता है। वह निराश्रिता सिलिया को अपने पास आश्रय देता है। इस प्रकार किसान की क्षुद्र दुर्बलताएँ तथा उच्च संस्कारों की मानवीय सबलताएँ सब होरी में पाई जाती हैं।

किसान का जीवन सम्मान और आदर के अभाव का जीवन रहा है। इसी से वह थोड़ा–सा सम्मान पाकर ही फूल जाता है। वह दूसरों से अपने को विशिष्ट समझ कर प्रसन्नता का अनुभव करता है। जब होरी रायसाहब को मिलने जाता है तो 'दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम–राम करते और सम्मान–भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे,...उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान–लालसा ऐसा आदर पाकर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर देती थी। धनुष–यज्ञ में वह राजा जनक का माली बना फूला नहीं समाता। जब गाय घर आती है तो वह उसे बाहर बाँधना चाहता है ताकि द्वार पर ऐसी बढ़िया गाय बँधी देखकर लोग कहें कि यह होरी महत्तो का घर है। इस गर्व–भावना से वह दातादीन के आगे खिल्ली उड़ाता है कि गाय मैंने भोला से नकद ली है।

किसान–धर्म–भीरू और समाज बिरादरी–भीरू भी होता है। धर्म के ब्राह्मणी रूप पर उसका विश्वास होता है। जाति–पाति और छुआछूत को वह ग्रहण किये रखता है। होरी इसी परम्परागत संस्कारों के आश्रय

ब्राह्मण दातादीन को विशिष्ट मानता है। उसके रुपये वह कैसे रख सकता है ? ईश्वर का रूद्र रूप उसे हरदम डराता रहता है। जब गोबर दातादीन को एक रुपया सैंकड़ा ब्याज़ के हिसाब से रुपये देना चाहता है तो होरी इसे नीति के विरुद्ध समझ कर कहता है–''हमे नीति हाथ से नहीं छोड़नी चाहिए। जिस दर पर रुपया लिया है वही देना चाहिए और फिर ब्राह्मण के रुपये !'' जब सिलिया का पिता हरखू और भाई मातादीन को पकड़ कर उसके मुँह में हड्डी छुआते हैं तो ब्राह्मण के प्रति इस अन्याय को न सहकर कहता है, 'अच्छा, अब बहुत हुआ हरखू। भला चाहते हो तो यहाँ से चले जाओ।'

पंचों और बिरादरी पर उसका अडिग विश्वास होता है। जब झुनिया को रख लेने पर बिरादरी में हो–हल्ला मचता है और पंचायत होरी पर डाँड लगा देता है तो होरी पंचों का फैसला स्वीकार करता है–'पंच में परमेश्वर रहते हैं। उनका जो न्याय है, वह सिर–आँखों पर। अगर भगवान की यही इच्छा है कि हम गाँव छोड़कर भाग जायें, तो हमारा क्या बस।' धनिया इस अन्याय का विरोध करती हुई कहती है–"मैं न एक दाना अनाज दूँगी, न एक कोड़ी डाँड।...हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जायेगी।" तब होरी उसे रोकता हुआ कहता है–"धनिया, तेरे पैरों पड़ता हूँ, चुप रह। हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डाँड लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर।...आज मर जायें, तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी।"

यह दरिद्र किसान भी अपनी एक मर्यादा मानता है। उस मर्यादा का पालन उसके लिए बहुत आवश्यक है। अपने बाप–दादा के दिये मकान–खेतों से उसका मोह होता है। वह खेती करना ही अपनी मर्यादा समझता है, मजूरी में उसे चाहे जितना अधिक मिले पर वह अपनी मर्यादा छोड़ना बुरा समझता है। होरी गोबर से कहता है–हमीं को खेती से क्या मिलता है ? एक आने नफरी की मजूरी भी जो नहीं पड़ती। जो दस रूपये महीने का भी नौकर है, वह भी हम से अच्छा खाता–पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें, तो और क्या करें ?....फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। ''वह कुल मर्यादा का निर्वाह करना धर्म मानता है। अपनी लड़की सोना के विवाह में दहेज देना उसकी कुल मर्यादा है। चाहे उधार लेकर ही दहेज देना पड़े, पर कुल–मर्यादा कैसे छोड़े। बाप दादों की जायदाद जाने का उसे अपार दुःख होता है वह सोचता है, एक वे सपूत होते हैं जो बाप–दादों की जायदाद की रक्षा और वृद्धि करते हैं, एक वह अयोग्य और अभागा है कि उसे बचा भी नहीं पाता। मकान रहन रखने का उसे दुःख है। तीन बीघा ज़मीन ही पूर्वजों की निशानी बची है, उसकी भी बेदखली का दावा हो जाता है। वह इस निशानी को बचाने के लिए रूपा की शादी अधेड़ रामसेवक से कर देता है। वह सोचता है कन्या की ऐसी बेमेल शादी भी उसकी कुल–मर्यादा के विरुद्ध है, पर क्या करें, खेतों के निकलने में भी तो मर्यादा बिगड़ती है। दारोगा द्वारा तलाशी होने में भी उसकी कुल मर्यादा जाती है।

यह किसान होरी धर्म–भीरू है, बिरादरी से डरता है, ईश्वर से डरता है, राजा से डरता है, सरकार–हाकिमों से भय खाता है। पुलिस–दारोगा से काँपता है, तलाशी को हव्वा समझता है, परन्तु वैसे

साहसी है। समाज की दूषित व्यवस्था से दबा होने पर भी प्रकृति से कायर नहीं है। जब धनुष–यज्ञ के प्रसंग पर मेहता पठान बनकर आता है, तो जहाँ सब शहरी 'जवाँमर्द' भयभीत हो जाते हैं, वहाँ होरी पठान से भय नहीं खाता, वह उसे पछाड़ देता है। "होरी गंवार था, लाल पगड़ी देखकर उसके प्राण निकल जाते थे, लेकिन मस्त साँड पर लाठी लेकर पिल पड़ता था। वह कायर न था, मरना और मारना जानता था, मगर पुलिस के हथकण्डों के सामने उसकी एक न चलती थी। बँधे–बँधे कौन फिरे, रिश्वत के रुपये कहाँ से लाये ? बाल बच्चों को किस पर छोड़े। 'झगड़ा करना उसकी प्रकृति के विरुद्ध था। मगर जब मालिक ललकारते हैं तो फिर किसका डर ? तब तो वह मौत के मुँह में भी कूद सकता है। उसने झपटकर खान की कमर पकड़ी और ऐसा अड़ंगा मारा कि खान चारों खाने चित ज़मीन पर आ रहे...।"

होरी का सारा जीवन पेट की रोटियों की चिन्ता में बीतता है। वह लुटता है, मालिक–महाजनों की झिड़कियाँ सहता है, घर में कभी बेटे की व्यंग्य भरी बातें सुनता है, कभी पत्नी की फटकार पाता है, अपने भाईयों की जली–कटी सुनता है, पर सब कुछ सहते हुए भी परिश्रम पूर्वक कर्म करना उसकी सहज प्रवृत्ति बन गई है। इतनी कर्मशीलता कृषक की संस्कारगत प्रवृत्ति है, मरना–खपना उसके भाग्य में ही बदा है। होरी मातादीन से कहता भी है : किसान और किसान के बैल इनको जमराज ही पिंसिन दे, तो मिले। इतनी जान खपाने पर भी वह अपनी पत्नी, पुत्र पतोहू, पोत्र किसी को सुखी नहीं कर सका। सुख का एक क्षण भी उसकी गृहस्थी में नहीं आया। यही उसके जीवन की ट्रेजेडी अन्त में लड़की रूपा के बेमेल ब्याह की चोट, बेटी बेचने का दुःख सबसे घातक सिद्ध होता है। इस चोट ने उसे अपनी शक्ति से बाहर मजूरी का परिश्रम करने को उत्तेजित किया, जो उसके प्राण लेकर ही रहा।

इस प्रकार होरी एक सीधा–सरल, भोला–भाला, साफ हृदय का किसान है। उसके छोटे से हृदय में मानव–प्रेम की अथाह भावधारा है। वात्सल्य से भरा उसका हृदय अपनी सन्तान का ही नहीं, झुनिया, सिलिया जैसी निराश्रिताओं के लिए भी उदार बन जाता है। अपने भाईयों पर वह अब भी जान देता है। हीरा के मुँह से अपनी आलोचना और बुराई सुनकर वह झगड़ने नहीं जाता, अपितु आत्म–पीड़ा का अनुभव करता हुआ गाय लौटाने को तैयार हो जाता है। उसकी कृषक–प्रकृति झगड़े से दूर भागती है। चार बातें सुनकर भी चुप रह जाना ही उसके सरल स्वभाव का नियम है। अपनी पत्नी से खीझते–झगड़ते रहने पर भी वह उसके अटूट प्रेम–बन्धन में बँधा हुआ है। वह एक आदर्श ग्रामीण पति है।

ये सब चारित्रिक विशेषताएँ होने के साथ–साथ होरी में कुछ निजी व्यक्तिगत विशेषताएँ उसका चरित्र है। मुख्यतः उसकी अतिशय उदार भावना, पेट में बात न पचा पाने तथा भोला, धनिया, दुलारी आदि सब को अपने पक्ष में कर लेने की व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताएँ उसको सजीव रूप प्रदान करती हैं।

4.3.2 गोबर

होरी का बेटा गोबरधन नई पीढ़ी का युवक है। विषम आर्थिक दशा के कारण असन्तोष और विद्रोह

उसकी प्रकृति बन चुका है। वह 'सांवला, लम्बा, इकहरा युवक है।' असन्तोष और विद्रोह छाया रहता था। अपने पिता से उसे चिढ़ है। वह स्पष्ट कहता है–"यह तुम रोज–रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो ? बाकी न चुक तो प्यादा आ कर गालियां सुनाता है, बेगार देना ही पडती है, नज़र–नज़राना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो ?"

वर्ग चेतना उसमें बहुत बढ़ी चढ़ी है उस के अनुसार यह छोटे–बड़े की विषमता मनुष्य ने ही उत्पन्न की है, भगवान ने तो सबको बराबर ही बनाया। कर्मवाद या पूर्वजन्म की बातों को भी वह दिल बहलाने की बातें मानता है। जिसके हाथ में लाठी है, वही गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है। "बड़े लोग दान धर्म–भगवद् भजन आदि गरीबों के सिर पर ही करते हैं, न करे तो पाप का धन कैसे पचे ?"

वह होरी के धर्मात्मापन पर व्यंग्य करता है। भोला को मुफ्त में भूसा देना उसे अच्छा नहीं लगता। जब होरी बताता है कि भोला गाय दे रहा था, मैंने संकट में पड़े आदमी की गाय लेना अच्छा न समझा, तो वह कहता है–"तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गति कर रहा है। साफ–साफ तो बात है। अस्सी रूपये की गाय है, हमसे बीस रुपये का भूसा ले और गाय हमें दे। साठ रुपये रह जायेंगे, वह हम धीरे–धीरे दे देंगे।"

गोबर अन्याय को सहन नहीं कर सकता। शहर में रह लेने पर उसका विद्रोह सक्रिय हो जाता है। वह दातादीन को एक रूपये सैंकड़े के हिसाब से ही ब्याज देना चाहता है। वह होरी को साफ कहता है किसी को एक पैसा मत दो, सब महाजनों से एक रुपया सैंकड़ा ब्याज कराना होगा। नोखेराम की बेईमानी पर वह उसे ऐसा फटकारता है कि नोखेराम देखता रह जाता है। वह सब शोषकों की खबर लेता है। सारे गाँव के युवक उसे नेता बना लेते हैं। होली के दिन वह अपने द्वार पर मण्डली जमाता है। रात–भर शोषक महाजनों और ग्राम स्तम्भों की नकलें होती हैं। वह उन पंचों पर दावा करना चाहता है, जिन्होंने उस पर डाँड लगाया था। वह सबके सामने अपनी हेकड़ी जमाता है। वह अधिक दिन रहे तो इन शोषकों का मिजाज ठीक कर दे। उसकी विद्रोही प्रकृति मजदूर संघर्ष में भी पीछे नहीं रहती। झुनिया के मना करने पर भी वह आग में कूद पड़ता है और बुरी तरह घायल होता है।

आरम्भ में वह एक अल्हड़ युवक दिखाई देता है। प्रेम और पुरुष–स्त्री के सम्बन्धों में वह झुनिया से पीछे ही था। "गाँव में जितनी युवतियाँ थीं, वह या तो उसकी बहनें थीं या भाभियाँ। भाभियां अलबत्ता कभी कभी उससे ठिठोली किया करती थीं, पर वह केवल सरल विनोद होता था। झुनिया से बढ़ावा पाते ही उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोय हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा। जब झुनिया उसे उत्तर में कहती है कि दस द्वारों जाने वाले भिक्षुओं को मैं नहीं मानती। मन्दबुद्धि गोबर उसका आशय नहीं समझ पाता है। "झुनिया ने भी सदय भाव से उसकी ओर देखा, कितना भोला है कुछ समझता ही नहीं।" जब झुनिया 'सर्वस्व देने' की बात कहती है तो वह कहने लगता है–"मेरे पास क्या है झुनिया ?"

परन्तु एक बार यौवन जाग जाने पर वह उसके नशे में डूब जाता है। झुनिया को वह जब अपने साथ ले जाता है तो ताड़ी पीने लगता है, अपनी यौनक्षुधा को तृप्त करने के लिए वह वक्त–बेवक्त झुनिया को तंग करता है। वह आधी रात बीते घर आने लगता है। गर्भ–भार से दबी, दुखी झुनिया की वह उपेक्षा करने लगता है। यहाँ तक कि वह झुनिया के प्रसव के प्रति बेपरवाही करता है।

वह स्वभाव का उद्दण्डी है। अपने अभिमान और उद्दण्डता में वह इतना आगे बढ़ जाता है कि अपने माता–पिता को भी जली–कटी सुनाने लगता है। वह यहाँ तक कहने से भी नहीं झिझकता कि माँ–बाप भी पैसे के मतलबी हैं। मैं कहाँ–कहाँ तक तुम्हारी करनी भुगतुँ, मेरे भी तो बाल–बच्चे हैं। उनके मुख से इतनी बढ़ी–चढ़ी बातें कहलवाकर प्रेमचन्द जी ने कुछ अति कर दी है। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी संगत–सा नहीं लगता। जो गोबर शहर जाते हुए रास्ते में यह सोचता जाता था कि वह शहर में खूब मेहनत करेगा, रुपये बचायेगा और सबसे पहले एक पछाई गाय लायेगा और दादा से कहेगा कि बस गाय माता की सेवा करो ताकि तुम्हारा यह लोक और परलोक दोनों सुधरें, जो झुनिया को घर में रख लेने पर माता–पिता की कृतज्ञता और सम्मान–भावना प्रकट करता है, वह बाद में माता–पिता से इतनी बुराई से पेश आये, यह कुछ संगत–सा नहीं लगता। फिर भी उसका स्वभाव उद्दण्डता से ओत–प्रोत है इसमें सन्देह नहीं। हो सकता है कि पैसे की गर्मी ने उसे अधिक अभिमानी बना दिया हो। चार पैसे कमाकर वह एक तरह से महाजन बन ही गया था।

चोट लगने के बाद जब झुनिया उसकी खूब सेवा–सुश्रुषा करती है, तब अच्छा होने पर उसकी मानवता जाग उठती है। अब वह झुनिया के प्रति अपने अत्याचारों से पछताता है। उससे क्षमा–याचना करता है। रूपा के विवाह में जब वह दोबारा घर आता है तो अपने माता–पिता के प्रति उसका अत्यन्त विनम्र व्यवहार उसके स्वभाव के परिवर्तन का परिचायक है। अब उसमें गम्भीरता आ जाती है। वह सोचने विचारने लग गया है। जब होरी रूपा के विवाह के अपने अपराध पर उसके सामने फूट पड़ता है तो वह पिता को सांत्वना ही देता है और उनका कोई दोष नहीं मानता। ''जिसे पेट की रोटियाँ ही मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और सम्मान सब ढोंग है।" वह अब अपनी जिम्मेदारी समझने लगा है। वह सब महाजनों की किस्तें कराकर स्वयं अदा करने की बात चलाता है। उसने अब समझ लिया है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पानी होगी। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आयेगी। और उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठी है। अब उसमें वह पहले की उद्दण्डता और गरूर नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। होरी को अब वह कोई काम करते देखता है, तो उसे हटाकर खुद करने लगता है, जैसे पिछले दुर्व्यवहार का प्रायश्चित करना चाहता हो। कहता है, दादा अब कोई चिन्ता मत करो, सारा भार मुझ पर छोड़ दो, मैं अब हर महीने खर्च भेजूंगा, इतने दिन तो मरते–खपते रहे, कुछ दिन तो आराम कर लो, मुझे धिक्कार है कि मेरे रहते तुम्हें इतना कष्ट उठाना पड़े। वह गाँव की दुर्दशा देखकर अब विशेष दुखी होता है।

इस प्रकार गोबर के चरित्र का बड़ा स्वाभाविक विकास प्रेमचन्दजी ने प्रस्तुत किया है। बीच में उसकी माता–पिता के प्रति अतिशय उद्दण्डता जरा अखरती है। अन्यथा उसके चरित्र की सभी रेखाएँ अत्यन्त स्वाभाविक एवं सजीव हैं।

4.3.3 धनिया

होरी की पत्नी धनिया ज़बान की तीखी किन्तु हृदय की अत्यन्त कोमल नारी है। घर की निरन्तर दारुण दरिद्रता ने ही उसे तीखा बनाया हुआ है, अन्यथा उसका सरल, कोमल, प्रेम–रुपी हृदय, वाणी सब उसके माधुर्य से अपरिचित नहीं हैं। जीवन में कभी उसे सुख न मिला। घर के प्राणी दाने–दाने को तरसते रहते हैं, घी–दूध, अंजन लगाने तक को नहीं मिलता। अपने "विवाहित जीवन के इस बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि कितनी ही कतर–ब्योंत करो, कितना ही पेट–तन–काटो....मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है। उसके तीन लड़के बचपन में ही मर गये। उसका मन आज भी कहता था अगर उसकी दवा–दारू होती तो वे बच जाते, पर वह धेले की दवा भी न मंगवा सकी थी। उसकी भी उम्र अभी क्या थी! छत्तीसवाँ ही वर्ष तो था, पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थी, सारी देह ढल गई थी, वह सुन्दर गेहुआँ रंग साँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न मिला।...जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों ? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था.....।"

उसका हृदय मातृ–वात्सल्य, पति–प्रेम और यहाँ तक कि उदार मानवीय प्रेम से परिपूर्ण है। घर के प्राणियों पर वह जान देती है। अपने बच्चों से उसका अटूट स्नेह है। जब झुनिया को गोबर घर छोड़ जाता है, तब पहले तो उसका सती नारीत्व क्रोधित हो उठता है, वह होरी से कहती है–"मैं तुमसे कहे देती हूँ मैं उसे अपने घर में न रखूँगी। मेरे घर में ऐसी छत्तीसियों के लिए जगह नहीं है।" किन्तु जब उसे ख्याल आता है कि कुछ हो, आखिर है तो मेरे पुत्र की करतूत, मेरे पुत्र का ही अंश वह पेट में लिए है, और फिर अब इस अवस्था में बेचारी कहाँ जायेगी, तो उसका उदार मातृत्व और नारीत्व जग जाता है–सहसा उसने होरी के गले में हाथ डालकर कहा–"देखो, तुम्हें मेरी सौंह, उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती, तो यह दिन ही क्यों आता। इतनी रात गये इस अन्धेरे सन्नाटे में जायेगी कहाँ, पाँव भारी है।" और वह झुनिया को अपनी पुत्र–वधू बनाकर रख लेती है। जब गोबर एक साल बाद शहर से कमा कर आता है तो अपने पुत्र को पाकर माता का हृदय फूला नहीं समाता। जीवन में पहली बार भगवान ने उस पर दया की है। वह कोमलता और उदारता की मूर्ति बन जाती है। "भीतर की शान्ति बाहर सौजन्य बन गई थी।" यही नहीं, उसका नारीत्व और भी उदार है। वह जिस उदारता, निर्भयता और स्नेह से निराश्रिता सिलिया चमारिन को आश्रय देती है, वह उसके उदार मातृत्व और नारीत्व का भव्यतम रूप है। वह कहती है–जगह की कौन कमी है बेटी! तू चल मेरे घर रह। होरी धनिया से कातर स्वर में कहता है "बोलती तो है, लेकिन पण्डित को जानती नहीं ?" इस पर उसका सत्य–नारीत्व निर्भीकता से कहता है–"बिगड़ेंगे तो एक

रोटी बेसी खा लेंगे और क्या करेंगे। कोई उनकी रखैल हूँ ? इसकी इज्जत ली, बिरादरी से निकलवाया, अब कहते हैं मेरा कोई वास्ता नहीं। आदमी है कि कसाई।"

अपने पति से उसका रोम–रोम प्रेम की अटूट गाँठे बाँधे है। अपनी दयनीय परिस्थिति से खीझ कर उसका मन पति से बात–बात पर विरोध करता है खीझता है पर थोड़ी देर की खीझ–झगड़े के बाद प्रेम दुगुने वेग से रीझ उठता है। "विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी।" वह पति के लिए अशुभ एक शब्द भी किसी से नहीं सुन सकती। जब होरी कहता है कि "साठे तक पहुँचने की नौबत ही न आयगी, पहले ही चल देंगे," तो वह मर्माहत हो उठती है। जब होरी बीमार पड़ता है तो वह सारा मन–मुटाव भूल कर उसकी जी–जान से सेवा करती है। जब होरी दातादीन की मजूरी करते हुए निढाल होकर गिर जाता है, तब उसके प्राण सूख जाते हैं। प्रेम की कितनी उदात्त, उज्ज्वल और गहन झाँकी है! इस दाम्पत्य प्रेम के आगे रीतिकालीन हजार नायिकाओं का प्रेम तुच्छ है। ऐसी पत्नी, ऐसी गृहिणी पाकर होरी अपने को धन्य समझता है। वह गद्‌गद् कहता भी है।.."सेवा और त्याग की देवी! जुबान की तेज़ पर मोम जैसा हृदय! पैसे–पैसे के पीछे प्राण देने वाली, पर मर्यादा–रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार! वह पतिव्रता भारतीय नारी है। " कभी किसी ने उसे किसी छैला की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़ की थी। उसका ऐसा मुँह–तोड़ जबाव दिया कि आज तक नहीं भूले। दया, माया, ममता, सेवा, त्याग, कर्तव्य और परिश्रम की यह अनपढ़ अनघढ़ मूर्ति कितनी भव्य है, कितनी वन्दनीय।

वह बहुत परिश्रमशीला है। घर में ही नहीं, खेत खलिहान में भी वह पति के बराबर काम करती है। सर्दी–गर्मी, सोखा–वर्षा सब दिन वह खपती है, मेहनत करती है। इस मेहनत ने ही उसे स्वाभिमानिनी और रण–चण्डी निर्भीक नारी बना दिया है। उसका मन यह कभी नहीं समझ पाता कि मेहनत वह करें, दिन–रात वह मरें और उनकी मेहनत का फल दूसरे उठा जावें। इस स्थिति से उसका मन सदा विद्रोह करता है। गाय मर जाने के प्रसंग पर जब दारोगा धाँधली मचाता है और गाँव के स्तम्भ होरी को लुटवा कर अपना भी दाल–दलिया बनाना चाहते हैं, तो उसका विद्रोही मन चण्डी बन जाता है। वह जिस साहस और विक्षोभ से दारोगा और मुखिया लोगों को फटकारती है, वह उसे वीर नारी सिद्ध करता है। उसके इस चण्डी रूप की चर्चा कई दिनों तक आस–पास के गाँव में होती रही। पंचों–द्वारा डाँड लगाये जाने पर भी उसका विद्रोही हृदय ललकार उठता है। जब होरी दाना–दाना ढोकर पंचों के यहाँ पहुँचा देता है, खलिहान में केवल डेढ़ दो मन जौ रह जाता है तो चोट खाई हुई नागिन की तरह धनिया का वही मन फूँकार कर उठता है। वह पूरी शक्ति लगाकर होरी के हाथ से टोकरी पकड़ लेती है और कहती है–"इसे तो मैं न ले जाने दूँगी, चाहे तुम मेरी जान ही ले लो। मर–मरकर हमने कमाया, पहर रात–रात को सींचा, अगोरा, इसीलिए कि पंच लोग मूँछों पर ताव देकर भोग लगायें और हमारे बच्चे दाने–दाने को तरसें! तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया हैं। मैं भी अपनी बच्चियों के साथ सती हुई हूँ। "वह पंचों को खरी–खरी सुनाती है। जब भोला होरी

के घर आकर आग्रह करता है कि या तो झुनिया को घर से निकाल दो या मेरे रुपये दो, नहीं तो मैं बैलों की जोड़ी ले जाऊँगा ? तो धनिया बड़े साहस और अधिकार से कहती है–"तो मेहतो, मेरी भी सुन लो। जो बात तुम चाहते हो, वह न होगी, सौ जन्म न होगी। झुनिया हमारी जान के साथ है।" वह वीर–नारी स्वाभिमान की भी पुतली है। जीवन भर दाने–दाने को तरसते रहने पर भी उसने किसी के आगे सिर झुकाना नहीं सीखा। सिर क्यों झुकाये, अपनी मेहनत की खाते हैं, नहीं मिलती तो भूखे रहते हैं। किसी के दबैल नहीं। जब होरी और वह दातादीन की मजूरी करने पर विवश होते हैं और दातादीन सख्ती से काम लेता है और डाँटता हुआ कहता है–अगर यही हाल है तो भीख भी माँगेगी। तब धनिया का विद्रोही मन कह उठता है–"भीख माँगो तुम, जो भिखमंगों की जात हो। हम तो मजदूर ठहरे, जहाँ काम करेंगे, वहीं चार पैसे पायेंगे।"

वह मर्यादा की भी पक्की है। अन्याय और अत्याचार पर आधारित बिरादरी के बन्धन और मर्यादा दो बातें उसे कदापि मान्य नहीं। पर भलमनसाहत के रूप में वह मर्यादा की बातें करने को सदा तैयार रहती है। सोना के विवाह के अवसर पर पहले तो वह होरी को कहती है किसी से उधार लेने और दान–दहेज देने की कोई जरूरत नहीं है। यह उसके स्वाभिमानी हृदय का स्पष्ट विद्रोह है। किन्तु जब गौरी मेहतो का पत्र आता है तो वह बदल जाती है। वह तब कहने लगती है "यह गौरी मेहतो की भलमंसी है, लेकिन हमें भी तो अपनी रजाद का निर्वाह करना है। संसार क्या कहेगा। रुपया हाथ का मैल है उसके लिए कुल–मरजाद नहीं छोड़ी जाती। जो कुछ हमसे हो सकेगा, देंगे और महतो को लेना पड़ेगा।" जब होरी उसके मिजाज की आलोचना करता हुआ कहता है–"यह तूने क्या कर डाला धनिया! तेरा मिजाज आज तक मेरी समझ में न आया। तू आगे भी चलती है, पीछे भी चलती है। पहले तो इस बात पर लड़ रहीं थी कि किसी से एक पैसा कर्ज मत लो, कुछ–मरजाद का राग छोड़ दिया तेरा मरम भगवान ही जाने।" तब धनिया अपने मिजाज की विचित्रता का रहस्य खोलती हुई कहती है–"मुँह देखकर बीड़ा दिया जाता है। जब गौरी अपनी शान दिखाते थे अब वह भलमंसी दिखा रहे हैं। ईंट का जवाब चाहे पत्थर हो, लेकिन सलाम का जवाब गाली नहीं है।" दारोगा द्वारा तलाशी की धमकी के प्रसंग में, झुनिया के रखने पर बिरादरी की मर्यादा के अवसर पर सिलिया चमारिन को रखने में जाति–मर्यादा के प्रश्न पर उसकी मर्यादा–विरोधी प्रकृति स्पष्ट व्यंजित हुई है। ऐसी अन्याय पर आधारित मर्यादा का पालन करना वह नहीं चाहती। सच तो यह है कि जहाँ अन्याय है, अत्याचार है, वहीं विद्रोही धनिया है। एक तरह से धनिया होरी की पूर्ति है। अपनी विवशता और ब्राह्य दुर्बलता के कारण होरी को अन्याय, शोषण, बिरादरी आदि का सामना करना पड़ता है। यह होरी की अपूर्णता है। धनिया इस समस्त अत्याचार, अन्याय और शोषण का विरोध करती है। एक तरह से होरी या भावी किसान की वह क्रान्तिकारी आत्मा बनी हुई है, अपूर्ण होरी की पूर्ति है।

साधारण समझ–बूझ भी उसमें पर्याप्त है। कई बार वह इस दृष्टि से होरी की अपेक्षा अधिक चतुर दिखाई देती है। वह बात को जल्दी भाँप लेती है। जब गोबर गाय लेकर दोपहर तक नहीं लौटता और होरी चिन्ता करता है, तो वह बड़ी निश्चिन्तता से कहती है–'गोबर सांज को आयेगा।' उसकी सहज बुद्धि अपने

पुत्र और भोला की विधवा लड़की के सम्बन्ध को भाँप लेती है। वह दारोगा और पंचों की बदमाशी समझ जाती है। गाय आने के बाद जब रात को हीरा की बात सुनकर होरी का मन क्षुब्ध हो जाता है और वह गाय वापस लौटाने की सोचता है और धनिया से कहता है कि लोग हमारी चर्चा करते हैं, कहते हैं, भाईयों के दाबे हुए रुपयों से ही गाय लाई गई है, तो धनिया एक दम भाँप जाती है कि यह स्वर किसका है। वह निश्चिंत भाव से कहती है–'हीरा कहता होगा ?'

वह एक अनपढ़ औरत है। अतः ऐसी नारी में विद्यमान अन्ध–विश्वास आदि दुर्बलताएँ भी उसमें पाई जाती हैं। गाय के आने पर उसे नज़र लगने का भय है। वह गाय को बाहर बाँधने नहीं देती है। वह गाय के गले में काला धागा बाँध देती है। अपने देवरों के प्रति भी उसके मन में क्रोध और असहिष्णुता का भाव है। वह हीरा से भिड़ जाती है और उसे जेल भिजवाने पर तैयार हो जाती है। जिन देवर–देवरानियों के लिए एक समय उसने इतना किया, अपनी जान खपाई, देवरों को पुत्रों की तरह रखा, उनकी ईर्ष्या और जलन वह सह नहीं सकती। अपनी जरा सी प्रशंसा सुनकर धनिया फूल जाती है। पहले तो वह भोला को भूसा देने का बहुत विरोध करती है, पर जब होरी कहता है कि भोला तेरी बहुत प्रशंसा कर रहा था–''ऐसी लच्छमी है, ऐसी सलीकेदार है!'' तो यह सुनकर धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक आती है। हदय गद्‌गद् हो जाता है। वह एक नहीं, तीन–तीन बड़े खाँचे भूसे के भरकर देने का आग्रह करने लगती है। होरी उसके इस परिवर्तनशील स्वभाव की आलोचना करता हुआ कहता है–'या तो चलेगी नहीं या चलेगी तो छोड़ने लगेगी।'

इस प्रकार धनिया का चरित्र एक कृषक–नारी का वर्गगत सजीव रूप भी है और व्यक्तिगत विशिष्टता से ओत–प्रोत भी। अपनी परिश्रमशीलता, मातृत्व, स्नेह, दया–ममता, असन्तोष, अन्धविश्वास, सामाजिक–नैतिक विश्वास, जबान की तेजी आदि में वह सोलह आने अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, किन्तु अपनी अतिशय उदारता, अन्यतम साहस (गण्डासिंह जैसा दारोगा को भी लताड़ देने में–जिसके एक मामूली प्यादे–सिपाही की लाल पगड़ी से उसके मर्द–किसान भय खाते हैं) अपने चण्डी रूप में वह विशिष्ट है। धनिया के चरित्र में विद्रोह है, असन्तोष है, क्रोध है, होरी में नम्रता, झुकना, दबना, समझौता करना, विवश रह जाना, खून के घूँट पीना है। होरी के लिए प्रतिरोध का अर्थ है चुप रह जाना, आत्मपीड़न या विवशता जाहिर करना, पर धनिया के लिए प्रतिरोध का अर्थ है, विद्रोह अन्याय के खिलाफ खुली आवाज़ उठाना, खिल्ली उड़ाना, व्यंग्य करना, क्रोध से फुँकार मारना। उसके दग्ध हृदय से निसृत असन्तोष और विद्रोह की ज्वाला तथा ममता का पिघला हुआ मोम दोनों ही स्थान–स्थान पर शब्द रूप लिये पड़े हैं।

4.3.4 मालती

ग्राम–समाज के इन उपर्युक्त प्रमुख नारी पात्रों के अतिरिक्त 'गोदान' में शहरी जीवन के परिचायक नारी–पात्र भी अपना महत्व रखते हैं। इन शहरी नारी–पात्रों में प्रमुख है मालती। मालती का चरित्र–चित्रण भी बहुत सटीक है। प्रेमचन्द ने इन शब्दों में मालती का परिचय दिया है–"दूसरी महिला जो ऊँची एड़ी का

जूता पहने हुए हैं–और जिनकी मुख छवि पर हँसी फूट पड़ती है, मिस मालती हैं। आप इंगलैण्ड से डाक्टरी पढ़ आई हैं और अब प्रैक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गाल कोमल, पर चपलता कूट–कूट कर भरी हुई है! झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाज़िर जवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद–प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव–भाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप सा हो गया है।" मालती के इस चरित्र–चित्रण की सत्यता हमें छठे और सातवें परिच्छेद से ही ज्ञात हो जाती है। चंचलता, बुद्धि–चातुर्य, आत्माभिमान, नजाकत, स्वार्थपरता आदि उसके स्वभाव की सभी विशेषताएँ और दुर्बलताएँ धनुष–यज्ञ प्रसंग में ही स्पष्ट हो जाती हैं। विदेशी–शिक्षा के प्रभाव ने उसे तितली बना दिया है। मनोरंजन और हास–विलास ही उसके जीवन की ऊपरी सतह पर छाया हुआ है। दूसरों की हँसी उड़ाने, व्यंग्य कसने में वह बहुत तेज़ है। वह क्षण–भर में ही ओंकारनाथ को उल्लू बना जाती है। उसका मचलापन हरदम अपने चारों ओर रसिकों की जमघट चाहता है। अपने हाव–भाव से पुरुषों को नचाना वह खूब जानती है। मिल–मालिक खन्ना को उसने इसी तरह उल्लू बना रखा है। वह दिल से मेहता के प्रति आकर्षित है। स्वार्थी ऐसी कि मुसीबत सिर पर आने से भी वह हाथ आये हजार रुपये आसानी से छोड़ना नहीं चाहती। पठान को देखकर वह भयभीत हो जाती है। पर पठान की प्रेम–भरी बातों और रसीली आँखों को देखकर उसका आवारा मन आश्वस्त हो गया। उनका हृदय कुछ देर इन नर–पुंगवों के बीच में रहकर उनमें बर्बर प्रेम का आनन्द उठाने के लिए ललचा रहा था। शिष्ट प्रेम की दुर्बलता और निर्जीवता का उसे अनुभव हो चुका था। आज अक्खड़, अनघड़ पठान के उन्मत्त प्रेम के लिए उसका मन छोड़ रहा था। यद्यपि यहाँ मालती की यह मनःस्थिति नारी मनोविज्ञान के विरुद्ध प्रतीत होती है, फिर भी उसके स्वभाव की स्वच्छन्दता प्रकट करना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य रहा है। उसका हृदय संकुचित भी इतना है कि वह एक ग्रामीण कलूटी स्त्री के सेवा–भाव को भी शंका की दृष्टि से देखती है और मेहता को उसके प्रति श्रद्धा प्रकट करते देखकर ईर्ष्या से जल उठती है। वह नारी–स्वच्छन्दता की हामी है। आश्चर्य है कि वह एक बार जेल भी हो आई है।

किन्तु यह मालती के चरित्र का ऊपरी पक्ष ही है। वह "बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है।....वह हँसती है इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना इसलिए नहीं है कि वह चहकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं, वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है, कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।" सचमुच मालती घर का सारा दायित्व आप निभाती है। पिता का रोग से निकम्मा हो जाने के कारण, घर का सारा खर्च मालती के ही दम से चलता है। दोनों बहनों की पढ़ाई–लिखाई का भी वही खर्च उठाती है, पिता के अनियमित खर्च को बर्दाशत करती है। पाश्चात्य शिक्षा से उसका ऊपरी ढाँचा ही रंगा गया है, अन्तर्मन भारतीय नारी का ही है। सेवा, कर्त्तव्य, गम्भीरता, दयालुता आदि गुणों के बीज उसमें विद्यमान हैं।

उसके संस्कार लुप्त नहीं हो गए। वह चाहे कितने ही हाव–भाव दिखाये, पुरुषों को नाच नचाकर उपहार ऐंठे, पर उसका नारी हृदय इसमें सन्तोष नहीं पाता। वह एक ऐसा आश्रय चाहती है, जो दृढ़ हो, स्थायी हो। उसका मधुमक्खी मन मेहता के गुणों पर रीझ जाता है। वह जी जान से मेहता को चाहने लगती है। वह मेहता के एक गुण को अपने हृदय में संचित करना चाहती है।

मेहता का दृढ़ आधार पाने की आशा में उसका चारित्रिक परिवर्तन आरम्भ होता है। वह अब सेवा और कर्तव्य का मार्ग अपना लेती है। वह महिलाओं के लिए एक व्यायामशाला का आयोजन करती है। व्यायामशाला कमेटी की अभिनेत्री बनकर चन्दा इकट्ठा करती है। वह अब मेहता का संकेत पाकर खन्ना की गलतफहमी भी दूर कर देती है और गोविन्दी–खन्ना के बीच से बिल्कुल हट जाती है। वह खन्ना को स्पष्ट शब्दों में कह देती है–"मैं रूपवती हूँ। तुम भी मेरे अनेक चाहने वालों में से एक हो। यह मेरी कृपा थी कि जहाँ मैं औरों के उपहार लौटा देती थी, तुम्हारी सामान्य–से–सामान्य चीजें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी, और जरूरत पड़ने पर तुमसे रुपये भी माँग लेती थी। मगर तुमने अपने धनोन्माद में इसका कोई दूसरा अर्थ निकाल लिया तो मैं तुम्हे क्षमा करूँगी। यह पुरुष–प्रकृति का अपवाद नहीं, मगर यह समझ लो कि धन ने आज तक नारी के हृदय पर विजय नहीं पायी, और न कभी पायेगा।"

जो मालती कभी खुद अपने जूते न पहनती थी, जो खुद कभी बिजली का बटन तक न दबाती थी, वही पैदल चलकर गाँवों में सेवा–कार्य के लिए जाने लगी है, गरीबों का मुफ्त इलाज करने लगती है! मालती के रंग–ढंग की काया–पलट होती जाती थी। ''अब तक जितने मर्द उसे मिले, सभी ने उसकी विलास–वृत्ति को ही उकसाया। उसकी त्याग–वृत्ति दिन–दिन क्षीण होती जाती थी, पर मेहता के संसर्ग में आकर उसकी त्याग–भावना सजग हो उठी थी।'' किन्तु मेहता जब भी उसे परीक्षा की दृष्टि से देखते हैं और कहते हैं कि मैं जिस आधार पर जीवन का भवन खड़ा करना चाहता हूँ वह अस्थिर है तो मालती मेहता का उपेक्षा भाव देखकर क्षुब्ध हो कह उठती है–"तुमने सदैव मुझे परीक्षा की आँखों से देखा, कभी प्रेम की आँखों से नहीं।...मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूँ इसलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला, जो मुझे स्थिर और अचंचल बनाता, अगर तुमने मेरे सामने उसी तरह आत्म–समर्पण किया होता, जैसे मैंने तुम्हारे सामने किया है, तो तुम आज मुझ पर यह आक्षेप न रखते।" वह आगे कहती है–'मैं प्रेम को सन्देह से ऊपर समझती हूँ। वह देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है।.... वह सम्पूर्ण आत्मा–समर्पण है। उसके मन्दिर में तुम परीक्षक बन कर नहीं, उपासक बन कर ही वरदान पा सकते हो।"

और सचमुच ही मालती अब मेहता को उपासक बना कर छोड़ती है। "आज मेहता ने जैसे उसे ठुकराकर उसकी आत्मशक्ति को जगा दिया। अब तक वह मेहता के आदर्श के ही सहारे चलती थी, अब स्वयं आदर्श बनने का दृढ़ संकल्प उसने कर लिया। वह सेवा और त्याग की मूर्ति बन गई। मेहता अब परीक्षक से परीक्षार्थी बन गए। मालती मेहता के अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्थित करती है। उसकी सुख–सुविधाओं का पूरा ध्यान रखती है, पर मन में कोई व्याकुलता नहीं लाती, सहज भाव से अपना कर्त्तव्य निभाती है। उसके

मातृ–वात्सल्य पर मेहता मुग्ध हो उठते हैं।" तब मालती प्यासी थी, अब मेहता प्यास से विकल है। झुनिया के बालक मंगल के प्रति जो वात्सल्य मालती ने दिखाया, उससे मेहता की नज़रों में मालती बहुत ऊँची उठ गई – "मालती केवल रमणी नहीं है, माता भी है और ऐसी वैसी माता नहीं, सच्चे अर्थों में देवी और माता और जीवन देने वाली, जो पराये बालक को भी अपना समझ सकती है, जैसे उसने मातापन का सदैव संचय किया हो और (मधुमक्खी की तरह) आज दोनों हाथों से उसे लुटा रही हो। उसके अंग–अंग से मातापन फूटा पड़ता था, मानो यही उसका यथार्थ रूप हो। यह हाव–भाव, यह शौक–सिंगार उसके, मातापन के आवरण मात्र हो, जिसमें उस विभूति की रक्षा होती रहे।"

मालती को अनुभव हुआ कि "इस त्याग के जीवन में कितना आनन्द है। दूसरों के कष्ट–निवारण में उसने जिस सुख और उल्लास का अनुभव किया है, वह कभी भोग–विलास के जीवन में न किया था।" अब वह प्रेम की वस्तु नहीं, श्रद्धा की वस्तु थी। जब मेहता याचना करते हैं और विवाह का प्रस्ताव मालती के सामने रखते हैं तो वह कहती है – "मित्र बनकर रहना स्त्री–पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है। . .... अपनी छोटी सी गृहस्थी बनाकर, अपनी आत्माओं को छोटे से पिंजड़े में बन्द करके, अपने दुख–सुख को अपने ही तक रख कर, क्या हम असीम के निकट पहुँच सकते हैं ? .... तुम्हारे जैसे विचारवान् प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बन्द नहीं करना चाहती।"

इस प्रकार मालती का चरित्र आदर्श में परिणति पाता है। यह विकास अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक है। वह जीवन की पूर्णता का आदर्श प्रस्तुत करती है।

4.4 कठिन शब्द

1. परिचायक
2. डॉडी
3. सुभीते
4. कुत्सित
5. निराश्रिता
6. डॉड
7. मरजाद
8. उद्दण्डी
9. उद्यण्डता
10. विपन्नता
11. संचय

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'धनिया' सच्चे अर्थो में 'अर्द्धांगिनी' है – इस वक्तव्य से आप कहां तक सहमत हैं। युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

प्रश्न. होरी 'गोदान' की आत्मा है – आशय स्पष्ट करते हुए होरी का चरित्र–चित्रण करें।

प्रश्न. 'बाहर से तितली भीतर से मधुमक्खी' उपन्यास में यह पंक्ति किसके लिए कही गई है – स्पष्ट कीजिए और इस पात्र का चरित्र चित्रण कीजिए।

प्रश्न. नई पीढ़ी का प्रतीक 'गोबर' का चरित्र–चित्रण करें।

4.6 पठनीय पुस्तकें

1. गोदान – प्रेमचन्द
2. कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रज़ा।
3. प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय
4. गोदान का महत्व – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
5. प्रेमचन्द – सं– सत्येद्रं
6. प्रेमचन्द के साहित्य में हाशिए का समाज– एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – शुभ्रा सिंह

———— 0 ————

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION
जम्मू विश्वविद्यालय
UNIVERSITY OF JAMMU
जम्मू
JAMMU

पाठ्य सामग्री
STUDY MATERIAL

एम.ए.हिन्दी
M.A. HINDI
SESSION - 2020 ONWARDS

सत्र-तृतीय	उपन्यासकार प्रेमचन्द	पाठ्यक्रम संख्या HIN-305
Semester - III	(विशिष्ट अध्ययन)	Course Code. HIN-305
इकाई संख्या-एक से चार	Upnyaskar Premchand	आलेख संख्या-(1-16)
Unit I to IV	(Vishisht Adhyan)	Lesson No. (1 to 16)

DR. ANJU THAPPA
Course Co-ordinator

http:/www.distanceeducationju.in
इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/ प्रकाशनाधिकार दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू के पास सुरक्षित है।
Printed and Published on behalf of the Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu by the Director, DDE, University of Jammu, Jammu

M.A. HINDI (C.No. HIN-305)

COURSE CONTRIBUTORS :

- **Prof. Neelam Saraf**
  H.O.D.; Hindi — Lesson No. 13 to 16
  University of Jammu

- **Dr. Anju Thappa**
  Associate Professor,
  Directorate of Distance Education, — Lesson No. 1 to 8
  University of Jammu.

- **Ms. Pooja Sharma**
  Department of Hindi, SET — Lesson No. 9 to 12
  University of Jammu

Proof reading :

- **Dr. Anju Thappa**
  Co-ordinator
  P.G. Hindi, D.D.E.
  University of Jammu

© Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu 2020

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DDE, University of Jammu.
- The Script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DDE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

Printed by : Kanti Offset Printing House / 2020 / _____ Nos.